कोटा राज्य का इतिहास

लेखक

स्व० श्री जगदीशसिंह गहलोत

एम. आर. ए. एस., एफ. आर. जी. एस.

भूतपूर्व अधीक्षक

पुरातत्त्व व संग्रहालय विभाग, जोधपुर

सम्पादक

श्री सुखवीरसिंह गहलोत, एम. ए. (हिन्दी व इतिहास)

श्री जी. आर. परिहार, एम.ए. (इतिहास व राजनीति)

हिन्दी साहित्य मन्दिर मेड़ती दरवाजा जोधपुर

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

प्रकाशक :
चन्द्रलेखा गहलोत,
हिन्दी साहित्य मन्दिर,
गहलोत निवास, मेड़ती दरवाजा,
जोधपुर.

सर्वाधिकार प्रकाशक द्वारा सुरक्षित है ।
मई १९६० :: मूल्य ५)

मुद्रक :
साधना प्रेस,
जोधपुर.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कोटा राज्य

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भौगोलिक व आर्थिक विवरण[1]

नाम—आधुनिक राजस्थान के पांच डिवीजनों में कोटा डिवीजन भी एक है। इसमें भूतपूर्व राजपूताने की ३ रियासतें—कोटा, बून्दी व झालावाड़ शामिल हैं। कोटा राज्य राजपूताना प्रान्त के दक्षिण पूर्वी भाग में स्थित है। इस राज्य की राजधानी कोटा का नाम कोटिया नाम के भील नेता के कारण पड़ा और इसी से इस राज्य का नाम कोटा है।

सीमा—इस राज्य के उत्तर पश्चिम में चम्बल नदी है जो इसे बून्दी राज्य से अलग करती है। इस राज्य के उत्तर में जयपुर और टोंक राज्य; पश्चिम में बून्दी और उदयपुर राज्य; दक्षिण-पश्चिम में इन्दौर, झालावाड़ राज्य और ग्वालियर राज्य की आगरा तहसील है; दक्षिण में खिलचीपुर और राजगढ़ राज्य; और पूर्व में ग्वालियर राज्य और टोंक राज्य की छबड़ा तहसील है। इस राज्य का आकार चतुष्पद के समान है।

विस्तार—इस राज्य का क्षेत्रफल (आठ जागीर की कोटरियों सहित) ५,७१४ वर्ग मील है। यह २४ अंश, २७ कला तथा २५ अंश ५१ कला उतरांश और ७५ अंश ३७ कला तथा ७७ अंश २७ कला पूर्व रेखांश के बीच फैला हुआ है। इसकी अधिक से अधिक लम्बाई उत्तर से दक्षिण तक—कोटरी इंद्रगढ़ के उत्तरी सिरे से निजामत मनोहरथाने के दक्षिणी सिरे तक—लगभग ११५ मील और अधिक से अधिक चौड़ाई पश्चिम से पूर्व तक—निजामत लाडपुरा के पश्चिमी सिरे से निजामत शाहपुरा के पूर्वी सिरे तक—११० मील है। इस राज्य में एक नगर, ४ कस्बे और २,५२५ गांव हैं।

पहाड़—कोटा राज्य का अधिकतर भाग पहाड़ी है। ये पहाड़ ज्यादातर दक्षिण की ओर हैं। ये निजामत लाडपुरा के दक्षिणी कोने से आरम्भ होकर

१ कोटा राज्य का भौगोलिक व आर्थिक विवरण १९४७ के अनुसार है जब कि यह एक अलग इकाई था।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

निजामत चेचट और असनावर की उत्तरी सीमा बनाते हुए निजामत हकलेरा, बकानी, मनोहरथाना और छीपाबड़ौद में फैले हुए हैं। ये पहाड़ मालवा घाट के उत्तरी भाग में हैं। यों कोटा राज्य का क्षेत्र प्राचीन काल में मालवा का ही एक भाग था। पहाड़ी भाग सम्पूर्ण राज्य का चौथाई भाग था। ये पहाड़ अरावली और विन्धचाचल पर्वत को मिलाते हैं। इनकी एक ऊँची चोटी लाडपुरा तहसील के दक्षिण में समुद्र की धरातल से १६०६ फुट ऊँची है। मालवा जाने का रास्ता इन पहाड़ियों में से ही होकर है। सबसे अच्छा व सुगम रास्ता निजामत चेचट के उत्तर पूर्वी भाग में मुकन्दरा (दर्रा) घाटी है। अभी रेल मार्ग इसी घाटी में से होकर निकाला गया है। इस पर्वत शृंखला की लम्बाई ६० मील के लगभग है। उत्तर की ओर इन्द्रगढ़ की पहाड़ियां हैं जो १५०० फुट के लगभग ऊँची हैं। सबसे ऊँची पहाड़ी इस राज्य के पूर्व में शाहबाद क्षेत्र में है जो भामूती की पहाड़ी कहलाती है और १८०० फुट ऊँची है। ये पहाड़ घने जंगलों से घिरे और झाड़ियों से ढके हैं।

नदियाँ—इस राज्य की मुख्य नदियाँ चम्बल (प्राचीन नाम चर्मणवती), काली, सिंध और पार्वती हैं जो बारहों महीने बहती हैं। अन्य छोटी नदियाँ आहू, परवन, अण्डेरी और कूर्ना हैं। ये सब नदियाँ उत्तर या उत्तर पूर्वी दिशा में

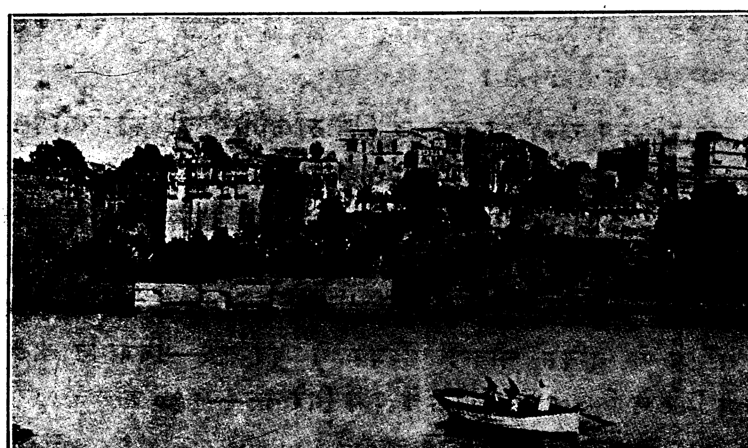

बहती हैं। चम्बल इन नदियों में सब से बड़ी और मुख्य नदी है। कोटा राज्य में यह लगभग ६० मील बही है। इस नदी में १६७० फुट लम्बा तथा १२० फुट ऊँचा एक बांध कोटा नगर के पास बनाया जा रहा है। इससे राजस्थान राज्य की लगभग ७ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी तथा दो लाख तीस हजार

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

टन अतिरिक्त अनाज पैदा हो सकेगा और एक लाख किलोवाट बिजली तैयार की जा सकेगी। यह बांध १९६२ तक तैयार हो जायेगा।[1]

इस राज्य में चम्बल की दो बड़ी सहायक नदियां हैं—कालीसिन्ध और पार्वती जो विन्धयाचल पर्वत से निकल कर इस राज्य के दक्षिण में होकर प्रवेश करती हैं। कालीसिन्ध गागरोण के किले के पास तथा पार्वती निजामत कुंजड़ के दक्षिण पूर्वी कोने से प्रवेश करती है। कालीसिन्ध के तट पर इस राज्य के प्रसिद्ध स्थान गागरोण, पलायता तथा बड़ौदा हैं। पार्वती के किनारे पर जलवाड़ा, फूसोद और खातोली हैं। कालीसिंध लगभग ३५ मील तक कोटा राज्य को ग्वालियर, इन्दौर व झालावाड़ राज्यों से अलग करती हुई बहती है और पार्वती लगभग ४८ मील तक कोटा राज्य को ग्वालियर और टोंक राज्य से अलग करती है। छोटी नदियों में आहू नदी महत्वपूर्ण है जो कोटा और झालावाड़ राज्य की सीमा नदी बन कर गागरोण के पास आकर कालीसिंध में मिल जाती है।

जलवायु—इस राज्य में तापक्रम गर्मी में अधिक से अधिक ११६० तथा सर्दी में कम से कम ४४० फारनहीट तक चला जाता है। इस राज्य में पानी का फैलाव ज्यादा रहता है अतः मच्छर ज्यादा होते हैं और इस कारण मलेरिया का प्रकोप बहुत रहता है। वर्षा का औसत ३० इंच है। कभी-कभी तो इतनी ज्यादा वर्षा होती है कि चम्बल में बाढ आ जाती है और कोटा नगर के कई हिस्सों में पानी भर जाता है।

भूमि व उपज—इस राज्य की ज्यादातर भूमि उपजाऊ और काली है। ऐसी भूमि चम्बल, पार्वती और अण्डेरी नदियों तथा दर्रे के पर्वत-श्रेणियों और कोटरियों के बीच में स्थित है। इसमें बारां, अन्ता, मांगरौल, इटावा, बड़ोद, दीगोद, लाडपुरा, कनवास, सांगोद, खानपुर और कुन्जेड़ की रियासतें आती हैं। यह भाग ज्यादातर मैदानी और उपजाऊ है। इसमें ईख, अफीम, तम्बाकू, रूई, तथा सब प्रकार के अनाज पैदा होते हैं। अफीम पहले यहां बहुत ज्यादा पैदा होती थी लेकिन अब सरकार के आदेशों के अनुसार उत्पादन कम किया जा रहा है। बारां में केन्द्रीय सरकार का अफीम का गोदाम है जहां से विभिन्न स्थानों को अफीम भेजी जाती है। अफीम बेचने का अधिकार केवल केन्द्रीय सरकार का है।

यह राज्य राजपूताने का धान्य-भण्डार है। पश्चिमी राजपूताने के लोग अकाल के वक्त इस क्षेत्र में ही शरण लेते हैं। नदी व कुओं से काफी भाग में

१ चम्बल नदी के लिये विस्तृत विवरण बून्दी राज्य का इतिहास के पृ. ४–५ पर देखिये।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सिंचाई होती आई है। अब चम्बल नदी पर बांध बन जाने पर काफी सिंचाई होने लगेगी। अतः फिर तो यह क्षेत्र राजस्थान का सबसे बड़ा धान्यागार हो जायेगा।

जंगल—पार्वती नदी के पूर्व की ओर जंगल घने हैं। जंगलों में घास,लकड़ी, गोंद, महूवा, मोम, शहद आदि पर्याप्त मात्रा में होते हैं। इनसे यहां के निवासी अपना जीवन-निर्वाह करते हैं क्योंकि जंगली भागों में खेती कम होती है। अधिकतर पेड़ बबूल, गूलर, ढाक, बड़, सागवान, शीसम आदि के पाये जाते हैं। इन जंगलों में हिंसक पशु बहुत रहते हैं। सिंह, बाघ, चीता, रींछ, सांभर, हरिण, नीलगाय, बारहसिंहा, सूअर आदि बहुतायत से पाये जाते हैं। शाहबाद, किशनगंज, खानपुर, हकलेरा, कनवास और असनावर जंगली जानवरों के मुख्य आवास हैं। दर्रे की घाटी के आसपास इन जानवरों का अधिक शिकार किया जाता है। जंगली पक्षियों में चील, मोर, सिकरा, बाज, तोता, तीतर, गिद्ध, बटेर आदि होते हैं। गागरोण का तोता सर्वत्र प्रसिद्ध है। जल-पक्षियों में सारस, बगुला, बतक, जलमुर्ग आदि अधिक पाये जाते हैं।

संचार व्यवस्था—व्यापार की तरक्की के लिए तथा जनता की सुविधा के लिए यातायात की सुविधा होनी नितान्त आवश्यक है। रेल, सड़कों, तार, डाक आदि से ही राज्य की प्रगति सम्भव हो सकती है। कोटा राज्य में संचार व्यवस्था की प्रारम्भ से ही कमी रही है। महाराव भीमसिंह के शासन-काल में यहां हवाई अड्डा बनाया गया है परन्तु उसका विशेष उपयोग नहीं होता। केवल शौकिया हवाई जहाज उड़ाये जाते हैं। नदियों का, नावों द्वारा व्यापार नहीं होने के कारण कोई विशेष उपयोग नहीं होता है। वर्षा के दिनों में तो इनमें बाढ आ जाने के कारण खेती नष्ट हो जाती है। आवागमन के मार्ग रुक जाते हैं। सामान्य संचार-व्यवस्था के साधन रेल व सड़कें ही हैं और वे भी पर्याप्त नहीं हैं।

इस राज्य में दो रेल्वे लाईनें हैं। एक कोटा-बीना लाइन का भाग और दूसरी नागदा-मथुरा लाइन का भाग। कोटा-बीना लाइन कोटा राज्य में ६९ मील चली है। यह लाडपुरा, दीगोद, अन्ता, बारां और कुन्जेड़ की रियासत में से होकर निकलती है। इस पर कोटा राज्य के कोटा जंक्शन, दीगोद, भौरा, अन्ता, विजौरा, बारां, छजावा, अटरू और सालपुरा कुल ९ स्टेशन हैं। दूसरी रेल्वे लाइन कोटा जंक्शन से दक्षिण की ओर सुकेत तक ४५ मील लम्बी है। यह लाडपुरा, कनवास और चेचट की रियासतों में से गुजरी है। कोटा राज्य की सीमा में इस पर कोटा जंक्शन, कोटा सिटी, डाकन्या तालाब, डाडदेवी,

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

आलन्या, रांवठा, रोड, दर्रा, मोडक, और रामगंज मण्डी कुल ६ स्टेशन हैं। एक स्टेशन कोटा जंकशन के उत्तर में इन्द्रगढ स्टेशन भी है। इन रेल लाइनों से राज्य को ७० लाख रुपये सालाना की आय है।

कोटा राज्य में १९४७ ई० में पक्की सड़कें २७५ और कच्ची सड़कें ५७० मील लम्बी थीं। कच्ची सड़कें केवल गर्मी और सर्दी की मौसम में काम आती थीं। राज्य की सब तहसीलें सड़कों से सम्बन्धित थीं। वर्षा ऋतु में भूमि चिकनी होने के कारण व नदी-नालों की भरमार के कारण यातायात बन्द रहता था। मुख्य सड़कें निम्नलिखित थीं—कोटा से झालावाड़ (५३ मील पक्की सड़क), कोटा से बून्दी (२२ मील पक्की सड़क), कोटा से बारां (५० मील पक्की सड़क), कोटा से कुवाई (६६ मील सड़क) बून्दी से कोटा होता हुआ झालावाड़ को जाने वाली सड़क राष्ट्रीय राजपथ है। कोटा-बून्दी तथा कोटा-झालावाड़ सड़कों का रास्ता वर्षा के समय चम्बल व आहू नदी आ जाने के कारण रुक जाता है। उस समय नदो पार करने के लिए नावें काम में लाई जाती हैं। अब तो इन सड़कों का काफी विस्तार हो रहा है तथा नदियों में जगह-जगह रपटें बनाई जा रही हैं।

१९४७ में कोटा राज्य में ४५ डाकघर और ५ तारघर थे। अब तो इनकी संख्या निरन्तर बढती जा रही है।

खनिज पदार्थ—कोटा में कई प्रकार के खनिज पदार्थ पाए जाते हैं। पहले राज्य को इससे काफी आमदनी होती थी लेकिन धीरे धीरे विदेशी प्रतियोगिता के कारण इसकी आमदनी कम हो गई। खनिज पदार्शों में यहां पत्थर मुख्य रूप में मिलता है जो सफेद, लाल और काले रंग का होता है। कहीं-कहीं इसकी लम्बी-लम्बी पट्टियां निकलती हैं तो कहीं-कहीं छोटे-छोटे कातले और कहीं-कहीं केवल टुकड़े। यहां का सफेद पत्थर बहुत सुन्दर होता है। उस पर घड़ाई व छंटाई बहुत बढिया की जा सकती है। इसकी खानें मोडक, रामगंज मंडी व दर्रे तक फैली हुई है। लाल पत्थर की खानें निजामत लाडपुरा, कुन्जेड़ और खानपुर में पाई जाती हैं। लाल इमारती पत्थर लगभग सब जगह पाया जाता है। गेरू, रातई और पीली मिट्टी भी निजामत शाहबाद, इकलेरा और छीपाबड़ौद में पाई जाती है। अन्ता, मोडक, इन्द्रगढ, बारां खेड़ा और जगपुरा कसार में चूना बनाने का पत्थर बहुतायत से मिलता है। मोडक और इन्द्रगढ के पत्थर से सीमेन्ट बनाया जाता है।[1] लोहे की खानें शाहबाद और इन्द्रगढ की पहाड़ियों में स्थित हैं परन्तु उनका उपयोग नहीं किया जाता है क्योंकि आसपास कोयले

१ सवाई माधोपुर तथा लाखेरी में सीमेन्ट के कारखाने हैं

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

की खानें न होने के कारण लोहा निकालना महंगा पड़ता है। कहीं कहीं पर सुलेमानी पत्थर भी मिलता है। कुन्डी और मोठपुर के पास काच बनाने की रेत भी पाई जाती है। कोटा राज्य के क्षेत्र में खनिज भरे पड़े हैं। यदि इनका पता लगा कर निकाला जाय तो अमूल्य पदार्थ निकलेंगे।

धन्धा—यहां के लोगों का मुख्य धन्धा खेतीबाड़ी है। उपजाऊ काली मिट्टी होने के कारण तथा वर्षा व सिंचाई के पर्याप्त साधन होने के कारण कोटा के ज्यादातर लोग खेती करके अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। यह क्षेत्र राजपूताने का धान्य-भाण्डार कहलाता रहा है। दोनों फसलें—रबी व खरीफ पर्याप्त मात्रा में यहां बोई जाती हैं। यह सब कुछ होते भी यहां का किसान वर्ग गरीबी में ही रहता आया है। इस क्षेत्र में भूमिहीन किसानों की संख्या बहुत ज्यादा है। राज्य में बड़ी बड़ी धान की मण्डियाँ—कोटा, बारां, अन्ता, मांगरोल, सीसवली, सांगोद, खानपुर, सारोला, रामगंज आदि स्थानों पर हैं। यहां का दूसरा मुख्य धन्धा कपड़ा बुनना है। कोटा की मलमल, महमूदो, डोरिया आदि अपनी बारोकी और रंगों के लिये बहुत प्रसिद्ध हैं। बारां के चून्दड़ी के बंधे हुए साफे व दुपट्टे अपनी बन्धाई के लिये प्रसिद्ध हैं। कोयला की रेजी प्रसिद्ध है। कैथून व मांगरोल करघा उद्योग के मुख्य केन्द्र हैं। प्राचीन काल में कोटा की तलवार प्रसिद्ध थी। अब तो तलवारों का कम ही उपयोग होता है।

सामाजिक, धार्मिक व साँस्कृतिक विवरण

निवासी—इस राज्य के अधिकांश निवासी आर्य और सिथियन वंश के हैं। भारत में जितने विदेशी आक्रमण हुए और विदेशी भारत में बसे वे सब कोटा के क्षेत्र में भी रहे। अतः कोटा जो कि मालवा का अंश कहलाया जाता

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

है, वहां कई जातियों का संघर्ष-स्थल रहा है। यही कारण है कि यहाँ मिश्रित जातियाँ अधिक पाई जाती हैं।

सामाजिक दृष्टि से आबादी विभिन्न जातियों में बँटी हुई है। इसका मोटा विभाजन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, मुसलमान, कृषक व श्रमजीवी हैं। कृषकों में धाकड़, कराड़, मीणा व भील हैं ।श्रमजीवी जातियों में चमार मुख्य हैं।

राजपूतों ने यहाँ शासन स्थापित कर अपना प्रभुत्व सामाजिक जीवन में भी स्थापित किया। उनके रीति-रिवाज, खान-पान, वेश-भूषा तथा आचार-व्यवहार जनता अपनाने लगी। लोगों की खाँपें राजपूतों की खाँपों की तरह होने लगीं। इनका खाना-पीना बड़ा सादा था। आम जनता व कृषक लोग मक्की, जवार व घाट खाते हैं। माँस व मदिरा का प्रयोग कम किया जाता है परन्तु राजपूत वर्ग में इसका प्रयोग अधिक है। इनकी वेष-भूषा में धोती-अंगरखी तथा साफा मुख्य है। साफे के स्थान पर ज्यादातर पगड़ी बांधी जाती है। बहु शादी करने का रिवाज है। बड़े भाई की स्त्री को देवर से विवाह करने की प्रथा भी है। शादी-गमी के अवसर पर माहिरा किया जाता है। शादी के लिए बचपन में ही मँगनी तय करली जाती है और कभी कभी तो गर्भावस्था में ही शादी के वचन पक्के कर लिए जाते हैं। लड़की का जन्म अशुभ समझा जाता है। समाज में ब्राह्मणों का प्रभाव अधिक है। अन्धविश्वास व अन्य कई प्रकार की सामाजिक कुरीतियों के कोटा के लोग शिकार हैं। स्त्रियों का पहनावा घाघरा, काँचली व ओढ़नी होती है जो मोटे कपड़े की होती है। पर्दा-प्रथा व्यापक है। राजपूत स्त्रियें तो बहुत पर्दा करती हैं। आम जनता की स्त्रियाँ सिर्फ घूँघट निकाल लेती हैं। गहने पहनने का बड़ा शौक है। राज्य की तरफ से जिसे सोना बख्शा जाता है, समाज में उसकी इज्जत होती है। महाजन ऋण देने का काम करते हैं। परन्तु समाज में राजकीय पुरुष का प्रभाव अधिक होता है।

लोग अधिक पढ़ेलिखे नहीं हैं। पहली बार राज्य की ओर से शिक्षालय सम्वत् १८७२ में खोला गया जिसमें दो अंग्रेजी, दो फारसी, दो हिन्दी के अध्यापक नियुक्त किए गए और दस रुपये उनका मासिक वेतन था। स्त्री-शिक्षा भी प्रारम्भ की गई। प्रारम्भ में पांच लड़कियें ही पढने आती थीं। सन् १६४७ तक लोक-शिक्षण की अधिक प्रगति नहीं हुई। सम्पूर्ण कोटा राज्य में एक इन्टर कालेज (हरवर्ट इन्टर कालेज), तीन उच्च विद्यालय (हाई स्कूल) थे। हर तहसील में एक मिडल स्कूल तथा एक प्राइमरी स्कूल थी। शिक्षा उन्नति के लिए राजकीय आय का २५ प्रतिशत बजट खर्च किया जाने लगा और सालाना

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

तीन लाख रुपये शिक्षा के लिए खर्च किये जाते थे। यही अवस्था स्वास्थ्य विभाग की थी। आधुनिक क्षेत्र का एक अस्पताल कोटा में था। बाकी तहसीलों में सिर्फ डिस्पेन्सरी होती थीं। १९४७ तक स्वास्थ्य के लिए १ लाख २० हजार सालाना खर्च किया जाता था।

धर्म—कोटा राज्य में हिन्दू अधिक संख्या में होने के कारण आम धर्म हिन्दू है। यद्यपि हिन्दुओं के सभी सम्प्रदाय पाए जाते हैं परन्तु कोटा के शासक और जनता वैष्णव सम्प्रदाय को अधिक मानते हैं। 'श्रीनाथजी' गोस्वामी वर्ग के वैष्णवों का कोटा में बहुत प्रभाव है और कई मन्दिर इस प्रकार के पाए जाते हैं। कोटा स्थित मथुरेशजी का मन्दिर वैष्णव धर्म का प्रतीक है। यहां के महाराव वैष्णवों को खूब दान देते थे। द्वारिका, हरिद्वार, मथुरा आदि वैष्णव केन्द्रों पर धार्मिक यात्राएँ की जाती थीं। महाराव किशोरसिंह प्रथम ने तो बृज भूमि में जाकर बृज लीला का आनन्द भोग किया था और महाराव रामसिंह ने नाथद्वारा तक पैदल यात्रा की थी। नित्य दो कोस चल कर ढाई मास में नाथद्वारा पहुँचे। महाराव किशोरसिंहजी, जालिमसिंह झाला से अप्रसन्न होकर नाथद्वारा गए और कोटा का राज्य श्रीनाथजी की भेंट कर दिया था।

वैष्णव धर्म के साथ साथ कोटा की जनता शिव व सूर्य की उपासक भी है। झालरापाटन में स्थित सूर्य मन्दिर इस बात का द्योतक है कि हाड़ौती की जनता एक समय में सूर्य की उपासक थी। भीमगढ़ में प्राप्त एक विशाल शिवलिङ्ग पाया गया है जिसका अवशेष इस क्षेत्र में शैव मत प्रभावशाली होना बतलाता है। कोटा में जैन धर्म का प्रचार भी था। शेरगढ़ में ग्यारहवीं शताब्दी की तीन खंडित जैन प्रतिमाऐं भी हैं। यह एक राजपूत सरदार द्वारा बनवाई गईं। इससे प्रतीत होता है कि जैन धर्म के अनुयायी न केवल व्यापारी वर्ग ही था परन्तु राजपूतों ने भी इसे स्वीकार किया। अन्य धर्मावलम्बियों में मुसलमान अधिक हैं। राज्य की ओर से उन्हें ऊँचे ऊँचे पद दिये जाते थे। इससे स्पष्ट है कि शासकों ने धर्म-सहनशीलता की नीति अपनाई थी। धार्मिक अन्धविश्वास, भूत-प्रेत आदि का प्रभाव जनता पर अब भी है। धार्मिक मेलों में कोटा में दशहरा का मेला अत्यन्त महत्वपूर्ण है। दशहरा के अवसर पर यह मेला सात दिन लगा रहता है।

भाषा—यहाँ की भाषा राजस्थानी है क्योंकि इसमें राजस्थानी शब्द अधिकतर होते हैं। यहाँ की बोलचाल की भाषा हाड़ोती कही जाती है। कुछ लोग मालवी बोलते हैं। हाड़ोती शुद्ध राजस्थानी भाषा नहीं जिसे डिंगल का स्वरूप

Ac. Gunratnasuri MS		Jin Gun Aradhak Trust

दिया जा सके। हाड़ोती उच्चार और व्याकरण की दृष्टि से गुजराती से मिलती-जुलती है। कुछ यह मालवी भाषा के प्रभावयुक्त हो गई है। मालवी भाषा अधिकतर मनोहरथाना, छीपाबड़ौद, अकलेरा, बकानी, असनावर और चेचट में ज्यादा बोली जाती है और शुद्ध हाड़ोती कोटा व कोटारियों में बोली जाती है। प्रारम्भ में राजकीय भाषा संस्कृत थी लेकिन ई. सन् १८७३ में फारसी हो गई और फिर कालान्तर में हिन्दी ने फारसी का स्थान १८८० में ले लिया। अंग्रेजी राज्यकाल के समय १६०० ई० के बाद राज्य में अंग्रेजी का ज्यादा प्रचार हो गया। शाहबाद में सहरियों की अलग बोली है।

महाराव भीमसिंह ने वल्लभ सम्प्रदाय ग्रहण किया और गढ़ में मन्दिर बनवा कर बृजनाथ की मूर्ति की उसमें प्रतिष्ठा की थी। दुर्जनसालजी के समय सम्वत् १८०१ में मथुरानाथजी बून्दी से कोटा लाए गए। राव दुर्जनसाल बड़े भगवद्-भक्त थे। वि. सं. १७६७ में उन्होंने सप्त स्वरूपों में एक लाख रुपया खर्च किया था। अन्नकूट आदि वल्लभ सम्प्रदाय के उत्सव शुरू कराये।

कोटा राज्य का शासन-प्रबन्ध

कोटा राज्य मुगल सल्तनत की देन है। मुगलों की शासन-व्यवस्था तो कोटा राज्य में नहीं थी परन्तु कुछ उस ढांचे के आधार पर कालान्तर में अंग्रेजों के आने से पहले तक बन गई। कोटा का राज्य हाड़ा माधोसिंह के वंश के शासकों का रहा है। यहां के शासकों को 'महाराव' कहा जाता है। महाराव का राज्य-चिन्ह का उद्देश्य 'अग्नेरपितेजस्वी' अर्थात् अग्नि से भी तेजस्वी है। इस राज्य-चिन्ह के मध्य में एक गरुड़ आकृति और इसके आसपास दो उड़ते घोड़े बने हुए हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

महाराव कोटा राज्य के अध्यक्ष हैं। राज्य के वह सर्वेसर्वा हैं। राज्य की व्यवस्थापिका, कार्यकारिणी तथा न्यायपालिका शक्तियें राज्य के महाराव के हाथ में निहित हैं। महाराव निरंकुश शासक हैं और आन्तरिक रूप में देवताओं के प्रतिनिधि रूप में देखे जाते हैं परन्तु वे हमेशा ही मुगलों के अधीन रहे हैं। बाद में अंग्रेजों के। मुगलों के वे सिपहसालार व मनसबदार थे। मुगलों और अंग्रेजों को वे हमेशा खिराज देते रहे हैं। मुगल प्रभाव सिर्फ कागजी था।

केन्द्रीय शासन-सत्ता शासक में निहित थी। पूर्ण रूप से हिन्दू कानून प्रचलित था और यहाँ की प्रजा सब भाँति कोटा नरेश की प्रजा थी। राज्य में सरकारी पद पर नियुक्ति महाराव के नाम पर होती थी और आरम्भ में "महाराजाधिराज महाराव श्री…बंचनाव" ऐसा लिखा जाता था। राज्य की देखरेख करने के लिए दीवान की नियुक्ति होती थी। यह नियुक्ति महाराव करते थे। राज राणा जालिमसिंह के बाद अंग्रेजी गुप्त सन्धि के अनुसार सन् १८१९ से सन् १८३७ तक दीवान का पद झालों के वंश में पैतृक रहा। परन्तु जब मदनसिंह झाला को झालावाड़ का राज्य प्राप्त हो गया तो पुनः यह पद महाराव की शक्ति के अन्तर्गत आ गया। दीवान आय-खर्च, कोष आदि की देखरेख करता था। दूसरा मन्त्री फौजदार होता था जो सेना का अध्यक्ष होता था तथा राज्य की व महाराव की सुरक्षा का भार उसी पर होता था। उसकी नियुक्ति भी महाराव करते थे परन्तु राज राणा जालिमसिंह व उसके उत्तराधिकारियों ने इन दोनों पदों को एक मिला कर अपनी शक्ति बढ़ा ली थी। दीवान या प्रधान या मुसाहिबआला के साथ ठाकुर, चौधरी और हवालगीर होते थे। पुलिस तथा जुड़िशियल विभाग अलग-अलग नहीं थे। गिरफ्तार करने वाला ही न्यायाधीश बन जाता था।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

राज्य कई परगनों में विभक्त होता था। प्रत्येक परगने में एक चौधरी, एक कानूगो और एक हवालगीर रहता था। हवालगीर प्रायः राजपूत होता था और दरबार से नियत किया जाता था। परगने में एक फोतदार भी होता था। हवालगीर को १०) मासिक वेतन मिलता था और सिपाहियों का वेतन ३) मासिक था। कानूगो का कार्य हकत और पड़त जमीन का हिसाब रखना तथा उसकी उन्नति करना था। चूंकि साम्राज्य के प्रत्येक परगने का कानूगो सम्राट द्वारा नियत किया जाता था इसलिए कोटा के परगनों के कानूगो भी शाही फरमान द्वारा नियुक्त किए जाते थे। इस प्रकार कानूगो शाही प्रतिनिधि होता था। परगने की भूमि लगान, आमद तथा खर्च का हिसाब वह दफ्तेर खाता आली (हिसाब विभाग) में भेजता था। परगने के चौधरी, जागीरदार, प्रजा आदि कानूगो की सलाह से कार्य करती थी। कानूगो का पद परम्परागत था परन्तु एक कानूगो के मरने के बाद उसके पुत्र को शाही फरमान लेना आवश्यक था। इनका वेतन नगद था। परन्तु कालान्तर में आय के अंश के रूप में दिया जाने लगा। कोटा नरेश की आज्ञा का पालन करना उनका एक कर्त्तव्य होता था। परगनों पर कोटा महाराव का अधिकार तीन रूप में था—जागीर, मुकाता और इजारा। कोटा शासक सामन्तों की सेवा के बदले में जागीर देते थे। अपने सम्बन्धियों को जागीर देते थे। जागीर के परगने से मुगलों का सम्बन्ध नाम-मात्र था। जो परगने मुगल बादशाह बखसोस करते थे वे मुकात कहलाते थे। अधिकतर मुगल शासक कोटा नरेश को इनायत के रूप में देते थे। इनकी खिराज मुगलों को दी जाती थी। इसी प्रकार इजारा जागीर कोटा नरेश महाराव को प्राप्त थी। कोटा महाराव इन परगनों का मतालबा मुगल राज्य में साढ़े तीन लाख वार्षिक देते थे जो बाद में मराठों को दिया जाने लगा।

शासन की छोटी इकाई गांव थी। गांव में पटेल का प्रभाव बहुत था। राज्य की भूमि-कर-आय वसूल करने का अधिकारी वही होता था। जालम-सिंह के समय से यह पटेल-प्रथा हटादी गई और पटेलाई व्यवस्था स्थापित की गई। पटेलाई की प्राप्ति के लिए नजराना दिया जाता था। हर नए महाराव के समय पटेलाई नये रूप से नजराना देकर लेनी पड़ती थी। गांव में पंचायत का मुखिया चौधरी कहलाता था। पंचायत सामाजिक व आर्थिक संगठन का केन्द्र था।

भूमि-प्रबन्ध कोटा राज्य में मुगल प्रबन्ध की तरह ही था। लगान उपज का तृतीयांश लिया जाता था। नकद या उपज के रूप में जमा करा दिया जाता था। कोटा में भूमि का विभाग कभी नहीं स्थापित किया गया। खड़ी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

हुई फसल को राज्य-कर्मचारी गांव के मुख्य किसानों के सामने कूंता करते थे। इस कूंती हुई उपज का तीसरा हिस्सा राज्य में जाता था। दूसरा जागीरदार ले लेते थे। एक हिस्सा कृषक लेता था। जमीन नापने का काम उसी समय पड़ता था जब कि किसी को माफी दी जाती थी। जागीरदार को ताकीद की जाती थी कि उनके घोड़े फसल को नष्ट न करें। जिन किसानों को बीज नहीं मिलता था उन्हें राज की ओर से दिया जाता था। पटेलों से नजराना प्रति वर्ष लिया जाता था तथा उन्हें राज्य से पगड़ी दी जाती थी जिसका खर्चा परगने के बजट से निकाला जाता था। किसानों को दुर्भिक्ष के समय तकाबी दी जाती थी। राजराणा जालिमसिंह ने पटेलों की कौंसिल, जिस प्रकार कि आधुनिक रेवेन्यू बोर्ड होता है, का निर्माण किया। कृषकों के झगड़ों की यह एक प्रकार से अदालत अपील थी। भूमि का नाप करवाया गया। उपज के अनुसार भूमि बांटी जाने लगी—पीवत, खेड़ा और माल। लगान निश्चित करके यह घोषित कर दिया गया कि कड़ता नकद लिया जावेगा, उपज के रूप में नहीं। प्रति बीघा डेढ़ आना पटेल की रसूम नियत की गई। उन तमाम गांवों में जहाँ की जमीन अच्छी उपजाऊ थी वहां पर जालिमसिंह ने राज के हवाले स्थापित किए। इन हवालों के वास्ते किसानों से जमीन छीन ली जाती थी। कृषि में उन्नति की गई। नाना प्रकार के कर लेने की व्यवस्था कोटा राज्य में थी। मुख्य कर भूमि-कर था जो उपज का एक तिहाई लिया जाता था। यह कर कड़ते के अन्न से वसूल किया जाता था। प्रारम्भ में नकद अनाज के रूप में परन्तु ई० सन् १८०० के बाद नकद के रूप में लिया जाता था। दूसरी प्रकार का कर मुकाता होता था। एक व्यक्ति से गांव का निश्चित लगान वसूल करके उसको यह अधिकार दिया जाता था कि कृषकों से वह स्वयं लगान वसूल कर ले। राज्य द्वारा ऋण अनाज या खेती को गिरवी रखने पर दिया जाता था। माल हासिल के अलावा २५ प्रकार के और कर थे। कँवरमटकी, पटेलखूटी, पटवारी, बलाई, गजबंधनी, सराई, छापों, नापों, जकात आदि। जकातों की नियुक्ति राज्य की तरफ से होती थी। भूमि कर के दो सीगे थे—खालसा और जागीर। खालसा से भूमि कर बटाई या लटाई द्वारा वसूल किया जाता था। जागीरदारों से कर नकदी वसूल किया जाता था। जितना जागीरदार नहीं देता था वह ऋण मान कर इस पर ब्याज लिया जाता था। ये सब कर आय के साधन थे। परगने के अफसरों को वार्षिक बजट के अनुसार परगने की आय में से खर्च करने का अधिकार था। खर्च के बाद रुपया यदि बचता तो राजकीय खजाने कोटा में भेज दिया जाता था। आय और खर्च का हिसाब परगने की

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कचहरी में रहता था और प्रति वर्ष दीवान के पास भेजा जाता था। खर्च के मुख्य मद—पुण्यार्थ, दरगाही, हनूरीकातन राजलोक, महल, कारखाना, बोहरा को देना, देश का खर्च, अटाला, आम्बार, सेना आदि थे। बेगार प्रथा द्वारा भी राजकीय कार्य होता था। बेगार में प्रत्येक बेगारी को जबरदस्ती कार्य करना पड़ता था और उसे केवल पेट-पूर्ति के लिए नाम मात्र पैसे दे दिये जाते थे। राजपूताने में जागीर प्रथा का यह एक विशेष अंग था।

न्याय हिन्दू प्रणाली से किया जाता था। परम्पराओं को दृष्टिकोण में रख कर ही दंड दिया जाता था। गांव की पंचायतों को दण्ड देने का अधिकार था। उनकी अपील हो सकती थी। प्रत्येक परगने के मुख्य गांव में कोतवाली का चबूतरा होता था। कोतवाल ही अपराधियों को पकड़ता था और वही उनको दण्ड देता था। न्याय विभाग कोई प्रथक नहीं था। चौधरी, कानूगो और ठाकुर से भी न्याय करने की प्रथा थी। शिकायतों की सुनवाई होती थी। कागजी कार्यवाही कम होती थी। चोरी, डकैती और हत्या के अपराधियों को प्राय: अंग-भंग व प्राण-दण्ड ही दिया जाता था। छोटे अपराधों का अर्थ-दण्ड दिया जाता था। व्यभिचार पर दण्ड जुर्माना होता था। राज-नियम का भंग करना घोर अपराध माना जाता था। राजा की कोप दृष्टि होते ही उस व्यक्ति का सर्वनाश हो जाता था। तोप से उड़ा देना, सिर कटवा देना, हाथी के नीचे कुचलवा देना राजा के बांए हाथ का खेल था। इसके विरुद्ध कहीं अपील नहीं की जा सकती थी।

सेना का अध्यक्ष फौजदार कहलाता था। कोटा की सैनिक व्यवस्था मुगल व्यवस्था से मिलती-जुलती थी। कोटा की सेना में भी फौजदारी, फीलखाना, शुतुरखाना, रिसाला, तोपखाना, हरावल आदि होते थे। सेना में दो प्रकार के सिपाही थे। एक तो जागीरदार भेजते थे जिनका खर्चा स्वयं जागीरदार देते थे। दूसरे महाराव स्वयं भर्ती करते थे। महाराव का यह कार्य फौजदार करता था। जालिमसिंह के पहले स्थायी सेना सुव्यवस्थित रूप से रखने की कोई प्रणाली नहीं थी। जालिमसिंह ने छावनी (झालावाड़) में स्थायी सेना का मुख्य केन्द्र स्थापित किया। कवायद, शिक्षा, अनुशासन से सैनिक संगठन में सुधार किये। हाथी, घोड़े, ऊंटों का प्रयोग सेना में होता था। अधिकतर घोड़े काम में लाए जाते थे। पैदल सैनिक को युद्ध की पूर्ण शिक्षा दी जाती थी। अधिकतर सैनिक लोहे के कवच और टोप पहनते थे। तलवार, ढाल, बर्छी, भाला व तोप काम में लाए जाते थे। कोटा के मुख्य किलों का जीर्णोद्धार करवाया जाता था

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जिससे राज्य की सुरक्षा हो सके। मुख्य किले शेरगढ, मनोहरथाना, शाहबाद व गागरोण के थे।

सन् १८५७ तक कोटा की उपरोक्त शासन-व्यवस्था बनी रही। सिद्धान्त के रूप में सारा कार्य दरबार की आज्ञा से होता था परन्तु वास्तव में राज्य के बड़े-बड़े कर्मचारी, महाराव के कुटुम्ब के लोग और कृपा-पात्र मनचाहा करते रहते थे। घूसखोरी राज्य का मुख्य अंग था। राजा का कोई सिद्धान्त नहीं था। उसकी समझ में जो आया, चाहे बुरा ही क्यों न हो, राज्य का वह नियम हो जाता था। प्रजा की भलाई का ध्यान राजा को न तो कभी था न कभी वह परवाह करता था। राज्य दरबारी होना इज्जत ही नहीं बल्कि राज्य-शक्ति का स्वरूप था। शासन पूर्ण शिथिल था। अधिकतर राजा बोहरों से ऋण लेकर काम चलाते थे क्योंकि परगनों से कभी बचत की रकम नहीं आती थी। कर इकट्ठा अवश्य कर लिया जाता था परन्तु राजकोष में आते-आते वह कहीं बीच में ही गायब हो जाता था। न कभी सुनवाई हुई न देखरेख। १८५७ के सैनिक-विद्रोह ने इस शासन-प्रणाली की कमजोरिएँ स्पष्ट करदीं। सन् १८६२ में कोटा के तत्कालीन नरेश महाराव रामसिंह ने राज्य-शासन का पुनः निर्माण किया।

राज्य को कई जिलों में विभक्त किया गया। प्रत्येक जिले का एक जिलाधीश नियत किया गया। प्रत्येक जिले में से एक लाख मालगुजारी का आना आवश्यक माना गया। जिलेदार को ये कार्य सोंपे गए—मालगुजारी वसूल करना, जिले की शान्ति बनाए रखना और न्याय करना। वह सौ रुपये तक जुर्माना कर सकता था व एक मास की कैद दे सकता था। घूम-घूम कर वह प्रति सप्ताह जिले का निरीक्षण करता था। प्रत्येक जिले में एक थानेदार नियत किया गया जो जिलेदार के अधीन कार्य करता था। एक थानेदार के अधीन एक उर्दू लेखक, एक नामादार और १५ सिपाही रहते थे। जिले में पुलिस चौकियाँ बनाई गईं। अपने क्षेत्र में चोरी, डकैती या जुर्म का जिम्मेवार चौकीदार व थानेदार समझा जाता था। आवश्यकता पड़ने पर सिपाहियों की संख्या बढ़ा दी जाती थी। थानेदार को ग्यारह रुपये जुर्माना व १५ दिन की कैद देने का अधिकार था। हर मामले की सूची बना कर दरबार के पास भेजी जाती थी।

कोटा शहर के लिए एक कोतवाल की नियुक्ति की गई। इसको बाईस रुपये जुर्माना और पन्द्रह दिन की कैद का अधिकार दिया गया था। इस से बड़ा मामला होता तो पालखीखाने में चालान किया जाता। मुकदमे की मिसल

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

बना कर वह कोतवाली चबूतरे पर रख देता था। कोतवाल के पास एक फारसी जानने वाला ग्रहलकार होता था। शहर में चोरी न हो, ग्रशान्ति न हो, इसलिए चौकीदारों की नियुक्ति हर मोहल्ले में होती थी। शहर का सफाई-कार्य भी कोतवाली के सुपुर्द रहता था। राह में व्यापारियों की सुरक्षा के लिए ठहरने व सुरक्षा-स्थान नियत किए गए। कोटा-झालरापाटन के रास्ते में हणोत्या, उम्मेदपुरा, ग्रौर मुकन्दरा के स्थान पर ऐसी सराएँ बनाई गईं। व्यापारियों को ग्रपने पास के नौकरों की सूची राज्य को देनी पड़ती थी।

न्याय विभाग (पालकीखाना) का संगठन किया गया। कोतवाल ग्रौर जिलेदार जिसका फैसला नहीं कर सकते थे वे मुकदमे यहाँ निर्णीत होते थे। ५०) जुर्माना ग्रौर एक महिने की कैद का ग्रधिकार पालकीखाने के ग्रध्यक्ष को दिया जाता था। लिखित शिकायत पेश करनी पड़ती थी। विरोधी पक्ष को परवाने द्वारा बुला कर लिखित रूप से निर्णय किया जाने लगा तथा दरबार की मुहर लगने के बाद निर्णय दिया जाता था। पूरी मिसल पालकीखाने में सुरक्षित रखी जाती थी। दरबार में ग्रपील की जा सकती थी। ग्रन्तिम ग्रपील पोलिटिकल एजेन्ट के दफ्तर तक हो सकती थी। इस सुधार घोषणा में कानून की व्याख्या नहीं थी। यह कार्य कि कौन-सा कानून है कौन-सा नहीं, यह सब कार्य कोतवाल, जिलाधीश व पालकीदार पर छोड़ दिया गया। घूस लेना व देना, लड़की को मारना या बेचना, सती होना घोर ग्रपराध घोषित कर दिए गए।

दफ्तरों का समय निश्चित किया गया। एक पहर दिन चढ़ने पर गढ़ में हाजिर होकर तीसरे पहर तक वहाँ काम करना पड़ता था। शुक्रवार, जन्माष्ठमी, रामनवमी, एकादशी के ग्रवसरों पर व होली-दिवाली-दशहरे पर दफ्तर बन्द करने की ग्राज्ञा भी थी। दफ्तरी ग्रनुशासन कड़ाई के साथ रखने की ताकीद की गई। ग्रफसरों को अपने छोटे कर्मचारियों की सही बात पर ध्यान देने की हिदायत की गई। राज्य-कर्मचारियों की नौकरिएँ लिखित रूप से की जाने लगीं। उनके विरुद्ध शिकायत लिखित की गई। इससे नौकरियों में स्थायित्व ग्रा गया। सेना में भरती करना या सैनिक को नौकरी से हटाना केवल महाराव के ग्रधीन रखा गया ग्रौर दरबार में ग्रर्जी देने का ग्रधिकार एडजुटेन्ड, मेजर, चौधरी ग्रौर बखसी को दिया गया। सारे देश का खजाना कृष्ण भण्डार में जमा किया जाने लगा। कोष का ग्रध्यक्ष ग्रलग नियत किया जाता था तथा दैनिक हिसाब सायंकाल से पहले दरबार के सामने पेश किया जाने लगा।

सन् १८६३ का यह शासन-सुधार ठीक नहीं था। कोई जिले छोटे ग्रौर कोई जिले बड़े थे। ग्रतः जब नबाब फैजग्रली दीवान नियुक्त हुग्रा तो सन् १८७३ में

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पुनः शासन सुधार किया गया। सम्पूर्ण कोटा को आठ निजामतों में विभक्त किया गया। प्रत्येक निजामत दो तहसीलों में बांट दी गई। प्रत्येक निजामत का प्रधान नाजिम होता था जिसको माल सम्बन्धी, दीवानी व फौजदारी अधिकार दिये गए। तहसील का अध्यक्ष तहसीलदार होता था जो नाजिम के नीचे होता था। प्रत्येक तहसील में कम से कम एक थानेदार नियुक्त किया जाने लगा। नाजिम के पास कई अहलकार होते थे जिनको राज्य की ओर से वेतन मिलता था। नाजिमों को वेतन ८०) तथा तहसीलदारों को ३०) मासिक दिया जाता था।

राज्य के कार्य में सलाह व राय के लिए नबाब फैजअली ने सन् १८७४ में एक कौंसिल का निर्माण किया जिसमें ३ सदस्य थे। इसका कार्य पोलिटिकल एजेन्ट के नेतृत्व में हुआ करता था। यद्यपि वह कौंसिल का प्रधान नहीं होता था। उसका महकमा एजन्टी कहलाता था जो स्वतन्त्र रूप से कार्य करता था और वही १८६३ के बाद कोटा राज्य के शासन का सार्वभौम सत्ताधारी था। एजेन्टी के हुक्म को कार्य में परिणित करना कौंसिल का कार्य था।

कौंसिल ने कोटा के शासन को अंग्रेजी शासन की तरह लाने का प्रयास किया। नबाब फैजअलीखां के शासन को १८७७ में परिवर्तित किया गया। आठ निजामतों के स्थान पर १५ निजामतें बनाई गईं। राज्य के महकमे पृथक किए गए। दान सीगे का महकमा पुण्यार्थ के नाम से अलग कर राजा के दान खर्च पर रोक लगाई गई।

भूमि के बन्दोबस्त कराने के लिए एक विभाग खोला गया जिससे २० साल में ३ बार बन्दोबस्त कर राज्य की आय में वृद्धि की गई। न्याय के क्षेत्र में १८७३ के सुधार के अनुसार महकमा अदालत आलिया स्थापित किया गया जिसमें स्वयं नबाब फैजअलीखां काम करता था। उसकी सहायता के लिए ३ सदस्यों की कौंसिल बनाई गई जो स्थानीय समस्याओं से उसको परिचित कराती थी। इस महकमे के अधीन दिवानी व फौजदारी अदालतें थीं। हाकिमअदालत की नियुक्ति महाराव करते थे। नाजिमों की तरह दिवानी व फौजदारी अधिकार अदालतों के हाकिमों को दिए गए। १८७७ में इस महकमे की मिसल बनाने का कार्य सुव्यवस्थित व नियमित किया गया। मनुष्यता की दृष्टि से दण्ड और कारागार के नियम बनाए गए। स्त्रियों को कोड़े लगाने का दण्ड उठा दिया गया। कैदियों को भोजन राज्य की ओर से मिलने की व्यवस्था की गई।

जकात के महकमे में सुधार किए गए। पहले यह महकमा सायरात कहलाता था। सन् १८७२ में इसका नाम बदल कर जकात कर दिया। कौंसिल ने इसके

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

दो केन्द्र—एक कोटा में और दूसरा बाराँ में कर दिये। कोटा के जकाताध्यक्ष का एक नायब नियुक्त किया गया। कई जगह नई जकातें स्थापित कीं। आय-व्यय का व्यवस्थित निरीक्षण किया गया। कोटा राज्य के भीतर लिया जाने वाला महसूल बन्द कर दिया गया। जंगल का पृथक विभाग १८८१ ई० में किया गया। परन्तु बाद में १८८६ में माल विभाग के साथ कर दिया गया। माल विभाग १८८३ में संगठित हुआ। इसका एक अध्यक्ष बनाया गया जिसके सहायक दो उपाध्यक्ष होते थे। एक कोटा में रहने लगा व दूसरा शेरगढ़ में। उपाध्यक्ष के कर्त्तव्य, नाज़िमों पर देखरेख व मालगुजारी के नियम बनाए गए।

सेना में भर्ती के नियम बना कर महाराव के अधीन सैनिक विभाग कर दिया गया। सेना का खर्चा ४ लाख तक बढा दिया गया। पुलिस विभाग पूर्वतः बना रहा। कोटा में एक नई कोतवाली रामपुर में स्थापित की गई। चोरियों, डकैतियों आदि का नक्शा प्रति मास बनाया जाने लगा। थानेदार के पास से मालगुजारी का अधिकार हटा लिया गया। पुलिस के अध्यक्ष का पद बनाया गया और पुलिस प्रबन्ध के लिए कोटा के तीन भाग किए गए। प्रत्येक भाग में एक उपाध्यक्ष होता था।

१९४७ में इस राज्य में कुल १९ निजामतें थीं—लाडपुरा, कन्वास चेचट, वीगोद, बड़ौद, इटावा, बाराँ, किशनगंज, शाहबाद, कुंजेड़, अन्ता, माँगरौल, साँगोद, इक्लेरा, छीपाबड़ौद, मनोहर थाना, बकानी, अरनावर, और खानपुर।

आय खर्च—

इस राज्य में चार कस्बे और २५२५ गांव थे। न्यूनाधिक आय ५०,४७,-३४६ रुपया वार्षिक थी और खर्च ५३,५१,९४२ रुपया वार्षिक था। राज्य की तरफ से अंग्रेज सरकार को २३४,७२० रुपया सालाना खिराज दिया जाता था। इसके अलावा पहले दो लाख रुपया देवली छावनी के रिसाले के खर्च के भी अंग्रेजी सरकार को दिए जाते थे। सन् १९२३ से सेना वहाँ से हटा दी गई। कोटा राज्य को १४७३९॥≈॥ रु० (जयपुर झाड़शाही सिक्कों में) जयपुर राज्य को ८ कोटड़ियों के खिराज के देने पड़ते थे।[1] ई० सन् १८२३ में कोटा के

---

१ ये आठ कोटड़ियें हाड़ों की हैं। इनके जागीरदार बून्दी राज्य के अधीन रणथम्बोर के किले की हिफाजत करते थे। यह किला उन दिनों में दिल्ली सल्तनत के किलों में था। १९वीं शताब्दी के आरम्भ में जब मरहठों ने रणथम्बोर को घेर लिया तो वहाँ के मुसलमान किलेदार ने दिल्ली सहायता के लिए लिखा परन्तु वहाँ से कोई मदद नहीं मिली इसलिए किलेदार ने जयपुर के महाराजा माधोसिंह की सहायता प्राप्त करके मरहठों को हराया और किला माधोसिंह को दे दिया। तब से इन कोटड़ियों पर माधोसिंह का अधिकार हो गया। इनसे खिराज वसूल करने के लिए जयपुरी सेना हाड़ौती में आया करती थी जिससे कोटा को नुकसान होता था।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Jin Gun Aradhak Trust Ac. Gunratnasuri MS

दीवान जालमसिंह झाला ने अंग्रेजों के साथ सन्धि करते समय यह स्वीकार किया कि कोटा राज्य १४,३६७॥।) रुपये सालाना जयपुर दरबार को इन कोटड़ियों से वसूल कर पहुँचाता रहेगा। मालवा प्रान्त के खिलचीपुर राज्य से

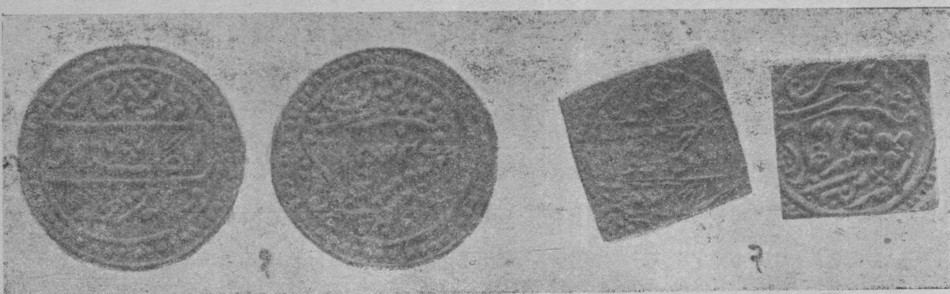

८६६॥।) हुजात वसूल नाम से खिराज कोटा राज्य को सालाना वसूल करना पड़ता था। पहले यहाँ चाँदी का सिक्का बादशाह शाहआलम के समय से कोटा और गागरोण में ढलता था परन्तु १९०१ से यहाँ अंग्रेजी सिक्का जारी कर दिया गया। नया रुपया कलदार कहा जाता था। पहले सिक्के हालो और मदनशाही रुपये थे। सौ कलदार की कीमत ११४ हाली या ११८ मदनशाही रुपये के बराबर थी।

कोटा राज्य के ऐतिहासिक व प्रसिद्ध स्थान

कोटा नगर—यह नगर कोटा राज्य की राजधानी था। अब यह कोटा मण्डल (डिवीजन) का मुख्य स्थान है। यह चम्बल नदी के दाहिने किनारे पर लम्बाकार बसा हुआ है। १९५१ की जनगणना के अनुसार यहाँ की आबादी ६५,१०७ थी। यह नगर पश्चिमी रेलवे की चौड़ी पटरी की नागदा मथुरा रेल

शाखा तथा मध्य रेलवे की बीना कोटा शाखा का जङ्क्शन है। यह दिल्ली से २९१ मील, बम्बई से ५७० मील तथा जयपुर से १४६ मील रेल द्वारा है। पश्चिम रेलवे का डिवीजनल कार्यालय भी कोटा में ही रक्खा गया है।

कोटा नगर का नाम १४ वीं शताब्दी में कोटिया भील के नाम पर पड़ा। तब यहाँ भीलों का राज्य था। वि० सं० १३२१ (१२७४ ई०) में बून्दी के जेतसिंह ने भीलों को हरा कर अपना राज्य स्थापित किया। परन्तु हाड़ा राजपूतों के स्वतन्त्र राज्य के रूप में वि० सं० १६८८ (सन् १६३१) में शाहजहाँ के काल में राव माधोसिंह ने स्थापित किया था। तब से यह हाड़ा राज-

कोटा नगर

पूतों की माधाणी खांप का राजनैतिक केन्द्र १९४८ ई० तक रहा। नगर से दक्षिण की ओर चम्बल नदी के दाहिने तट पर दो दुर्गों के खण्डहर हैं जिनको अकेलगढ कहा जाता है। ऐसा प्रचलन है कि ये भीलों के दुर्ग थे लेकिन बाद में भीलों के सरदार कोटिया ने कोटा बसाया तो इन दुर्गों को छोड़ दिया। ये दुर्ग सुरक्षा के लिए पूर्ण उपयुक्त नहीं थे।

कोटा नगर के तीन ओर ऊँची और पक्की शहर पनाह है जो अब तोड़ी जा रही है। चौथी ओर पश्चिम में चम्बल नदी बहती है जिसका पाट लगभग ४०० गज चौड़ा होगा। शहर के दक्षिणी कोने पर पुराना महल है जो नदी पर से दिखाई देता है। दक्षिण पूर्व की ओर एक सुन्दर लम्बी-चौड़ी झील है जिसमें नावें चलती हैं जिसके चारों ओर सड़क है। इस झील के पास ही कोटा का

बृहत सार बाग (राजघराने का श्मशान) है जहां राव महारावों तथा उनके कुटम्बियों को जलाया जाता है। उन पर बनी हुई छतरियें देखने योग्य हैं।

पुराने महल, कोटा

कोटा नगर में दो मन्दिर दर्शनीय हैं। ये मन्दिर मथुराधीश और नीलकण्ठ महादेव के हैं। मथुराधीश बल्लभ सम्प्रदाय के सात स्वरूपों में सर्व प्रथम माने

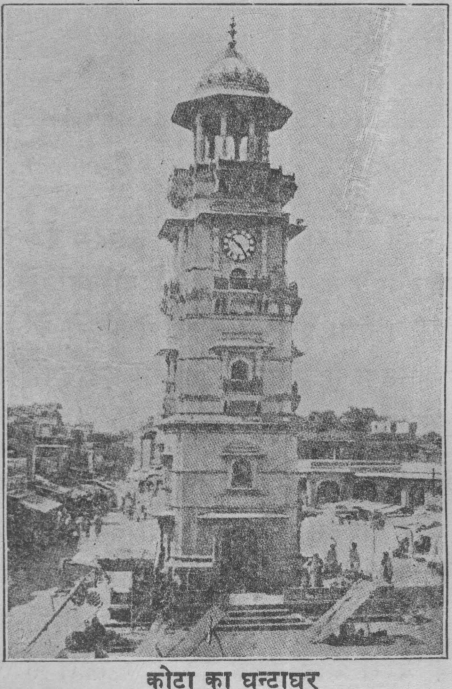

कोटा का घन्टाघर

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जाते हैं। यह मन्दिर पाटनपोल दरवाजे के पास हैं। मथुराधीश की प्रतिमा गोकुल के पास करणाबल गाँव से मिली थी। इसको बल्लभाचार्य ने अपने शिष्य पद्मनाभ के पुत्र विट्ठलनाथ को दी। उसने यह प्रतिमा अपने ज्येष्ठ पुत्र गिरधर को दी जो उसकी बराबर पूजा करता रहा। वि० सं० १७२६ की आसोज शुक्ला १५ को यह प्रतिमा औरंगजेब के अत्याचारों से बचने के लिए बून्दी लाई गई। बाद में वि० सं० १८०१ में कोटा नरेश दुर्जनशाल इसे कोटा ले आए। उस समय के दीवान द्वारकादास की हवेली में यह मूर्ति स्थापित की गई। तब से कोटा बल्लभ-मतानुयायी वैष्णवों का तीर्थस्थान बन गया है। नीलकण्ठ महादेव का मन्दिर किशोरपुरा द्वार के पास भूमि की सतह से नीचा बना हुआ है।

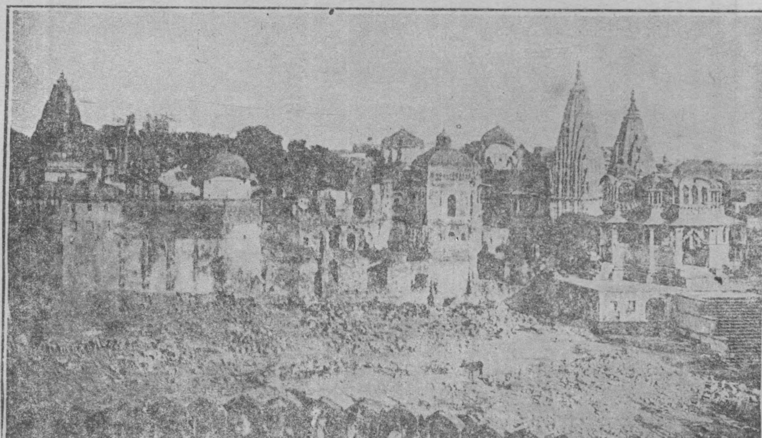

मन्दिर, कोटा नगर

नगर के पास ही लगभग दो मील पर अमरनिवास बाग और महल है।

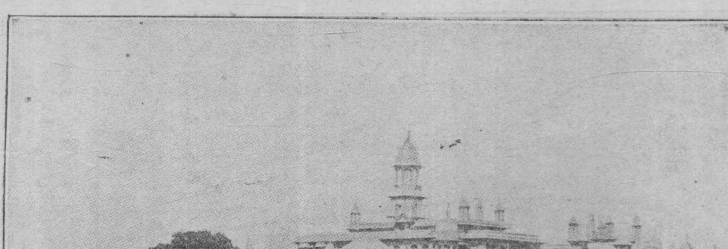

नया महल, कोटा

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इसके पास ही एक दरगाह है जिसके झरोखे के ऊपर एक सैकड़ों मन भारी चट्टान बहुत ही साधारण सहारे के खड़ी है। यह अधरशिला कहलाती है। इस झरोखे से नदी का दृश्य बहुत सुन्दर लगता है।

कोटा से चार मील पूर्व की ओर कन्सुवा नामक छोटे से गांव में शिव-मन्दिर में एक शिलालेख है जो मौर्य्यवंशी राजा शिव गण का वि० सं०

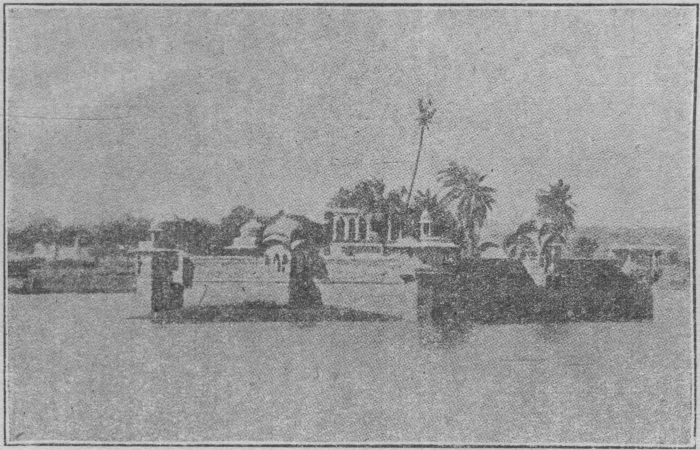

कोटा का तालाब

७९५ का है जिसमें इस मन्दिर के निर्माण का वर्णन किया गया है। वि० सं० १७५१ की कार्तिक सुदि १५ मंगलवार को इस मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया गया तथा परकोटा बनाया गया जैसा कि इस मन्दिर के द्वार पर लगे शिलालेख से ज्ञात होता है।

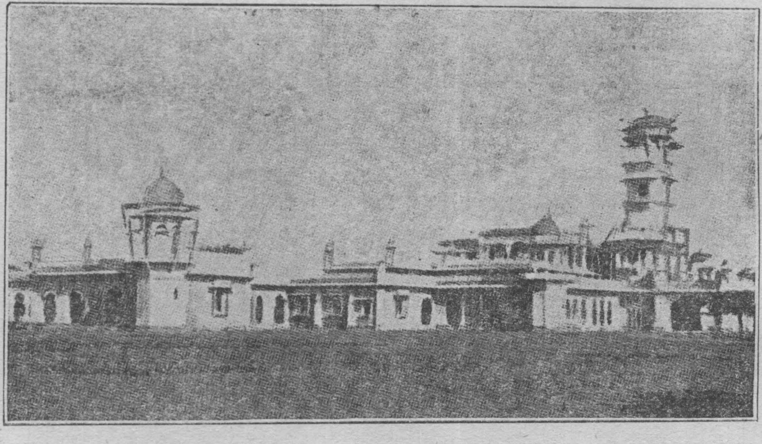

महारानी कॉलेज, कोटा

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

नगर से एक मील की दूरी पर रामचन्द्रपुरा की छावनी है। सन् १८३७ के बाद राज्य की सेना जो 'कोटा कोन्टीनजेन्ट' के नाम से प्रसिद्ध थी—यहाँ रहती थी। वृजविलास बाग में यहाँ का संग्रहालय तथा पुस्तकालय है। संग्रहालय में लगभग २५० कलापूर्ण प्राचोन मूर्तियां, दर्जनों शिलालेख, सिक्के, चित्र, शस्त्र

कर्जन तिली मेमोरियल, कोटा

आदि हैं। पुस्तकालय में लगभग ४००० प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। इनमें से ४०० अप्रकाशित हैं। कई हस्तलिखित ग्रन्थ बहुत सुन्दर लिपि में लिखे गये हैं या चित्रित हैं।

कन्सुआ—कोटा से चार मील पूर्व को ओर कन्सुआ (कणस्वा) का वीरान गांव है। यहां आठवीं शताब्दी का महादेव का एक मन्दिर है। इस मन्दिर के शिलालेख से यह ज्ञात होता है कि यह मौर्य शासक शिव गण ने सम्वत् ७९५ (ई० सन् ७३८) में इस मन्दिर का निर्माण किया था। मौर्यों के प्रभाव में राजपूताना रहा होगा। ऐसा प्रतीत होता है। इस मन्दिर का जीर्णोद्धार वि० सं० १७५१ में कराया गया था।

गैपरनाथ महादेव—कोटा से ९ मील दक्षिण की ओर रतकाकरा गांव के पास गैपरनाथ महादेव का प्रसिद्ध मन्दिर है। यहाँ का झरना बारह मास बहता है। मन्दिर की प्रतिष्ठा वि० सं० १६३६ में हुई थी जिसका यहाँ एक शिलालेख लगा हुआ है।[1]

---

१ गैपरनाथ का शिलालेख—सम्वत् १६३६ आदितवार बाबाजी श्री दामोदरपुरी गैपर यानि धर्मशाला कुदाई अमल कोट महाराज कंवर श्री भोजजी कु बधाई।...
डा० मथुरालाल शर्मा, परिशिष्ठ संख्या ८

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

चार चौमा—कन्वास तहसील की उत्तरी सीमा के पास ४ गाँव चौमा कोट, चौमा बीबू, चौमा मालियान व चौमा मुंडली है। इसमें चौमा कोट में महादेव का गुप्तकालीन प्राचीन मन्दिर है। यहाँ पर शिवरात्री को बड़ा मेला लगता है। इस मन्दिर का बहुत बार जीर्णोद्धार हुआ था अतः इसकी प्राचीनता समाप्त हो गई है। मन्दिर के भीतर एक स्तम्भ पर तथा द्वार के बाईं ओर की दीवार पर संस्कृत में गुप्तकालीन लिपि में शिलालेख है।[1] मन्दिर के अन्दर गुप्तकालीन एक शिवलिङ्ग है।

अटरू—यह अटरू तहसील का मुख्य स्थान है। कोटा से ४८ मील पूर्व की ओर पार्वती नदी के किनारे बसा हुआ है। इसके बाजार में भैसाशाह का बनाया हुआ मन्दिर है। इसकी मूर्ति पर वि० सं० ५०८ की चैत्र सुदि ५ मंगलवार खुदा है। कस्बे के बाहर एक खण्डित मन्दिर है जिसमें केवल ४ स्तम्भ बचे हैं। इसके स्तम्भ पर वि० सं० १३१९ का परमार राजा जयसिंहदेव द्वारा एक कवि चक्रवर्ती पण्डित मोती का भैसड़ा नामक गाँव के दान का उल्लेख है। यह मन्दिर दसवीं शताब्दी के आसपास का बना हुआ प्रतीत होता है। यहाँ की ज्यादातर मूर्तियाँ अब कोटा के संग्रहालय में हैं। यहाँ दो और भी मन्दिर हैं जो गड़गच के मन्दिर कहलाते हैं। ये मन्दिर भी १०वीं शताब्दी के हैं। इनको ई० सन् १६८० में औरंगजेब ने ढहवा दिया।

रामगढ़—यह तहसील निशनगंज में, मांगरोल से ६ मील पूर्व की ओर सड़क के किनारे बसा छोटा सा गाँव है। इस गाँव का पुराना नाम श्रीनगर कहा जाता है। यहां की पहाड़ी पर एक १५वीं शताब्दी का पुराना टूटा-फूटा दुर्ग है। पहाड़ों से घिरे जंगल में एक भण्डदैवरा नामक शैव मन्दिर भी है। यह दशवीं शताब्दी का है तथा इसका जीर्णोद्धार तेरहवीं शताब्दी के आरम्भ में एक मेव वंशीय क्षत्रिय राजा मलय ने करवाया था। इस मन्दिर के शिखर मण्डप, तोरण आदि प्रौढ हिन्दू कला के सुन्दर उदाहरण हैं। शिखर का आधा भाग गिर चुका है। यहां पहाड़ी पर कृष्णा माता का एक अन्य मन्दिर है। इस पर

१–(१) मुक्ता······मयी भवप्रति कृति लिंग जगत्यद भुतम्
(२) प्रासाद······सम्प्रदायद शिल भम्······प्रायन्ध
(३) धते······गुणान्वितांच वसुधाम्
(८) प्रभावात सर्वस्यकृत दुरित वृते ममवता
(९) नमः स्वाय स्थीनी मरू त्वे प्राणथिने प्रीतो दधीचो
(१०) गाधेयाः स
(११) तथा १२—उपरोक्त परिशिष्ठ सं० १

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पहुँचने के लिए ७०० सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। रामगढ़ से प्राप्त अनेक मूर्तियाँ अब कोटा संग्रहालय में रक्खी हुई हैं। रामगढ़ की पहाड़ी तपःस्थली मानी जाती है।

कृष्णविलास—किशनगंज तहसील में विलास नदी के बाएँ किनारे पर कृष्णविलास नगर के खण्डहर हैं। खण्डहरों से ज्ञात होता है कि ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग यह एक बहुत ही वैभवशाली नगर रहा होगा। यहां एक प्राचीन दुर्ग है जिसके केवल खण्डहर बच गए हैं। दुर्ग के समक्ष कभी वराह मन्दिर रहा होगा जो अब टूट फूट गया है। वराह की मूर्ति विशाल है और गुप्तकाल की प्रतीत होती है। मन्दिर का सिर्फ रत्न-गृह भाग ही शेष रह गया है जिसकी छत एक ही शिलाखण्ड की बनी हुई है और उसके अन्दर के हिस्से में सुन्दर बेलबूटे खुदे हुए हैं। इस स्थान के खण्डहर और नगर से प्राप्त कई अलङ्कारपूर्ण मूर्तियां कोटा संग्रहालय में देखी जा सकती हैं।

भीमगढ़—तहसील छीपाबड़ौद में सारथल नामक एक बड़ा गाँव है। इस गाँव से लगभग तीन मील दूर परवण नदी के किनारे पर एक प्राचीन दुर्ग तथा तीन मन्दिरों के खण्डहर पाए गए हैं। ये खण्डहर लगभग एक हजार वर्ष पुराने हैं। ये मन्दिर व दुर्ग आठवीं शताब्दी के पूर्व के प्रतीत होते हैं। दो मन्दिरों के प्रत्येक स्तम्भ पर भीमदेव का नाम अङ्कित है जिसके नाम पर इस नगर का नाम भीमगढ़ पड़ा है। इन मन्दिरों में खुदाई व सुन्दर पच्चीकारी का काम किया हुआ है।

माँगरोल—यह कोटा नगर से ३५ मील उत्तर पूर्व में पार्वती नदी की शाखा बाणगंगा के दाहिने किनारे पर बसा हुआ है और निजामत मांगरोल का सदर मुकाम था। व्यापारिक दृष्टि से यह कस्बा घना बसा हुआ था। इसकी आबादी पांच हजार के लगभग थी। वि० सं० १८७८ आसोज सुदि ५ (ई० सन १८२१ की १ अक्टोबर) को महाराव किशोरसिंह और उनके फौजदार झाला जालमसिंह में युद्ध इसी नगर में हुआ था। इस युद्ध में महाराव हार कर नाथद्वारा भाग गए थे। उनके भाई पृथ्वीसिंह व दो अंग्रेज अफसर लेफ्टीनेन्ट क्लार्क व रीड यहां "बापजी राज" के नाम से काम आए। इनकी समाधिएँ गाँव से कुछ दूर पूर्व में नदी के किनारे पर बनी हुई हैं।

माँगरोल से तीन मील दक्षिण की ओर सड़क के किनारे भटवाड़ा नामक एक गाँव है जहाँ पर कोटा की सेना ने जयपुर महाराजा माधोसिंह को ई० सन् १७६१ में बुरी तरह हराया था। इसी युद्ध में झाला जालिमसिंह ने जिस वीरता

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

का परिचय दिया उससे उसकी राजनैतिक उन्नति का युग प्रारम्भ होता है। कोटा वालों ने जयपुर से पचरंगा झण्डा इसी स्थान से प्राप्त किया था।[1]

मुकन्दरा—कोटा शहर के दक्षिण में ३२ मील के फासले पर दर्रा स्टेशन से लगभग दो मील दूर पहाड़ों के बीच में बसा हुआ यह एक छोटा सा गाँव है। इसका नाम महाराव मुकुन्दसिंह हाडा (वि० सं० १७०४–१७१५) के पीछे मुकुन्दरा पड़ा। गांव के पास दो पहाड़ों के बीच में, जहाँ दर्रे की घाटी प्रारम्भ होती है, मुकुन्दसिंह ने एक बहुत बड़ा फाटक बनवाया और अपनी उप-पत्नि अबला मीणी के लिए महल वि० सं० १७०८ में बनवाया।[2] इसी घाटे में से रेल मार्ग व पक्की सड़क निकाली गई है। यहाँ कई बार खीचियों और हाड़ों में युद्ध हुआ। सन् १८०४ ई० में जसवन्तराव होल्कर ने कर्नल मानसन की फौज को यहीं तितर-बितर किया था। घाटे के कुछ दूर पर चवरी या भीम की चौरी नाम का मन्दिर है। इस चवरी (बारहदरी) के खण्डहरों को फर्गुशन साहब ने

भीमचौरी (मुकन्दरा) कोटा

१—सरकार : फाल ऑफ दी मुगल एम्पायर : जिल्द द्वितीय, पृ० ५८६
२—एरस्कीन : गजेटियर राजस्थान : पृष्ठ ३८६

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इसे ई० सन् ४५० से पूर्व का बतलाया है। इस मन्दिर की खुदाई बड़ी बारीकी से की गई है। इसमें फूलों और पशुओं की आकृतियां बनी हुई हैं। मन्दिर के अन्दर का भाग कलामय उत्कीर्ण फूल पत्तों से अलंकृत है। मन्दिर के स्तम्भ पर गुप्तकालीन लिपि में ध्रुवस्वामी[1] का नाम खुदा है। यह मन्दिर गुप्त वास्तु-कला का सुन्दर उदाहरण है।

बारां—पार्वती नदी की शाखा बाण गंगा के बाएँ तट और कोटा शहर से ४५ मील पूर्व की ओर बसा हुआ है। इसी नाम की निजामत का यह सदर मुकाम रहा है। यह व्यापार की एक बहुत बड़ी मण्डी है। यहाँ रेलवे का स्टेशन भी है। १९५१ की जनगणना के आधार पर यहाँ की जन-संख्या २०,४१९ थी। ईसा की १४वीं शताब्दी में यह कस्बा सोलंकी राजपूतों के अधिकार में था और उसके अन्तर्गत बारह गाँव होने से यह 'बाराँ' कहलाया। अनाज और अलसी का यहां मुख्य व्यापार होता है। सन् १९०४ में यहाँ अंग्रेज सरकार का अफीम का गोदाम खोला गया था जहाँ से विभिन्न स्थानों को अफीम भेजी जाती थी। यहाँ कल्याणरायजी का प्रसिद्ध मन्दिर है। इसीसे मिली हुई मसजिद भी है।

गागरोन—यह प्रसिद्ध स्थान कोटा शहर से ४५ मील दक्षिण पूर्व में और झालावाड़ नगर से तीन मील उत्तर पूर्व में है। यहाँ का किला कालीसिन्ध और आहू नदियों के संगम पर एक छोटी पहाड़ी पर बसा हुआ है। इसके तीन ओर कालीसिन्ध नदी है। यहाँ पर कालीसिंध अधिक गहरी व भयंकर पहाड़ियों में से होकर बहती है। राजस्थान के किलों में इसका स्थान प्रमुख है। भौगोलिक दृष्टि व सामरिक दृष्टि से इस किले का महत्व मध्य काल में इतना बढ़ गया था कि कोटा राज्य की सुरक्षा पंक्ति का पहला स्तर यहीं था। किले के पास ही गाँव बसा हुआ है। इस किले को डोड (डोडिये) वंश के राजपूतों ने बनवाया था जिनके अधिकार में यह १२ वीं शताब्दी तक रहा। यही कारण है कि इसे डोड-गढ़ भी कहा जाता है। खटकड़ के खीची राजा देवसी ने अपनी बहन गंगाबाई की शादी यहां के शासक बीजल डोडिया से की थी। बहन की सहायता से खीची देवसी ने बीजल को मार कर इस गढ़ पर अधिकार कर लिया था। कहते हैं कि देवसी ने अपनी बहन का नाम चिरस्थायी करने के लिए किले का नाम डोडगढ़ (डोलरगढ़) से बदल कर गंगारूण (गंगारमण) कर दिया और इसे अपनी राज-धानी बनाया। यहाँ के राजा जैतसिंह खीची ने वि० सं० १३०० में बादशाह अलाउद्दीन के घेरे का सफलतापूर्वक मुकाबला किया परन्तु वि० सं० १४८४

१—यह ध्रुवस्वामी बाद के गुप्तों का योद्धा था और हूणों से युद्ध करता हुआ काम आया था। डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ २५

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

(ई० सन् १४२६) में राजा अचलदास खीची के समय मालवा के सुल्तान हुसेन-शाह ने यह किला जीत लिया लेकिन सन् १४२८ में अचलदास ने पुनः इस किले पर अधिकार कर लिया और सन् १४४८ तक इसे अपने अधिकार में रक्खा। सं० १५१९ में यहाँ भीमकर्ण शासक हुआ परन्तु मालवा के शासक महमूद खिलजी ने इस पर आक्रमण किया। राजा भीम हार गया। वह कैद कर लिया गया और मार डाला गया। कुछ ही काल बाद सम्वत् १५२१ में उदय-पुर महाराणा संग्रामसिंह ने महमूद खिलजी को हरा कर इस किले पर अधिकार कर लिया। सन् १५३२ तक यह किला सिसोदिया राजपूतों के अधिकार में रहा। सन् १५२९ में महाराणा साँगा की मृत्यु हुई। सन् १५३२ में गुजरात के बादशाह बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया। उसी समय गागरोण पर गुजरात के बादशाह का अधिकार हो गया। सन् १५६० में जब मालवा पर अधमखां (अम्बर का धाभाई) ने आक्रमण किया तो गागरोल मुगलों के हाथ आ गया।[१] अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक यह किला मुगलों के अधिकार में रहा। औरंगजेब की मृत्यु के बाद दिल्ली की राजनीति में उथल-पुथल होने लगी। बहादुरशाह की मृत्यु के बाद सैय्यद भाईयों का मुगल राजनीति में प्रभाव बढ़ा। उनको सहायता देने के उपलक्ष में सैय्यद भाईयों ने महाराव भीमसिंह (सम्वत् १७६४-१७७७) को गागरोण का किला दे दिया। तब से यह किला हाडा राजपूतों के अधीन रहा। कोटा के प्रधान मन्त्री झाला जालमसिंह ने इस किले की मरम्मत कराई तथा अपना बारूदखाना तथा रिजर्व सेना का केन्द्र यहीं रक्खा। इसी के पास छावनी बसाई जहाँ कोटा की सेना का मुख्य केन्द्र हो गया।

कोटा दरबार की यहाँ पर पहले टकसाल थी जहाँ मुगलाई सिक्के ढलते थे। यहाँ के तोते अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इस किले पर अनेक लड़ाइयाँ हुईं। किले में मिठा शाह की दरगाह[२] भी है जिसके दरवाजे की दाईं दीवार पर फारसी में एक शिलालेख लगा हुआ है जिससे प्रगट होता है कि मियाँ मुअज्जम और मियाँ बजद्दीन खाँ वहलमी ने हि. सं. ७५० के जिल्हीज (वि. सं० १४०७ फाल्गुण = फरवरी १३५० ई०) में यह गुम्बज बनाया था। दूसरा लेख हि. सं. ९८७ जिल्हीज (वि. सं. १६३७ माघ = ई. सं. १५८० जनवरी) का बीकानेर के

---

१ आइने अकबरी में अबुलफजल ने गागरोण को मालवा का मुख्य जिला लिखा है।

२ यह दरगाह हिन्दू शैली पर बनी है। सम्भव है बनाने वाले कारीगर हिन्दू हों। दरगाह की पच्चीकारी बारीकी से की गई है।

Ac. Gunratnasuri MS　　Jin Gun Aradhak Trust

राठौड़ कल्याणमल के पुत्र सुल्तानसिंह का है जो उस समय गागरोण का हाकिम था। उस समय उल्वी खाँ के पुत्र मियाँ ईसा द्वारा दरवाजा बनवाए जाने का उल्लेख है। तीसरा लेख हि. सं. ९९१ मोहर्रम (वि. सं. १६४० मार्च १५८३ ई.) का यहाँ के हाकिम राठौड़ सुल्तान के समय का है। इससे पाया जाता है कि छत्री थानेश्वर निवासी उल्वी खाँ के पुत्र मियाँ ईसा ने बनाई थी। किले में अनेकों शिलालेख मिले हैं जो इस किले के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। किले में दुर्गा, गणेश, शिव आदि की कई मूर्तियाँ हैं।

मोठपुर—कोटा राजधानी से ५० मील पूर्व और शेरगढ़ से ७ मील पूर्व की ओर यह एक बड़ा गाँव है। यह अटरू तहसील में है। कुछ समय से यहाँ की राम बावड़ी का जल कई प्रकार की बीमारियों को दूर करने के लिए बड़ा प्रसिद्ध था। यहाँ शक्तिसागर नाम का एक तालाब है जिसे धारू खीची ने खुदाना प्रारम्भ किया था और उसके बेटे शक्तु ने पूरा करवाया। इसके पास ही खीचियों का छार बाग है। उसमें एक बावड़ी के कीर्ति-स्तम्भ पर वि. सं. १५५७ अगहन वद ५ सोमवार का एक लेख है। उसका भावार्थ यह है कि श्री राज श्री धारूदेव के बेटे शक्तुदेव के भाई कुम्भदेव का बेटा श्री वर्मदिव की राणी रावतसिंह की पुत्री उमादे ने बावड़ी बनवाई। एक अन्य शिलालेख है। उसका भावार्थ नीचे लिखे अनुसार है। सं. १५५० (शाके १४१५) आसाढ़ सुदि १०, सोमवार (८ जुलाई १४९३ ई.) को राजाधिराज श्री धारूदेव खीची जायलवाल के साथ धीरादे (धीरा देवो) बागड़नी और सूरतदे कछवाही सती हुई।

सं. १५५५ शाके १४२० श्रावण वदि १० शनिवार (ई. सन् १४९८ की जुलाई) को मोठपुर का राजा श्री कुम्भदेव धीरादेव खीची जायलवाल का बेटा देवलोक हुआ जिसके साथ राणी कछवाही, राणा छात्रवति और दो सोलंकी राणिएँ सती हुईं।

मोठपुर में दस्तकारी की चीजें अच्छी बनती हैं। भादो सुदि ७ को यहां तेजाजी का मेला लगता है। कहा जाता है कि मारवाड़ के तेजाजी मालवा जाते समय और लौटते समय यहां से गुजरते थे।

मनोहर थाणा—परवन नदी के किनारे यह कस्बा बसा हुआ है। इसी नाम की तहसील का सदर मुकाम है। इसे पहले खाताखेड़ी कहते थे। मुगल बादशाहों ने नबाब मनोहर खाँ को अन्य गाँवों के साथ यह भी जागीर में दिया था जिसने इस गाँव को अपने नाम पर बसाया। उसके बाद यह भीलों के

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

हाथ लगा जिन्होंने एक मजबूत गढ़ बनवाया जो ग्राज तक विद्यमान है। भीलों से यह महाराव भीमसिंह हाड़ा के ग्रधिकार में ग्राया। इसका परकोटा फौजदार जालिमसिंह झाला ने बनवाया था। किले के नीचे पर्वन ग्रौर काकर नदियाँ शामिल होकर एक बहुत बड़ा कुण्ड बनाती हैं।

रातादेई—ग्रसनावर कस्बे से चार मील उत्तर की ग्रोर पहाड़ों के बीच बढिया चासर नाम का भीलों का एक छोटा सा गाँव है। यहां के मानसरोवर नाम के एक सुन्दर तालाब के पूर्वी किनारे पर रातादेवी का प्रसिद्ध मन्दिर है। यहां के पुजारी कहते हैं कि जिस देवी का रक्तदान का वर्णन मारकण्ड पुराण में है वह यही देवी है; परन्तु इस प्रान्त के लोग इसको खीची राजा ग्रचलदास की बहिन बताते हैं। निज मन्दिर तो ग्रचला खीची का बनवाया हुग्रा था। सामने का मण्डप फौजदार जालिमसिंह झाला का तैयार कराया हुग्रा है। कहते हैं कि मानसरोवर तालाब के दक्षिणी किनारे पर किसी समय श्रीनगर नाम का कस्बा ग्राबाद था। कुछ खंडहर उसी कस्बे के ग्रवशेष के रूप में ग्रब भी बिखरे पड़े हैं। इन खण्डहरों में तीन मन्दिर हैं। सबसे बड़ा मन्दिर महादेव का है जिसको किसी ग्वाले ने बनवाया था। मानसरोवर के दक्षिण तरफ के खण्डहर के शिलालेख से ज्ञात होता है कि यह वैष्णव मन्दिर था जिसको शाह दामोदर ने वि. १४१६ कार्तिक वदि १ (ई. सन् १५३६ तारीख ८ ग्रक्टूबर मंगलवार) को बनवाया था। कहते हैं कि यह कस्बा महू के खीची राजा का मुख्य स्थान था। तालाब के किनारे पर के चबूतरों व छत्रियों में से कई पर शिलालेख लगे हुए हैं। एक चबूतरे पर चरणपादुका का चिन्ह है ग्रौर उसके नीचे "चरणपादका नाथ की" लिखा है। परन्तु इसे लोग ग्रचलदास खीची का मृत्यु-स्मारक बताते हैं। ग्रचलदास खीची का देहान्त सं. १४८४ को माघ वदि १२, (१३ जनवरी १४२८) मंगलवार को हुग्रा। यहां सतियों के कई स्मारक बिखरे पड़े हैं। तालाब से दो मील पश्चिम में उजड़ नदी के दाहिने तट पर खीची राजाग्रों के बनवाए महलों ग्रौर मन्दिरों के भग्नावशेष हैं। पहाड़ी की टेंकरी पर किले का दरवाजा ग्रकेला खड़ा है जिसे हथियापोल कहते हैं।

शेरगढ़—यह कोटा से ५० मील दक्षिण में पर्वन नदी के किनारे पहाड़ के निकट बसा है। पहले यह निजामत का मुख्य स्थान था लेकिन ग्रब ग्रटरू तहसील में है। यह कस्बा सातवीं शताब्दी से पहले का बसा हुग्रा है। इसको प्रारम्भ में कोषवर्धन कहते थे जैसा कि यहां से प्राप्त शिलालेख से ज्ञात होता है। यहां से प्राप्त वि. सं. ८७० माघ सुदि ६ के शिलालेख से पता लगता है कि यहां के नागवंशी राजा देवदत्त ने, जो स्वयं बौद्धमतानुयायी था, एक बौद्धबिहार

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

बनवाया था। इस कस्बे में लक्ष्मीनारायण के मन्दिर में शिलालेख भी मिला है। एक शिलालेख में धार के परमार नरेश वाक्पतिदेव से उदयादित्य तक की वंशावली दी हुई है। इस शिलालेख से प्रतीत होता है कि यह मन्दिर पहले सोमनाथ का था पर कैसे व कब लक्ष्मीनारायण का मन्दिर हो गया यह प्रतीत नहीं होता है। यहाँ तीन टूटी जैन मूर्तियां भी मिली हैं जो एक राजपूत सरदार ने ११ वीं शताब्दी में बनवाई थीं। यहां पहले नागवंशी शासन करते थे। फिर यह डोड राजपूतों के अधिकार में आया जिनसे खीचियों ने छीन लिया। शेरशाह ने इसे जीत कर इसका नाम शेरगढ़ रक्खा। यहां का किला परमार काल से चला आ रहा है। कई सौ वर्षों तक यह किला मुगलों के अधीन रहा। परन्तु सैय्यद भाइयों का पक्ष लेकर जब महाराव भीमसिंह ने फरूखसियार को दिल्ली का सम्राट बना दिया तो फरूखसियार ने इस किले को भीमसिंह को दे दिया। फौजदार जालिमसिंह ने इसका जीर्णोद्धार करा कर अमीर खाँ पिण्डारी को सौंप दिया। जब १८१७ ई० में पिण्डारियों का नाश हो गया तो इस गढ़ में कोटा की एक सैनिक टुकड़ी रहने लगी।

बड़वा—यह स्थान अन्ता तहसील में है। बड़वा गाँव से पूर्व की ओर लगभग आधा मील दूर कामतोरण स्थान पर ४ प्राचीन यूप पाए गए हैं जिसमें से दो के अवशेष बचे हुए हैं। प्रत्येक यूप १६ फीट लम्बा है। नीचे चौकोर ६ फीट तक तथा इसके ऊपर अठकौना है। ऊपर जाकर फिर चौकोर हो गए हैं। इन पर कुशाण-कालीन ब्राह्मीलिपि में वि. सं. २६५ के लेख खुदे हैं। इन लेखों से ज्ञात होता है कि मौखरी वंश के राजा बल के चारों पुत्रों ने त्रिराज्ञ यज्ञ करके ये यूप स्थापित किए थे। प्रत्येक ने यज्ञ-समाप्ति पर १००० गायें ब्राह्मणों को दान दीं। राजा बल मालवा के शक क्षत्रिय विजयदामन (२३८-२५० ई.) का सामन्त और माण्डलिक राजा रहा होगा क्योंकि उस समय विजयदामन का राज्य नन्दसा (मेवाड़) तक फैला हुआ था।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कोटा बून्दी का एक अंग

बून्दी, कोटा और झालावाड़ राज्यों का क्षेत्र जिनसे अब कोटा-मण्डल (डिविजन) बना है, हाड़ौती प्रदेश कहलाता है। यह क्षेत्र प्राचीन काल में मीणों व भीलों का प्रदेश था परन्तु धीरे-धीरे इन क्षेत्रों पर मुसलमानों के आक्रमणों के समय राजपूत शासकों ने अधिकार कर लिया। सांभर के चौहानों ने अजमेर पर अधिकार कर पृथ्वीराज तृतीय के काल में अन्तिम बार हिन्दू राज्य स्थापित किया। साँभर से चौहानों की दूसरी शाखा नाडोल (मारवाड़) होती हुई चित्तौड़ के पास बम्बावदा में स्थापित हो गई। बम्बावदा के राव देवा ने सम्वत् १३९८ (१३४३ ई.) में मीणों से बन्दू घाटी छीन कर बून्दी नगर की स्थापना की[1]। राव देवा के बाद राव समरसी बून्दी की गद्दी पर बैठा। उसके राजगद्दी पर बैठने के समय (१४०० वि. सं.) बून्दी का राज्य चम्बल नदी के बाएँ किनारे तक था। नदी के दाहिने किनारे पर भीलों का राज्य था जिसका नेता कोट्या भील था[2]। भील क्षेत्र अकेलगढ़[3] से दक्षिण पूर्व मुकन्दरा पर्वत की श्रेणियों के साथ-साथ मनोहरथाणे तक फैला हुआ था। कोट्या भील के नाम से उसकी शासित भूमि कोटा कहलाने लगी।

समरसिंह ने अपने राज्य-विस्तार करने हेतु चम्बल के उस पार के भील शासक कोट्या पर हमला किया। अकेलगढ़ के पास युद्ध हुआ। इस युद्ध में

---

१ टाड : एनाल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, जिल्द ३, पृष्ठ १४६७।
वंशभास्कर : द्वितीय भाग, पृष्ठ १६२५–२७ के अनुसार राव देवा ने आषाढ कृष्णा नवमी सम्वत् १३९८ (ई० सं. १३४१) को बून्दी पर अधिकार किया था (देखो–लेखक कृत बून्दी का इतिहास, पृष्ठ ४२-४३)

२ वंशभास्कर : जिल्द ३, पृष्ठ १६७८-७९।
टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृष्ठ सं. १४६९ में उल्लेख है कि कोट्या भील जाति का नाम था।

३ कोटा से ५ मील दक्षिण-पश्चिम की ओर।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

६०० भील तथा ३०० हाड़ा सिपाही मारे गए। कोट्या युद्ध से भाग गया और भील क्षेत्र पर बून्दी के हाड़ों का अधिकार हो गया[1] लेकिन समरसी के बून्दी लौटते ही सम्भवतः भीलों ने स्वतन्त्रता प्राप्त करने का पुनः प्रयास किया होगा। क्योंकि सूर्यमल मिश्रण और टॉड दोनों ही इस बात का उल्लेख करते हैं कि कोटा को पुनः प्राप्त करने का श्रेय समरसी के तीसरे पुत्र जैतसिंह को जाता है। वंशभास्कर में उल्लेख है कि समरसी ने अपने पुत्र जेतसिंह का विवाह कैथुन के तँवर सरदार की पुत्री से कर दिया। जैतसिंह महत्वाकाँक्षी राजकुमार था। उसने अपने लिए एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने की योजना बनाई और अकेलगढ के भीलों पर आक्रमण किया। इस आक्रमण में उसे अपने श्वसुर और पिता दोनों की सहायता प्राप्त थी। भीलों को नष्ट करने में जेतसी ने उन्हीं उपायों को काम में लिया जिनके द्वारा देवसिंह ने मीणों से बून्दी छीनी थी[2]। इस युद्ध में जैतसिंह के पक्ष में सैलारखाँ नामक पठान भीलों के विरुद्ध लड़ता हुआ मारा गया। इस प्रकार सम्वत् १३२१ (१२७४ ई.)[3] में अकेलगढ के भीलों को मार कर जैतसिंह ने कोटा नगर पर अधिकार किया[4]।

जैतसिंह के इस पराक्रम से प्रसन्न होकर राव समरसी ने कोटा जैतसिंह को दे दिया। तब से कोटा बून्दी के राजकुमार की जागीर में रहने लगा। कोटा पर हाड़ा चौहानों का शासन तब ही से चला आ रहा है और जब राव माधोसिंह ने कोटा को बून्दी से स्वतन्त्र करा लिया तो हाड़ों की इस शाखा को माधाणी हाड़ा कहा जाने लगा। कालान्तर में हाड़ाओं की यह शाखा अपने मुख्य शाखा को पृष्ठभूमि में रख कर प्रभावशाली हो गई।

समरसी की मृत्यु के पश्चात् उसका बड़ा लड़का[5] नापू बून्दी की गद्दी पर बैठा। जैतसिंह कोटा में राज्य करता रहा। जैतसिंह ने अपने बड़े भ्राता की अधीनता

---

१ वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ १६७८-७९।

२ मीणों के साथ देवसिंह का विश्वासघात : डा. मथुरालाल कृत कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृष्ठ ५८।

३ टाड के अनुसार १४२३ वि०सं०।

४ वंशभास्कर : तृतीय भाग, पृ. १६७९। ठाकुर लक्ष्मणदास—कोटा राज्य का इतिहास। डा० मथुरालाल शर्मा—कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ. ६२। टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृष्ठ १४६८। टाड वर्णन करता है कि जैतसिंह तँवरों के यहां से लौट रहा था तब भीलों पर चम्बल घाटी के क्षेत्रों के निवासियों ने अचानक आक्रमण कर दिया। इस घाटी के प्रमुख द्वार पर जेतसिंह ने भीलों के नेता को मार कर वहाँ पर एक हाथी (कालभैंरों के लिए) निर्मित किया। यह कोटा गढ के मुख्य द्वार के पास चार झोंपड़े में स्थित है।

५ समरसी के ३ पुत्र थे—१ नेपुजी, २ हरपाळ, ३ जेतसी।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

स्वीकार की और उसकी सेवा करता रहा। जब नापू ने टोडा के सोलंकी सरदार रोपाल के साथ युद्ध किया तो जैतसिंह ने नापू को सहायता दी तथा रोपाल के विरुद्ध युद्ध करता हुआ मारा गया[1]। जैतसिंह के पश्चात् उसका लड़का राव सुर्जन कोटा में राज्य करने लगा। उसके पुत्र वीरदेह ने १३४६ ई. के आसपास कोटा की जनता के सुख के लिए कई तालाब बनाए। उनमें से कुछ तालाब अब भी बचे हुए हैं। इसी वंश में पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में जेतावतराय हुआ। इसके बाद वीरम गद्दी पर बैठा। वीरम प्रायः बून्दी रहा करता था[2]। इसलिए कोटा का शासन अपने छोटे भाई कान्ह को दे रक्खा था। कान्ह में उस समय की राजनैतिक स्थिति को सम्हालने की योग्यता नहीं थी क्योंकि वह आलसी व आरामपसन्द था। उस समय मालवा में मुसलमान शासकों की शक्ति का राजस्थान की ओर प्रसार हो रहा था। माण्डु के सुल्तानों का सहयोग पाकर केसरखाँ और डोकरखाँ पठानों ने विक्रम सम्वत् १६०३ (सन् १५४६) में कोटा पर अधिकार कर लिया। वीरम की शादी कैथुन के तँवर राजपूतों के यहाँ हुई थी। बून्दी पर इस समय सुल्तानसिंह (सुरथाण) राज्य कर रहा था। राव वीरम का न तो तँवरों ने न बून्दी के सुरथाण ने साथ दिया। मालवा के सुल्तान ने जब बून्दी पर आक्रमण किया तो सुरथाण को भागना पड़ा परन्तु राव अर्जुन ने बून्दी की रक्षा की। राजा वीरम राज्यभ्रष्ट हो मारा-मारा फिरता रहा। टॉड ने कोटा पुनः प्राप्त करने का श्रेय वीरम की पत्नी को दिया है जिसने पद्मिनी की तरह[3] केसरखाँ और डोकरखाँ से होली खेलने की इच्छा की तथा डोले में राजपूत सैनिकों को जनाने कपड़े पहना कर भेज दिया जो गढ़ में घुसने के बाद मुसलमानों को मार कर कोटा पुनः प्राप्त कर लिया। टॉड की यह कहानी सिर्फ राजपूती गौरव को अंकित करती है। इसमें ऐतिहासिक सत्यता नहीं है[4]।

१ वंशभास्कर : तृतीय भाग, पृष्ठ १७१५।

२ टॉड का कथन है कि भोनोंग (वीरम) अधिक शराब और अफीम के प्रयोग के कारण पागल हो गया था इसलिए उसे बून्दी से निर्वासन दे दिया गया।

टाड : एनाल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, पृष्ठ १४६८ फुट नोट।

३ अलाउद्दीन और मेवाड़ के राणा रतनसिंह की राणी पद्मिनी की कथा कपोलकल्पित सिद्ध हो चुकी है।

४ डा. मथुरालाल शर्मा ने कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृष्ठ ७० में टॉड की इस कथा को चारण भाटों की गढी हुई बतलाया है। उनका कथन है कि (१) एक राजपूत महिला स्वतः ही होली खेलने की इच्छा नहीं कर सकती। (२) यदि ऐसा हुआ तो स्पष्ट ही राणी का उद्देश्य नजर आता है। (३) ३०० सैनिक राजपूत, शत्रु के महिलों में जहां हजारों मुसलमान सैनिक थे, कैसे जीवित वापस लौट सके। (४) इस घटना की जन-परम्परा कहीं प्राप्त नहीं हो सकी है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

वास्तव में १५६० ई० के आस-पास कोटा में मुसलमानों की शक्ति कमजोर होने लगी। मालवा के सुल्तान बाज़बहादुर को अकबर के सेनापति अधमखाँ ने हरा मालवा मुगल साम्राज्य में मिला लिया था। कोटा के मुसलमानी शासकों को जो सहायता मालवे से प्राप्त होती थी वह न होने लगी। इसी समय बून्दी के सिंहासन पर राव सुर्जन बैठा। उसने मुसलमानों से कोटा पुनः प्राप्त करने के लिए एक बड़ी सेना तैयार की। इस सेना में उसके लगभग २० जागीरदार भाई और कितने ही अन्य राजपूत सरदार शामिल थे[1]। भदाना से दो मील दूर दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई[2]। केसरखाँ व डोकरखाँ युद्ध-क्षेत्र से भाग कर कोटा नगर में जा घुसे पर हाड़ा राजपूत कीर्तिसिंह ने उनका पीछा किया। केसरखाँ और डोकरखाँ कोटा में युद्ध करते हुए मारे गए। कोटा पर राव सुर्जन का अधिकार हो गया। २६ वर्ष तक मुसलमानो अधिकार में रह कर कोटा पुनः हाड़ाओं का कीर्तिकेन्द्र बना[3]। इस विजय का परिणाम यह हुआ कि राव सुर्जन की बढती हुई शक्ति व भय से मऊ के खीचो रायमल ने सीसवळी, बड़ोद आदि क्षेत्र सुपुर्द कर दिये। परन्तु खीचियों के इस यद्ध में कीर्तिसिंह मारा गया। कोटा का राज्य सुर्जन ने अपने पुत्र भोज को दे दिया जो एक स्वतन्त्र शासक की तरह राज्य करने लगा।

राव सुर्जन की मृत्यु के बाद भोज बून्दी का शासक बना। भोज के तीन पुत्र थे। रतन, हृदयनारायण व केशोदास। राव भोज ने कोटा के शासक का भार अपने द्वितीय पुत्र हृदयनारायण को सौंपा और इस सम्बन्ध में अकबर बादशाह से स्वीकृति का फरमान भी प्राप्त किया[4]। हृदयनारायण ने लगभग १५ वर्ष तक कोटा पर राज्य किया। वह एक स्वतन्त्र शासक था, फिर भी प्रारम्भ में अपने पिता और उसके बाद में अपने भाई राव रतन की आज्ञा का पालन करता रहा।

भोज की मृत्यु के बाद राव रतन बून्दो की गद्दी पर बैठा। यह अत्यन्त शक्तिशाली शासक था। उस समय मुगल बादशाह जहाँगीर दिल्ली पर राज्य करता था। जहाँगीर के विरुद्ध उसके लड़के खुर्रम ने विद्रोह कर दिया। राव रतन ने जहाँगीर को सहायता देकर खुर्रम के विद्रोह को दबाया और जहाँगीर

---

१ वंशभास्कर : तृतीय भाग, पृष्ठ २२३६।

२ वंश भास्कर : तृतीय भाग, पृष्ठ २२३७।

३ गैपरनाथ का शिलालेख, वि० सं० १६३६।

४ टाड : राजस्थान (ए० ए०) जिल्द ३, पृष्ठ १४८६ फुटनोट।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

के तख्त की रक्षा की[1]। खुर्रम के विद्रोह को दबाने के लिए राव रतन के साथ उसका भाई कोटा का शासक हृदयनारायण भी था। दोनों भाई शाहजादा परवेज के साथ खुर्रम को दबाने के लिए इलाहाबाद की ओर चले। भूसी के स्थान पर सम्वत् १६८० में भयंकर युद्ध हुआ। खुर्रम तो जान बचा कर दक्षिण की ओर भागा[2]। हृदयनारायण ने इस युद्ध में अत्यन्त कायरता का परिचय दिया। वह भी रण-क्षेत्र से भाग खड़ा हुआ। जहाँगीर हृदयनारायण पर बहुत क्रोधित हुआ और उसको कोटा गद्दी से उतार दिया। अस्थायी रूप से राव रतन ने कोटा राज्य का शासन अपने अधिकार में ले लिया।

शाहजादा खुर्रम भूंसी में हार कर उड़ीसा, तैलंगाना और गोलकुण्डा को पार करता हुआ पुनः दक्षिण में पहुँचा। उसने मुगल साम्राज्य के विरुद्ध अहमदनगर के प्रधान मंत्री मलिक अम्बर से मित्रता करली। उस समय मुगल सेना बुरहानपुर में पड़ी हुई थी जिसका नेतृत्व राव रतन कर रहा था। खुर्रम ने मलिक अम्बर की सहायता से बुरहानपुर का घेरा डाल दिया। राव रतन के दो पुत्र माधोसिंह और हरिसिंह इस युद्ध में उसके साथ थे। इस युद्ध में विजय राव रतन की हुई और खुर्रम भाग निकला। उसके ३०० सिपाही राव रतन ने कैद कर लिए और बहुत सा सामान लूट लिया[3]। माधोसिंह ने इस युद्ध में अपनी वीरता का पूर्ण प्रदर्शन किया। जहाँगीर इस नौजवान राजपूत राजकुमार पर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। बादशाह का रुख देख कर सम्वत् १६८१ के बाद राव रतन ने अपने पुत्र माधोसिंह को कोटा का राजा बना दिया तथा इस कोशिश में रहा कि जहाँगीर उसकी स्वीकृति का फरमान देदें।

जब खुर्रम ने अपना अपराध स्वीकार कर अपने पिता से क्षमा मांग ली तब खुर्रम का भय जहाँगीर को न रहा। खुर्रम के विद्रोह दबाने का श्रेय महाबतखाँ और राव रतन को गया। राव रतन को बुरहानपुर का सूबेदार नियुक्त किया गया। खुर्रम की देखरेख रखने का भार पहले तो राव रतन के छोटे बेटे हरिसिंह को दिया गया परन्तु वह बहुत अव्यवहारिक था। शाहजादे को उसने बहुत तंग किया। इस पर राव रतन ने अपने पुत्र माधोसिंह को खुर्रम की

---

१ सागर फूट्या, जळ बह्यो, अबकी रसे जतन्न।
जातो गढ जहाँगीर को, राक्ख्यो राव रतन्न॥
टाड : एनाल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज आफ राजस्थान, जिल्द ३, पृष्ठ १४८६।

२ खफी खां : जिल्द १, पृष्ठ ३४६-३५६।
वंशभास्कर : तृतीय भाग, पृष्ठ २४९६।

३ इलियट एण्ड डाउसन जिल्द ६, पृष्ठ ३९५ तथा ४१८।
खफीखां : जिल्द १, पृष्ठ ३४९-५०।
वंशभास्कर : तृतीय भाग, पृष्ठ २४८७, २५००, ९४।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

निगरानी के लिए रक्खा। माधोसिंह ने खुर्रम की अत्यन्त सेवा की। खुर्रम को आदर-भाव से रक्खा। दिल्ली की राजनैतिक स्थिति का अध्ययन करके राव रतन ने भी अपनी राजनैतिक विचारधारा व दृष्टिकोण बदलना शुरू किया। जहाँगीर के अन्तिम दिनों में १६२२ ई. से उसकी मृत्यु तक राजनैतिक संकट-काल का युग रहा। पहले कन्धार इरानियों के हाथ में चला गया। फिर खुर्रम ने विद्रोह किया। यह शान्त हुआ तो महावतखाँ ने विद्रोह कर दिया। नूरजहाँ बेगम अपने जामाता शहरयार को बादशाह बनाना चाहती थी जो अत्यन्त अयोग्य था। साम्राज्य का शक्तिशाली सामन्त आसफखाँ खुर्रम को दिल्ली तख्त पर बैठाने की योजना में तल्लीन था। आसफखाँ की पुत्री मुमताजमहल की शादी खुर्रम से हो चुकी थी। राजनैतिक बहाव खुर्रम की ओर अधिक था। नूरजहाँ के शासन से सभी सामन्त तंग आ चुके थे। उससे लोहा लेने वाला खुर्रम ही था। अत: राव रतन का झुकाव खुर्रम की ओर होने लगा और उसने माधोसिंह को खुर्रम की ओर सद्व्यवहार बरतने की अपनी इच्छा प्रकट की।

बुरहानपुर के युद्ध-क्षेत्र में खुर्रम कैद कर लिया गया था जिसकी निगरानी के लिए राव रतन ने माधोसिंह को रक्खा था। जहांगीर ने खुर्रम को दिल्ली बुला भेजा परन्तु राव रतन ने यह कह कर टाल दिया कि शाहजादा खुर्रम बिमार है। पर जब बार-बार शाही पैगाम इस सम्बन्ध के आने लगे तो उसने व माधोसिंह ने मिल कर खुर्रम को कैदखाने से भगा दिया। इस कार्य में बुरहानपुर के किलेदार द्वारकादास का भी हाथ था[1]। काश्मीर से लौटते समय

१ वंशभास्कर : तृतीय भाग, पृष्ठ २५२३-२६।

यह घटना केवल सूर्यमल मिश्रण द्वारा ही स्पष्ट की गई है। फारसी तवारिखों में इसका उल्लेख नहीं है। सम्भवत: राजपूतों की वीरता का प्रदर्शन करने तथा खुर्रम पर राव रतन के ऐहसानों का मुसलमानी लेखकों ने वर्णन करने का जान बूझ कर प्रयास नहीं किया हो। डाक्टर बेनीप्रसाद ने "हिस्ट्री ऑफ जहाँगीर" (पृष्ठ ३६३-६५) में इस घटना का यों उल्लेख किया है कि बुरहानपुर में हार जाने के बाद खुर्रम ने जहाँगीर से क्षमा-याचना की। उस समय महाबत खाँ का प्रभाव बढ रहा था। नूरजहाँ उसकी बढती हुई शक्ति को रोकने के लिए खुर्रम (जो कि अब शक्तिहीन हो चुका था) से शान्ति करने के पक्ष में थी। खुर्रम को सद्व्यवहार रखने के लिए अपने दो पुत्र दारा व औरंगजेब को बादशाह के सुपुर्द करना पड़ा तथा रोहतास व असीरगढ़ भी बादशाह को दिये गए। जहाँगीर ने उसे बालघाट का सूबेदार बना दिया।

वंशभास्कर की घटना के उल्लेख की सत्यता पर डा० मथुरालाल शर्मा ने 'कोटा राज्य का इतिहास' (भाग १, पृ० १०३ फुटनोट) में यह लिखा है कि 'राव रतन के जीवन-चरित्र में बुरहानपुर की रक्षा और माधोसिंह को स्वतन्त्र राजा बनाना तो फारसी तवारिखों और

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जहाँगीर बीमार पड़ा और लाहौर के पास सन् १६२७ में उसकी मृत्यु हो गई। उस समय खुर्रम दक्षिण में था। परन्तु उसके शक्तिशाली श्वसुर आसफखाँ ने खुर्रम को बादशाह घोषित करवा दिया। खुर्रम शाहजहाँ के नाम से दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। शाहजहाँ ने माधोसिंह को कोटा का स्वतन्त्र शासक होने का फरमान दे दिया[१]। उसके साथ ही शाहजहाँ ने बून्दी के आठ परगने जो उसने जब्त किये थे, माधोसिंह को दिए[२]। अब माधोसिंह का मुगल सम्राट से प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो गया।

राव रतन बुरहानपुर में बालघाट की रक्षा करते हुए सम्वत् १६८८ (सन् १६३१) में मारा गया। उस समय उनके साथ माधोसिंह भी था। माधोसिंह ने शाहजहाँ को इसकी सूचना भेजी। शाहजहाँ ने राव रतन के पाटवी पौत्र शत्रुशाल (राजकुमार गोपीनाथ का पुत्र) को बून्दी का व माधोसिंह को कोटा का राजा पृथक पृथक रूप से स्वीकार किया। पिता की मृत्यु के बाद सम्वत् १६८८ में माधोसिंह ने महाराजाधिराज की पदवी धारण की। शाहजहाँ ने उसे खिलअत भेजी तथा उसे २५०० जात व १५०० सवार का मनसबदार बना दिया। इस प्रकार वि० सं० १६८८ की पोष वदि ३ को कोटा राज्य अलग स्थापित हो गया।

राव माधोसिंह (वि० सं० १६८८–१७०४)

बून्दी के शासक राव रतन के तीन पुत्र थे, गोपीनाथ, माधोसिंह व हरिसिंह।

प्रत्यक्ष घटनाओं से सिद्ध है ही। विवादास्पद हो सकता है केवल खुर्रम का राव रतन के संरक्षण में कैद रहना और हरिसिंह व माधोसिंह के व्यवहार का हाल। सम्भव है माधोसिंह को अलग विस्तृत राज्य पुरस्कार के समय ही प्राप्त हुआ हो परन्तु शाहजहाँ ने जब गद्दी पर बैठते ही राव रतन को आदेश दिया कि हरिसिंह को दरबार में हाजिर किया जावे और राव रतन ने इस सबब से उसको नहीं भेजा कि दुर्व्यवहार का स्मरण करके ही सम्राट उसको मरवा न डाले……तो सम्राट ने बून्दी के ८ परगने जब्त कर लिए। यह बात सिद्ध करती है कि हरिसिंह से सम्राट अत्यन्त अप्रसन्न था और माधोसिंह से अत्यन्त प्रसन्न।

१ वंशभास्कर : तृतीय भाग, पृष्ठ २५०६; इलियट व डाउसन, जिल्द ६, पृष्ठ ४१८। टाड लिखता है कि यह फरमान जहांगीर के समय ही प्राप्त हो गया था। जहाँगीर कोटा को बून्दी से पृथक राज्य बनाना चाहता था। उसे भय था कि दोनों के मिलने पर यह शक्तिशाली जाति कहीं साम्राज्य के लिए खतरा न हो जाए। उसे विश्वास था कि पृथक रहने पर वह दोनों पर आसानी से शासन कर सकेगा। शाहजहाँ ने उस फरमान की पुनरावृत्ति की। टाड : राजस्थान (क्रुक सम्पादित) जिल्द ३, पृष्ठ १४८७।

२ ये आठ परगने निम्न लिखित थे—खजूरी, अरण्डखेड़ा, कैथुन, आँवा, कनवास, मधुरागढ वीगोद, व रहल।

वंशभास्कर : तृतीय भाग, पृष्ठ २५४३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

माधोसिंह का जन्म ज्येष्ठ सुदि ३ सम्वत् १६५६ को बून्दी नगर में हुआ था[1]। प्रारम्भ से ही इसकी शिक्षा का सुप्रबन्ध किया गया था। युद्ध-विद्या, घुड़सवारी तथा शिकार के लिए यथोचित शिक्षा दी गई। विद्याभ्यास के लिए इसे संस्कृत का ज्ञान कराया गया। १४ वर्ष की अवस्था तक इसने बून्दी में ही रह कर ज्ञान प्राप्त किया था। टॉड लिखता है कि जब वह १४ वर्ष का ही था तब उसने जिस वीरता का प्रदर्शन किया उससे उसे राजा का खिताब प्राप्त हुआ और कोटा का राज्य मिला[2]। परन्तु तत्कालीन फारसी तवारिखों से यह पाया जाता है कि माधोसिंह को कोटा व पलायता के परगने जिस समय मिले उस समय उसकी अवस्था ३२ (१६८८ सम्वत्) वर्ष की थी। टॉड के कथन में इतनी सत्यता प्रतीत हो सकती है कि १४ वर्ष की उम्र में माधोसिंह अपने पिता के साथ पहली बार युद्ध में गया होगा और वहीं अपनी वीरता का परिचय दिया होगा। यह युद्ध जहाँगीर के काल में सम्वत् १६७१ (१६१४ ई०) में हुआ जब कि शाहजादा खुर्रम ने अहमदनगर पर आक्रमण किया और वहाँ के प्रधान मन्त्री मलिक अम्बर को हराया[3]।

प्रारम्भ से ही राव रतन माधोसिंह की योग्यता को जान चुका था। अतः जब कभी वह शाही सेना का पक्ष लेकर युद्ध में गया, उसने माधोसिंह को साथ ही रक्खा। राव रतन जब बुरहानपुर का हाकिम हुआ तब माधोसिंह उसके साथ था। खुर्रम के बुरहानपुर घेरे के समय माधोसिंह और उसका छोटा भ्राता हरिसिंह उस युद्ध में बुरी तरह घायल हुए परन्तु विजय हाड़ों की हुई[4]। भूसी के युद्ध में राव रतन का भाई हृदयनारायण भाग गया था। अतः बादशाह जहाँगीर उससे अत्यंत क्रुद्ध हुआ और कोटा का राज्य उससे छीन लिया। अस्थायी रूप से राव रतन को कोटा प्राप्त हुआ। राव रतन ने कोटा अपने

---

१ ई० स० १५९९ ता० १८ मई; टाड के अनुसार इसका जन्म सम्वत् १६२१ (सन् १५६५) में हुआ। टाड : राजस्थान, तृतीय भाग, पृष्ठ १५२१। मुंशी मूलचन्द ने "चरित्र रत्नावली" के आधार पर इसका जन्म सम्वत १६५७ में लिखा है। बख्शी खांन से प्राप्त जन्मकुण्डली प्राप्त हुई उसके अनुसार उपरोक्त तिथि प्राप्त होती है।

२ टाड : राजस्थान भाग ३, पृष्ठ १५२१।

३ डा० मथुरालाल शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास : प्रथम भाग, पृष्ठ ६२।

४ वंशभास्कर : तृतीय भाग, पृष्ठ २४८७ व २५००-०४; खफी खां : जिल्द १, पृष्ठ ३४९-५०।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

लड़के माधोसिंह को दे दिया और शाही फरमान के लिए प्रयत्न करने लगा जिससे माधोसिंह कोटा का स्वतन्त्र शासक स्वीकार कर लिया जाय। बुरहानपुर के युद्ध में खुर्रम कैद कर लिया गया और प्रारम्भ में हरिसिंह की व बाद में माधोसिंह की निगरानी में रक्खा गया। माधोसिंह ने खुर्रम के साथ सद्व्यवहार किया और अपने पिता की आज्ञा से उसे उस समय भागने का अवसर दिया जब जहाँगीर ने खुर्रम को दिल्ली बुला भेजा जिससे उसे विद्रोह करने के अपराध में दण्ड दे सके। जहाँगीर की मृत्यु (ई. सन् १६२७ के बाद जब खुर्रम शाहजहाँ के रूप में गद्दी पर बैठा तो माधोसिंह को कोटा का स्वतन्त्र शासक स्वीकार कर एक फरमान भेज दिया और साथ में बून्दी के आठ परगने भी उसे दे दिए। राव रतन की मृत्यु सम्वत् १६८८ (१६३१ ई.) के बाद तो माधोसिंह ने कोटा में अभिषेक करा कर महाराजाधिराज की पदवी धारण की।

बादशाह ने माधोसिंह के अभिषेक के समय खिलअत प्रदान की तथा २५०० जात और १५०० सवारों का मनसब प्रदान किया। कोटा राज्य उस समय अति सीमित था। यह उत्तर में बड़ौद तक, पूर्व में पलायथा और माँगरोल तक, दक्षिण में मुकन्दरा पर्वत श्रेणी व शेरगढ तक तथा पश्चिम में चम्बल नदी के बाँए किनारे पर केनान्ता आदि ५ गाँवों तक था[1]। उस समय उस क्षेत्र में ३६० गाँव थे और कुल आमदनी २ लाख रुपये थी[2]।

स्वतन्त्र शासक बनने के कुछ समय पहले से ही वह शाहजहाँ के दरबार में प्रभावशाली व्यक्ति बन गया और समय-समय पर मुगल साम्राज्य की कठिन परिस्थितियों में जो सेवाएँ की, उससे हाड़ा शक्ति का केन्द्र बून्दी न रह कर कोटा हो गया। शाहजहाँ के गद्दी पर बैठते ही उसे खाँजहाँ लोदी के विद्रोह का सामना करना पड़ा। खाँजहाँ लोदी का असली नाम पीरखाँ लोदी था। जहाँगीर के समय उसने पहले खुर्रम के विद्रोह के बाद में महाबतखाँ के विद्रोह को दबाने में मुगल सल्तनत की सहायता की थी। अपने पराक्रम और योग्यता के कारण ही वह पंचहजारी मनसब का अधिकारी हुआ तथा 'खाँजहाँ' की उपाधि धारण की। दक्षिण में बालाघाट की सूबेदारी इसे प्रदान की गई थी। अतः शाहजहाँ

१ डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ १०८।

२ टाड : राजस्थान, भाग ३, पृष्ठ १५२१। कोटा की सीमा का वर्णन करते हुए वह लिखता है कि माधोसिंह के शासक बनते समय यह राज्य दक्षिण में गागरोण और घाटोली तक, जहाँ खीची राज्य करते थे; पूर्व में माँगरोल तथा नाहरगढ तक (माँगरोल पर गौड़ तथा नाहरगढ में राठौड़ राजपूतों का राज्य था) जिसमें मुसलमान धर्म स्वीकार कर नबाब बन गया था। उत्तर में सुल्तानपुर और पश्चिम में चम्बल तक था।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

से इसकी नहीं बनती थी फिर भी जब शाहजहाँ ने शासक होते ही इसे अपना मुख्य दरबारी नियुक्त किया। परन्तु शीघ्र ही वह शाहजहाँ के विरुद्ध हो गया और विद्रोह कर बैठा। इस विद्रोह को दबाने में माधोसिंह हाड़ा का प्रमुख हाथ था। खाँजहाँ प्रारम्भ में धोलपुर के पास परास्त हुआ। फिर उज्जैन के पास उसने लूट मचाई, और फिर बुन्देलखण्ड में उत्पात करने लगा। कालिन्जर के युद्ध में खाँजहाँ लोदी को बुरी तरह हराया। खाँजहाँ लोदी सम्वत् १६८७ माघ सुदि २ (सन् १६३१ की २४ जनवरी) को अपने दो पुत्रों सहित इस युद्ध में काम आया[1]।

शाहजहाँ ने माधोसिंह को इन सेवाओं का उपयुक्त पुरस्कार दिया। चैत्र कृष्णा ४, सं. १६८८ (११ मार्च १६३१) को नौरोज के उत्सव पर इसका मनसब बढ़ा कर दो हजारी जात और एक हजार सवार कर दिया और एक हजार निशान झण्डा भी दिया[2]। वंशभास्कर में सूर्य्यमल मिश्रण उल्लेख करता है कि बादशाह ने माधोसिंह को जीरापुर, खैराबाद, चैचट और खिलचीपुर के चार परगने दिए पर ठाकुर लक्ष्मणदान ने लिखा है कि इस वीरता के उपलक्ष में माधोसिंह को १७ परगने और मिले थे[3]। माधोसिंह की मृत्यु के समय ये सब परगने कोटा के अधीन थे। इसी वर्ष की पोष वदि ३ (३० नवम्बर १६३१) को इसके पिता का देहांत हो गया। दक्षिण की सूबेदारी जब खानदुर्शन को प्राप्त हुई तो उसे दौलताबाद के पास शाहजी भौसला से युद्ध करना पड़ा। माधोसिंह हाड़ा खानदुर्शन की सेवा में उपस्थित था। उसे बुरहानपुर की रक्षा का भार सौंपा गया जिसमें उसे सफलता प्राप्त हुई[4]।

सम्वत् १६९२ (सन् १६३५) में वीरसिंह बुन्देले के पुत्र जूंझारसिंह ने शाहजहाँ के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। विद्रोह का कारण यह कहा जाता है कि जूंझारसिंह ने गोडों के शासक प्रेमनारायण को मार कर उसके दुर्ग चौरगढ पर

---

१ बादशाहनामा : भाग २, पृष्ठ ३४८-५०।
इलियट व डाउसन : भाग ७, पृष्ठ २०-२२।
वंशभास्कर : तृतीय भाग, पृष्ठ २५६५।
शाहजहाँनामा : भाग १, पृष्ठ २७।

२ शाहजहाँनामा : भाग २, पृष्ठ २८; डा० शर्मा का कथन है कि वह तीन हजारी मनसबदार बना दिया गया। कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृष्ठ ११२।

३ रामगढ, रहलावरण, कोटड़ा, सुल्तानपुर, बड़वा, मांगरोल, रानपुर, आटोरण, खैरावाद, सुकेत, चेचट, मण्डाना, नीनोदा, सोरसन, पलायथा, कोयला, सोरखण्ड।

४ महासिरूलउमरा, पृष्ठ २८६।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अधिकार कर लिया तथा उसकी दस लाख की सम्पत्ति छीन ली। उसके पुत्र ने शाहजहाँ से सहायता मांगी। शाहजहाँ ने औरंगजेब के नेतृत्व में सैनिक भेजे। उसमें माधोसिंह हाड़ा की १५०० सैनिकों की छोटी टुकड़ी भी थी[1]। माधोसिंह को जूझारसिंह का सामना चाँदा की सीमा पर करना पड़ा जहाँ जूझारसिंह बुरी तरह से हारा और भाग खड़ा हुआ[2]। शाहजहाँ ने इस वीरता के उपलक्ष में माधोसिंह का मनसब तीनहजारी जात व दो हजारी तथा दो हजार सवार का कर दिया और खिलअत तथा चाँदी की जीन सहित घोड़ा भी इनायत किया[3]।

शाहजहाँ ने कन्धार, समरकन्द व मध्य एशिया पर भी अधिकार करने की योजना बनाई। उस समय बदखशाँ का शासक नजरमुहम्मद था जो १६४२ ई. में गद्दी पर बैठा। वह अत्यन्त अत्याचारी था। उसकी अप्रियता का लाभ उठा कर शाहजहाँ ने अक्टूबर सन् १६४५ को बदख व बदखशा मुगल साम्राज्य में मिलाने के लिए शाहजादा मुरादबख्स के नेतृत्व में ५०,००० सैनिकों की एक सेना भेजी। माधोसिंह हाड़ा जो इस समय लाहौर था, को मुरादबक्स के साथ जाने की आज्ञा हुई। मध्य एशिया के उस क्षेत्र में राजपूतों ने अपनी वीरता का परिचय दिया। राजपूतों ने कमरू किले पर अधिकार किया। कन्दज पर माधोसिंह ने अधिकार किया और २ जुलाई सन् १६४६ को बहख पर मुराद का अधिकार हो गया लेकिन शाहजादा मुराद को यह जीवन पसन्द नहीं था। वह बिना बादशाह की आज्ञा प्राप्त किए ही दिल्ली लौट आया और बहख की सुरक्षा का भार माधोसिंह को सौंप दिया। शाहजहाँ ने इस पर औरंगजेब को अलीमर्दान के साथ बहख बदखशाँ भेजा। इसी बीच में माधोसिंह ने सफलतापूर्वक तुरानी,

१ अब्दुलहमीद : बादशाहनामा, प्रथम जिल्द, भाग २, पृष्ठ ९९-१००।

२ उपरोक्त, पृष्ठ ११३-११७, अब्दुलहमीद लिखता है कि इस युद्ध में जूझारसिंह की माता आहत हो युद्ध में मर गई। जूझारसिंह व उसका बड़ा पुत्र विक्रमजीत पकड़ा गया। उनके सिर काट डाले गए और शाही अफसरों को नजर किये गए। तारीखी-ए-राजकोटा के अनुसार माधोसिंह के कंवर मुकुन्दसिंह ने राजा जूझारसिंह, देव बुन्देले की रानी पारवती और दूसरी औरतों और बालबच्चों को जौहर की आग से बचा कर जूझारसिंह के बेटे दुर्गभान और विक्रमजीत के बेटे दुर्जनसाल को कैद कर, उन्हें बादशाह के समक्ष प्रस्तुत किया। दुर्गभान और दुर्जनसाल तो कत्ल कर दिए गए परन्तु पारवती बादशाह की नजर से गुजरी और दूसरी औरतें शाही हमाम में प्रवेश हुई। इस घटना की सत्यता पर सन्देह होता है क्योंकि राजपूतों ने युद्ध में राजपूत रानियों को कैद कर बादशाहों को उनको नजराना के रूप में देने का उल्लेख कहीं नहीं मिलता है।

३ शाहजहाँनामा : भाग १, पृष्ठ १०९।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

तुर्क व फारसी हमलों का सामना किया। औरंगजेब २५ मई सन् १६४७ को बल्ख पहुँचा परन्तु औरंगजेब भी उस क्षेत्र पर अधिकार न कर सका। परिस्थिति प्रतिकूल होने पर औरंगजेब १० नवम्बर १६४७ को काबुल लौट गया।

रास्ते में शत्रुओं ने कई स्थानों पर शाही सेना पर आक्रमण किए। औरंगजेब को घोर संकटों का सामना करना पड़ा। औरंगजेब के साथ लौटती सेना में माधोसिंह भी था और वह जनवरी १६४८ में कोटा लौटा[1]। कोटा लौटते समय वह दिल्ली में बीमार हो गया था। सन् १६४८ में कोटा पहुँचते-पहुँचते उसका देहान्त हो गया[2]।

माधोसिंह ने अपने राज्य-काल में कोटा का राज्य बहुत ही बढ़ाया। राजगद्दी पर बैठने के समय कोटा राज्य में केवल १४ परगने ही थे। समय-समय पर शाही सेवाएँ करने के उपलक्ष में शाहजहाँ उसे कुछ परगने देता गया। खाँजहाँ लोदी के विद्रोह को दबाने के समय उसे १७ परगने और प्राप्त हुए। बल्ख और बदख्शा के युद्धों से लौटने पर इसे बाराँ और मउ के परगने जो बून्दी नरेश के पास थे, इसे दिए गए। अतः इसकी मृत्यु के समय कोटा में ४३ परगने और लगभग २००० गाँव थे[3]।

मुगल साम्राज्य का यह प्रतिष्ठावान् मनसबदार था। शाहजहाँ ने इसको पंचहजारी जात तथा २५०० हजारो सवार दे रक्खे थे। बादशाह की ओर से इसे 'राजा' की पदवी प्राप्त थी। इस प्रकार इतनी बड़ी इज्जत प्राप्त करके यह शाही खजाने से साढे तीन लाख वार्षिक आय प्राप्त करता था। यह इसके मनसबदार होने का वेतन था। उस समय पंचहजारी मनसब का सम्मान हिन्दू सामन्तों को कम मिलता था। उसने यह सम्मान अपनी योग्यता तथा कार्यपटुता व राज्य-भक्ति से प्राप्त किया था। रणकौशल व दुर्गों के घेरे में सफलता पाने की विद्या में वह अत्यन्त निपुण था। यही कारण है कि जहाँगीर व शाहजहाँ

---

१ शाहजहाँ की मध्य एशियाई नीति ने भारत में मुगल साम्राज्य की नीवें हिलादीं। इसमें करीब १२ करोड़ रुपया खर्च हुआ और एक इन्च भूमि भी हस्तगत न हो सकी। राजनैतिक व सैनिक दुर्बलता ने मुगलों को आ घेरा। इस दुर्बलता ने भावी राजपूत-मुगल-सम्बन्ध को अति प्रभावित किया।

२ टॉड ने लिखा है कि उसका देहान्त सम्वत् १६८७ में हुआ। यह सत्य नहीं है। वंशभास्कर के अनुसार इसका देहावसान सम्वत् १७०७ में हुआ। परन्तु डा० शर्मा ने मुहम्मदवारिस के बादशाहनामा के आधार पर सं० १७०५ के लगभग उसकी मृत्यु-तिथि बतलाई है।

३ डा० मथुरालाल शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० १२८-२९।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ने इसे बुरहानपुर तथा कन्धार जैसे महत्वपूर्ण दुर्ग के घेरे के युद्ध में उत्तरदायित्वपूर्ण भार सौंपा। वह सदा हरावल का अधिकारी रहा और युद्ध में प्रथम पंक्ति में रह कर युद्ध-कौशल प्रदर्शित करता था। माधोसिंह आज्ञाकारी पुत्र, नीतिनिपुण राजा, सन्तान-वत्सल पिता तथा कर्त्तव्यपरायण स्वामीभक्त था। मुगल शासन के प्रति इसकी भक्ति इतनी उच्च थी कि वह इस बारे में जरा भी संकोच नहीं करता था कि उसके कारण राजपूताने के अन्य राजपूत शासकों को भी युद्ध करना पड़ता है। औरंगजेब के वह विश्वासप्रिय व्यक्तियों में से था।

इसके नेतृत्व में कोटा राजपूताने का एक छोटे राज्य से परिणित होकर एक प्रभावशाली राजपूत राज्य बन गया। इसके राज्य में कुल मिला कर ४३ परगने थे। इनमें से कुछ परगने सूबा अजमेर की रणथम्भोर सरकार के नीचे तथा कुछ सूबा उज्जैन की गणरौण सरकार के अन्तर्गत थे। प्रत्येक परगने के लिए बादशाह को मामलात देते थे जो अजमेर तथा उज्जैन के खजाने में जमा होती थी। प्रत्येक परगने में चौधरी, कानूनगो और एक ठाकुर, ये तीन कर्मचारी होते थे। चौधरी व कानूनगो बादशाह द्वारा नियुक्त किए जाते थे। इनका पद पैतृक था तथा लगान-वसूली का कार्य करते थे तथा राजा के उस क्षेत्र के सलाहकार होते थे। इनको लगान (राजस्व) वसूली करने में वेतन के साथ कमीशन भी दिया जाता था। ठाकुर राजा के अधीनस्थ होता था और शांति-रक्षा के लिए जिम्मेदार होता था। इनके नीचे पटेल, रियाआ, काश्तकार होते थे। राज्य का अधिकांश हिस्सा छोटी-छोटी जागीरों में बँटा होता था। जागीरदार राजा के साथ लड़ाइयों में जाते थे तथा राज्य की रक्षा करते थे।

राज्य की रक्षा के लिए एक सेना होती थी। माधोसिंह पंचहजारी मनसबदार था। अतः वह ५००० जात व २५०० सवार रख सकता था। इसके अतिरिक्त जागीरदारों के पास स्वयं की एक सेना रहती थी। युद्ध-काल में सेना एकत्रित कर राजा को सहायता देने का भार जागीरदारों पर था। इसके अलावा राज्य की सेना के कई और अंग थे—पैदल, पीलखाना, शुतुरखाना आदि जिनका पृथक् अध्यक्ष होता था परन्तु यह पद सामन्तों को ही दिया जाता था।

माधोसिंह द्वारा निर्मित कोटा में कई इमारतें अब भी सुरक्षित खड़ी हैं, यथा पाटनपोल, शहरपनाह, केथुनीपोल, किला, किशोरपुरा का दरवाजा, आदि।

माधोसिंह के पाँच पुत्र थे—मुकन्दसिंह, मोहनसिंह, जुझारसिंह, कन्हीराम व किशोरसिंह। मुकन्दसिंह सबसे बड़ा पुत्र होने से माधोसिंह द्वारा उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया था। माधोसिंह के युद्ध में लगे रहने के कारण वह ही राज्य

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कार्य सम्हालता था। अपने पिता की अनुमति से इसने महाराजाधिराज की पदवी भी धारण करली थी। अपने पिता के स्वर्गवास के बाद यह ही गद्दी पर बैठा। मोहनसिंह व किशोरसिंह अपने पिता के साथ बराबर युद्धों में रहते थे। माधोसिंह इन पर बहुत प्रसन्न थे। अतः मोहनसिंह को ८४ गांवों सहित पलायथा की जागीर, किशोरसिंह को २४ गांवों सहित सांगोद की जागीर, जुझारसिंह को २१ गांवों सहित कोटड़ा की जागीर तथा कन्हीराम को २७ गाँवों सहित कोयला की जागीर दी गई थी[1]।

राव मुकुन्दसिंह हाड़ा : (वि० सं० १७०७ से १७१५)

यह राव माधोसिंह का जेष्ठ पुत्र था और सम्वत् १७०७ में अपने पिता की मृत्यु पर कोटा राज्य का स्वामी हुआ। बादशाह शाहजहाँ ने इसे कोटा का राजा स्वीकार किया और ३००० जात व २००० सवार का मनसब दिया[2]। इसने अपना जीवन बादशाह शाहजहाँ की सेना में रह कर ही बिताया। जब यह राजकुमार ही था तब ही कन्धार की लड़ाइयों में इसका सहयोग शाहजहाँ पाता रहा। राव मुकुन्द कन्धार के घेरों में बड़ी वीरतापूर्ण लड़ा[3]। इसने मालवा तथा दक्षिण की लड़ाइयों में भी भाग लिया। सं. १७११ में यह सादुल्लाखाँ के साथ चितौड़गढ़ के घेरे पर नियुक्त किया गया। इसके शासनकाल में मुगल शासन का प्रसिद्ध गृह-युद्ध (उत्तराधिकार का युद्ध) हुआ। वि० सं० १७१४ भाद्रपद सुदि ९ को बादशाह शाहजहाँ बीमार हो गया। उसके चार पुत्रों में (दारा, शुजा, औरंगजेब व मुराद) राजसिंहासन के लिए युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में राजपूताने के शासको ने बादशाह शाहजहाँ का पक्ष लिया जोकि अपनी मृत्यु के बाद दाराशिकोह को गद्दी देना चाहता था। इन नरेशों में मुख्य जोधपुर के राठौड़ शासक जसवन्तसिंह और कोटा के शासक मुकुन्दसिंह हाड़ा थे। दक्षिण का सूबेदार औरंगजेब अपने भाई मुराद (जो कि

१ टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५२२।

२ डा० मथुरालाल शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० १४०-१४१।

३ उपरोक्त, पृष्ठ १४१-१४२, राव मुकुन्दसिंह का कन्धार के घेरे में शाहजहाँ की सेवा में रत रहने का उल्लेख किसी भी साधनों द्वारा ज्ञात नहीं होता है। अब्दुलहमीद लाहौरी ने 'बादशाहनामा' में जहाँ और राजपूत शासकों का उल्लेख किया है, वहाँ मुकुन्दसिंह हाड़ा का कहीं जिक्र नहीं किया है। अतः डा० शर्मा ने यह उल्लेख किया है कि मुकुन्दसिंह ३००० मनसबदार होने के कारण अवश्य युद्ध में गया होगा।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

गुजरात का सूबेदार था) से सन्धि कर उत्तर की ओर इस उद्देश्य से बढा कि दारा को शक्तिहीन किया जाय। औरंगजेब की शक्ति को मार्ग में ही रोकने के लिए शाहजहाँ ने जसवन्तसिंह राठौड़ के नेतृत्व में एक सशक्त सेना भेजी जिसमें मुकुन्दसिंह हाड़ा व इसके अन्य चार भाई भी थे। उज्जैन के पास क्षिप्रा नदी के तट पर धर्मत के मैदान में[१] औरंगजेब का शाही सेना के साथ युद्ध हुआ। यद्यपि राजपूत नरेश वीरतापूर्वक लड़े परन्तु शाही सेना कि विजय नहीं हो सकी। राव मुकुन्दसिंह युद्ध में मारा गया तथा उसके अन्य तीन भाइयों को भी इसी प्रकार वीरगति प्राप्त हुई। सब से छोटा भाई किशोरसिंह युद्ध में घायल अवस्था में पाया गया जिसके भी ४० घाव लगे थे। किशोरसिंह को इसके साथी राजपूत रणक्षेत्र से उठा लाये जो बाद में वह उपचार से अच्छा हो गया[२]। मुकुन्दसिंह ने अपने राज्य की दक्षिणी सीमा के पहाड़ यानी हाड़ौती और मालवा की सरहद के बीच के घाटे पर एक किला तथा अपनी उपपत्नी (खवास) अबला मीणी[३] के लिए महल बनवाया और जहां घाटा शुरू होता है वहां वि० सं० १७०८ में एक बहुत बड़ा दरवाजा बनवाया। यह किला व घाटा सैनिक दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण था क्योकि यह हाड़ौती व मालवा की सीमा का केन्द्र था। मोर्चाबन्दी के लिए यह एक अच्छी जगह थी। यह घाटा मुकुन्दसिंह के नाम पर मुकुन्दड़ा कहलाता है[४]। इसने और भी कई मजबूत भवन निर्मित किए। अन्ता का महल और कोटा के किले की दीवारें इसकी ही बनवाई हुई हैं।

---

१ विजय के बाद औरंगजेब ने इसका नाम बदल कर फतेहाबाद रक्खा। यह उज्जैन से १४ मील दक्षिण पश्चिम में है।

२ टॉड : राजस्थान, जिल्द ३, पृष्ठ सं० १५२२-२३।
सरकार : औरंगजेब का इतिहास, जिल्द २, पृष्ठ १५-१७।
आलमगीरनामा : पृष्ठ ६८-७०।
वंशभास्कर : तृतीय भाग, पृष्ठ २६६७।

३ जनरल सर कनिंघम ने लिखा है कि 'अबला मीणी ने मुकुन्दसिंह के पास रहना स्वीकार करते हुए यह शर्त की थी कि दर्रे के पहाड़ पर उसके लिए महल बनवाया जावे और उस पर प्रति रात्रि ऐसा चिराग जलाया जावे जो अबला के गाँव वालों को दिखाई दे सके। तब से अब तक यह दीपक जलाया जाता है।' रिपोर्ट ऑफ इण्डियन आर्क्योलोजीकल सर्वे, जिल्द २२, पृष्ठ १३३।

४ मुकन्दरा की प्रसिद्धि का एक कारण यह भी बताया जाता है कि होल्कर ने १८०४ ई० में ब्रिगेडियर मानसन की अंग्रेजी सेना को इसी स्थान पर हराया था।
टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृष्ठ १५२२।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

राव जगतसिंह (विक्रम सम्वत् १७१५ से १७४०)

यह राव मुकुन्दसिंह हाड़ा का इकलौता पुत्र था। इसका जन्म वि० सं० १७०१ (सन् १६४४ ई०) में हुआ। जब धर्मत के युद्ध में राव मुकुन्दसिंह रणखेत रहा तब उसकी मृत्यु के बाद वि० सं० १७१४ (सन् १६५८ ई.) में कोटा की राजगद्दी पर आसीन हुआ। औरंगजेब जब सामूगढ़ के युद्ध में विजयी होकर आगरा में अपने पिता शाहजहाँ को कैद कर दिल्ली के सिंहासन पर बैठ गया। उसने राव जगतसिंह को शाही दरबार में उपस्थित होने का आदेश दिया। वहाँ पहुँचने पर राव जगतसिंह को २००० का मनसब तथा खिलअत प्राप्त हुई[1]। बादशाह का सम्मानित करने का मुख्य तात्पर्य उसको अपने पक्ष में करना था क्योंकि वह जानता था कि बिना राजपूतों की सहायता के वह अपनी प्रारम्भिक कठिनाइयों का सामना नहीं कर सकेगा और राज्य का सही ढंग से प्रबन्ध नहीं कर सकेगा। तब से जगतसिंह औरंगजेब की सेवा में बना रहा। जनवरी १६५६ ई. में औरंगजेब को शाहजादा शुजा का सामना करना पड़ा तब राव जगतसिंह उसका सामना करने को भेजा गया[2]। खजूह के मैदान में शुजा से सामना हुआ जिसमें विजय शाही सेना की हुई। इस प्रकार राव जगतसिंह के सहयोग का लाभ औरंगजेब को शीघ्र ही प्राप्त हो गया[3]। औरंगजेब ने शिवाजी के विरुद्ध जब कड़ी कार्यवाही प्रारंभ की तब मरहठों के विरुद्ध राव जगतसिंह को ही भेजा[4]। दक्षिण में ही इसकी मृत्यु सं० १७४० की कार्तिक शुक्ला पंचमी को हुई। इसके कोई पुत्र नहीं था। इसलिए इसके बाद राव माधोसिंह के चौथे पुत्र कन्हीराम के पुत्र प्रेमसिंह को कोटा के सामन्तों ने शासन का भार सौंप दिया।

---

१ टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५२३; वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २७३८; आलमगीरनामा पृ० १६३-६४।

२ आलमगीरनामा, पृ० २४५-५०।

३ वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृ० २७७०।

४ सम्वत् १७३७ और १७४० (ई० सन् १६८० और १६८३ के बीच) जगतसिंह प्रायः दक्षिण में रहा, कभी औररंगाबाद, कभी बुरहानपुर में और कभी जहानाबाद में। दक्षिण में इसने कई ब्राह्मणों को दान-दक्षिणाएँ दीं। विशेष कर गजगणेश हाथी दान दिया गया। जगतसिंह औरंगाबाद और बुरहानपुर के आसपास किसी लड़ाई में सम्भव है कि हैदराबाद के युद्ध में शेख मिन्हाज से लड़ते हुए मारा गया।
डा० म. ला. शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० १८६।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

राव प्रेमसिंह (वि० सं० १७४० से १७४१)

राव माधोसिंह के पाँच पुत्र थे। चौथै पुत्र कन्हीराम को कोयला की जागीर प्राप्त हुई थी। जगतसिंह की मृत्यु के बाद उसके कोई पुत्र न होने के कारण कोटा के सरदारों ने वि० सं० १७४० (ई० सन् १६८३) में कन्हीराम के पुत्र प्रेमसिंह को कोयला से बुला कर कोटा का शासक नियुक्त किया। परन्तु यह महा मूर्ख और अयोग्य सिद्ध हुआ। इसको कुछ सरदारों की कूटचाल से राज्य मिला था जिनका उद्देश्य एक कमजोर शासक को अध्यक्ष मान कर अपनी शक्ति को सुरक्षित करना था। वास्तविक उत्तराधिकारी पलायथा वाले थे। प्रेमसिंह को इस प्रकार राजगद्दी मिलने के कारण उन सरदारों के कहने में रहना पड़ता था। इससे राज्य-शासन में गड़बड़ी होने लगी। परगनों में लूटमार होने लगी। खजाना खाली होने लगा क्योंकि लोगों ने मालगुजारी आदि देना बन्द कर दिया बाराँ परगने पर गौड़ों ने अधिकार कर लिया। अतः इसके विरुद्ध जन विरोधी आन्दोलन उठा और विरोधी सरदारों ने उसे गद्दी से उतार कर इसे कोयला वापस भेज दिया[1]। और उसके स्थान पर राव माधोसिंह के सबसे छोटे पुत्र किशोरसिंह को ठिकाना साँगोद से बुला कर कोटा की राजगद्दी पर कार्तिक शुक्ला द्वितीया वि० सं० १७४१ को बैठाया।

राव किशोरसिंह (वि. सं. १७४१–१७५२)

प्रेमसिंह को गद्दी से हटा कर जब सामन्तों ने किशोरसिंह को कोटा राज्य सौंपा उस समय यह शासन करने के लिए काफी वृद्ध था परन्तु कोटा की चिंतित राजनैतिक व्यवस्था को सही नेतृत्व इसी के द्वारा प्राप्त हो सकता था। अतः इसने वि० सं० १७४१ में कोटा का शासक होना स्वीकार किया[2]। औरंगजेब ने इसे ३००० की मनसब और खिलअत देकर इसे कोटा का राजा स्वीकार कर लिया। इसकी बहादुरी व पराक्रम तथा योग्यता से वह अत्यंत प्रभावित था। शाहजहाँ के काल में जब बाल्ख और बदक्शा विजय के लिए औरंगजेब को भेजा उस समय औरंगजेब ने माधोसिंह हाड़ा तथा उसके पुत्रों का युद्ध-कौशल देखा था। धर्मत के स्थान पर औरंगजेब के विरोधी राजपूतों में हाड़ाओं ने जिस विरोध

---

१ टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृ० सं० १५२३; ठाकुर लक्ष्मणदान : शाही सनद प्रेमसिंह को प्राप्त नहीं हुई थी इसलिए उमरावों ने प्रेमसिंह को गद्दी से उतार दिया।
वंशभास्कर : तृतीय भाग, पृ० सं० २८८०।

२ जगतसिंह की मृत्यु के समय किशोरसिंह बीजापुर की लड़ाइयों में व्यस्त था। उस समय उसे १००० का मनसब मिल चुका था। कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० २००।

Ac. Gunratnasuri MS　　Jin Gun Aradhak Trust

का प्रदर्शन करते हुए वीरगति को प्राप्त किया। उससे औरंगजेब पर अधिक प्रभाव पड़ा। धर्मत के युद्ध में १५ अप्रेल १६५८ ई. को किशोरसिंह के ४० घाव लगे थे। उसको भली प्रकार सेवा की गई। अतः वह बच गया। अभी उसके घाव भरने भी न पाए थे कि औरंगजेब ने शुजा के विरुद्ध राव जगतसिंह और किशोरसिंह को भेजा। खजुहा के युद्ध में ३ जनवरी १६५९ को उसे शानदार सफलता प्राप्त हुई। औरंगजेब हाड़ा राजपूतों की शक्ति को पहचानता था। इसलिए वह उसे अपनी ओर ही रखने की नीति अपनाता रहा। वह जोधपुर नरेश जसवन्तसिंह से शंकित रहता था। अतः कहीं राजपूत वर्ग उसके विरुद्ध एक न हो जाय, इसलिए इस दृष्टि को सामने रखते हुए कि फूट डाल कर ही (भेद नीति) शासन किया जाता है, उसने हाड़ा शासकों को अपनी ओर मिलाए रक्खा।

राजगद्दी पर बैठने के कुछ ही समय बाद औरंगजेब के आदेशानुसार उसे दक्षिण में जाना पड़ा। अपने चारों पुत्र—विशनसिंह, रामसिंह, अर्जुनसिंह और हरनाथसिंह सहित वह दक्षिण की ओर जाना चाहता था। परन्तु उसके बड़े लड़के विशनसिंह ने दक्षिण में मुगलों के नीचे युद्ध करने में अपना अपमान समझा। उसने मना कर दिया। इस पर किशोरसिंह ने उसे राजगद्दी के अधिकार से वंचित कर दिया और अन्ता की जागीर दी[1]। रामसिंह, जो दक्षिण में उसके साथ लड़ाई में गया था, उसको उत्तराधिकारी बनाया। युद्ध में वीरता प्रदर्शित करने पर रामसिंह को १००० का मनसब भी मिला था। किशोरसिंह १६८५ ई० में बीजापुर विजय करने के लिए औरंगजेब के साथ गया। औरंगजेब ने जब बीजापुर पर अधिकार कर लिया तब उसने किशोरसिंह को खिलअत, हाथी, घोड़े, और जवाहरात पुरस्कार स्वरूप दिए तथा कुलाई का परगना भी उसको दिया गया।

औरंगजेब के साथ दक्षिण में यह अपने अन्तिम समय तक रहा। गोलकुण्डा-विजय के समय (ई. सन् १६८४-८५), हैदराबाद का घेरा (ई. सन् १६८६) उसके बाद मरहठा राजा शंभाजी व राजाराम के विरुद्ध शाही युद्ध में (१६८८ १६९५ ई.) बराबर औरंगजेब का साथ देता रहा[2]। औरंगजेब की क्षीण शक्ति को

---

१ टाड : राजस्थान, तृतीय भाग, पृ० सं० १५२३।

२ किशोरसिंह ने १२ वर्ष तक राज्य किया। वह केवल दो चार बार कुछ महिनों के लिए कोटा आया। शेष समय दक्षिण में ही बीता। मेवाड़ के राणा और शाहजादा आजम के बीच सुलह कराने में किशोरसिंह का मुख्य हाथ था। यह सुलह की बातचीत सम्वत् १७३७ के चैत्र मास में प्रारम्भ हुई। आजम से मिलने श्रावण कृष्णा ३ सम्वत् १७३७ को राणा जगतसिंह आया। किशोरसिंह हाड़ा वहाँ उसके स्वागत के लिए उपस्थित था।

ओझा : राजपूताने का इतिहास, तृतीय भाग, पृ० ८९७।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

दृढ़ बनाने की शृँखला हाड़ा राजपूत ही थे। औरंगजेब जब दक्षिण में ही था तो उत्तरी भारत में जाटों ने विद्रोह कर दिया। सिनसिनी (भरतपुर) के जाट शासक राजाराम ने मुगल साम्राज्य के विरुद्ध सिर खड़ा किया। जाट शासक के विद्रोह को दबाने के लिए औरंगजेब ने राव किशोरसिंह को दक्षिण से भेजा। जुलाई १६८८ को इसने जाट शासक को बुरी तरह हराया। राजाराम युद्ध करता हुआ मारा गया। किशोरसिंह के 'इस युद्ध में २८ घाव लगे तथा युद्ध करते-करते वह बेहोश हो गया'[1]। इस युद्ध में इसके साथ औरंगजेब का पोता शाहजादा बेदारबख्त तथा खानजहाँ बहादुर जफरजंग भी था—बून्दी का राव राजा अनिरुद्धसिंह भी साथ था पर वह मैदान छोड़ कर भाग गया था[2]। बादशाह औरंगजेब ने किशोरसिंह को इस विजय पर बधाई दी और बून्दी का परगना केशोरायपाटण बून्दी से छीन कर किशोरसिंह को दिया। इस युद्ध में साथ वालों में से घाटी का रावत तेजसिंह, राजगढ का सरदार गोवर्द्धनसिंह, पानाहाड़ा का ठाकुर सुजानसिंह सोलंकी, बारज का ठाकुर राजसिंह आदि मारे गये थे।

भरतपुर के युद्ध से सीधे यह स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त करने के लिए कोटा लौट आया। दक्षिण में औरंगजेब मरहठो की शक्ति नष्ट करने पर तुला हुआ था। अतः करनाटक पर आक्रमण करने के समय उसने किशोरसिंह को बुला भेजा। वह पुनः दक्षिण में लौटा और अरनी (अकार्ट) के युद्ध में लड़ते हुए अप्रेल १६९६ (वि० सं० १७५२ के चैत्र मास) को इसे वीर गति प्राप्त हुई। उसकी मृत्यु के उपरान्त इसका द्वितीय पुत्र रामसिंह जो इसके साथ ही अरनी के युद्ध में था, राजगद्दी पर बैठा। इसके राज्यकाल में औरंगजेब का विरोध होने पर भी चाँदखेड़ा का जैन मन्दिर एक बघेरवाल जैन व्यापारी ने खानपुर के पास सम्वत् १७४६ में बनवाया था[3]।

---

१ औरंगजेबनामा : भाग ३, पृ० ५६।

२ वंशभास्कर में लिखा है कि अनिरुद्धसिंह के भागने पर बून्दी नरेश की पगड़ी गोवर्द्धनसिंह अपने सिर पर रख कर लड़ने लगा। वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृ० २८८८।

३ चाँदखेड़ी का शिलालेख, वि. सम्वत् १७४६।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

राव रामसिंह (वि. सं. १७५२-१७६४)

किशोरसिंह अधिकतर युद्ध क्षेत्र में रहता था। अतः कोटा के शासन की देखरेख का पूर्ण भार अपने पुत्र रामसिंह को सौंप कर जाया करता था परन्तु किशोरसिंह की अंतिम दक्षिण यात्रा के समय रामसिंह अपने पिता के साथ था। अर्काट के युद्ध में राव किशोरसिंह की सम्वत् १७५२ (अप्रेल सन् १६९६) में मृत्यु हो गई[1]। अतः जब यह सूचना कोटा पहुँची तो रामसिंह की अनुपस्थिति का लाभ उठा कर उसके बड़े भाई विष्णुसिंह ने कोटा पर अधिकार कर लिया व स्वयं शासक बन बैठा। औरंगजेब ने उसको मान्यता नहीं दी, बल्कि रामसिंह को तीन हजार मनसब तथा तीन हजारी सवारों का अधिकारी बना कर शाही सेना के साथ कोटा पर अधिकार करने भेजा[2]। विष्णुसिंह और रामसिंह दोनों भाइयों में आँवा गाँव में युद्ध हुआ। इस लड़ाई में इसके एक भाई हरनाथसिंह की मृत्यु हो गई और विष्णुसिंह घायल होकर अपनी ससुराल मेवाड़ राज्य के पाँडेर स्थान में चला गया जहाँ वह तीन वर्ष के बाद मर गया। इस प्रकार रामसिंह कोटा राज्य का स्वामी हुआ। कोटा राज्य पर सुरक्षित आसीन होने के बाद यह दक्षिण में शाही सेना में जा उपस्थित हुआ। दक्षिण करनाटक तथा मरहठों से जिञ्जी प्राप्त करने का भार जुलफिकारखाँ को दिया गया था। राव रामसिंह जुलफिकारखाँ के नेतृत्व में मरहठों के सरदार सन्ताजो घोरपड़े के पुत्र राणु से जा भिड़े। विजय इसकी रही जिसके सम्मान में सम्वत् १७५७ (ई० सन् १७००) में बादशाह से इसे नक्कारा प्राप्त हुआ[3]। दक्षिणियों से दूसरा

---

१ डा० मथुरालाल शर्मा का ऐसा मत है कि जुलफिकारखाँ ने अरनी का किला विजय कर रामसिंह के सुपुर्द कर दिया था। वहीं पर लड़ते हुए किशोरसिंह का देहान्त हुआ था। दक्षिण के युद्धों में रामसिंह ने आड़ोमी विजय (१६८७), पन्हाला विजय (१६८९) में भाग लिया। रामसिंह उस समय युवराज पद पर था। अतः कोटा नरेश की हैसियत से वहाँ पर उसने कई पट्टे परवाने और ताम्रपात्र जारी किए थे। बीजापुर विजय के बाद रामसिंह को १००० की मनसब प्राप्त हुई। कोटा राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २२१-२२२।

२ उपरोक्त, पृ० २२३।

३ महासिरुलउमरा, पृ० ३४९। जुलफिकार खाँ के नेतृत्व में जिञ्जी के प्रसिद्ध घेरे में (१६९७) रामसिंह को 'शेतानदरी' हरावल पर भेजा गया। विजय रामसिंह की रही। राजाराम (शिवाजी का दूसरा पुत्र) जिञ्जी से भागने के समय अपना परिवार जिञ्जी में ही छोड़ गया। रामसिंह ने राजाराम के कुटुम्ब की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया और पालकियों में उन्हें बिठा कर जिञ्जी से रवाना किया।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

युद्ध अरनखेड़े के पास सन् १७०४ में हुआ जहाँ हाड़ा राजपूतों के आगे दक्षिणी टिक न सके। शाहजादा आजम अत्यन्त प्रसन्न हुआ और अपने पिता से सिफारिश की कि इसका मनसब बढा दिया जाय। इसके मनसब में वृद्धि की गई और बून्दी के मऊ मैदान का परगना, सरबल, छीपाबड़ोद, व रतनपुर जागीर रूप में इनायत हुए[1]।

औरंगजेब की मृत्यु ३ मार्च १७०७ में अहमदनगर में होते ही उसके पुत्रों में दिल्ली के सिंहासन प्राप्त करने के लिए युद्ध हुआ। रामसिंह ने उस समय शाहजादा आज़म का पक्ष लिया। आज़म ने इसका मनसब चार हजारी का कर दिया। शाहजादा मुअज्जम जो कि औरंगजेब की मृत्यु के समय उत्तर पश्चिम सूबे में था, दिल्ली प्राप्त करने के लिए लश्कर सहित चला। दोनों भाइयों के बीच धौलपुर व आगरा के बीच जाजउ के स्थान पर १८ जून १७०७ को युद्ध हुआ। इस युध्द में बून्दी के हाड़ा शाहजादा मुअज्ज़म के पक्ष में लड़े और कोटा वाले शाहजादा आज़म की ओर से लड़े[2]। प्रथम बार हाड़ों की दोनों शाखाओं में विरोधी दलों में सम्मिलित होकर आपस में युद्ध हुआ। इस युध्द में शाहजादा मुअज्ज़म मारा गया। आज़म विजयी होकर दिल्ली के सिंहासन पर बहादुरशाह के नाम से बैठा। राव रामसिंह जाजउ के इस युध्द में सन् १७०७ की २० जून (आसाढ वदि ४ सम्वत् १७६४) को मारा गया[3]।

इसी समय से बून्दी व कोटा के बीच युध्दों का श्रीगणेश हुआ। इसका शासन शान्तिकाल के लिए प्रसिध्द है। केवल एक बार मऊ में उपद्रव हुआ; वह भी दबा दिया गया। मेवाड़ के राणा व आमेर के राजा इसका सम्मान करते थे।

---

१ महासिरूलउमरा, पृ० ३४९।

२ शाहजादा आज़म १४ मार्च १७०७ को शाही तख्त पर अहमदनगर में बैठा और शादजादा मुअज्जम ने १२ जून १७०७ को आगरा पहुँच कर शाही कोष पर अधिकार कर लिया। रामसिंह आज़म से २ अप्रेल १७०७ को औरंगाबाद में मिला और आज़म का साथ देने का निश्चय किया।

३ वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० २९६७।
इरविन : लेटर मुगल्स, जिल्द १, पृ० २५१३०।
टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५२४।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

महाराव भीमसिंह (वि० सं० १७६४ से १७७७)

राव रामसिंह के जाजव के रणक्षेत्र में वि० सं० १७६४ (ई० सन् १७०७) को वीरगति प्राप्त होने पर उसका पुत्र भीमसिंह कोटा की राजगद्दी पर बैठा। इसने भील और खीची राजपूतों के बहुत से इलाकों को दबा कर अपना राज्य बढ़ाया। खीचियों से गागरोन का किला लिया। बाराँ, माँगरोल, मनोहरथाना, और शेरगढ़ के परगनों पर भी अधिकार जमाया। भीलों के राजा चन्द्रसेन को, जिसके पास ५०० घुड़सवार और ८०० तीरन्दाज रहते थे, निर्दयता से मार करके उसका राज्य इसने कोटा राज्य में मिलाया। इसके सिवाय औनारसी, पीडावा, डीग और चन्द्रावलों की भूमि पर भी इसने अधिकार किया[1]। परन्तु इसकी मृत्यु के बाद ही यह प्रदेश फिर से निकल गए।

जाजव की लड़ाई से कोटा व बून्दी में पारस्परिक शत्रुता हो गई। जाजव के युद्ध में शाहजादा मुअज्जम (बहादुरशाह) का विरोध रामसिंह ने किया और बून्दी के बुद्धसिंह ने पक्ष लिया। बहादुरशाह कोटा के हाड़ाओं को शंका की दृष्टि से देखने लगा। बून्दो नरेश ने इस नई राजनैतिक व्यवस्था का पूरा लाभ उठाया। बहादुरशाह ने बुद्धसिंह को कोटा बून्दीमें मिलाने की आज्ञा देदी[2]। बुद्धसिंह ने अनुमति पाकर अपने मंत्रियों को कोटा राज्य पर अधिकार करने के लिए लिख दिया और स्वयं ने आमेर (जयपुर) जाकर वहां जयसिंह महाराज की बहिन से विवाह कर लिया। इसके बाद वह बेगूं (मेवाड़) की ओर होता हुआ बहादुरशाह के साथ दक्षिण की ओर चला गया[3]। इधर बून्दी के मंत्रियों ने कोटा पर आक्रमण कर दिया[4]। इस सेना को भीमसिंह ने बुरी तरह से हराया। बून्दी की सेना भाग खड़ी हुई[5]। एक बार भीमसिंह ने बड़ी चतुराई

---

१ टाड : राजस्थान, तृतीय भाग, पृ० १५२४-१५२५।

२ वंशभास्कर : चतुर्थ भाग, पृ० २९९८-९९ बहादुरशाह को महाराजा राव की पदवी दी तथा कोटा के ५४ परगने मिलाने का फरमान दिया था।

३ उपरोक्त, पृ० ३०००-१० बेंगू के राव की लड़की से भी बुद्धसिंह ने विवाह किया और कहाँ से अपने मन्त्रियों को आज्ञा दी कि कोटा पर आक्रमण किया जाय।

४ यह कार्य जोधराज वैश्य, गंगाराम का भाई और कनकसिंह के पुत्र जोगीराम के नेतृत्व में हुआ था। वंशभास्कर : पृ० ३००८।

५ डा० शर्मा का मत है कि युद्ध के पहले भीमसिंह ने बालकृष्ण व्यास और फतेहचन्द कायस्थ को भेज कर शान्ति रखने का प्रयास किया था पर असफल रहा। कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० २५६।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

से बून्दी की सेना में फूट डाल कर हराया। बुद्धसिंह बादशाह के पास दक्षिण में यह सब सुन कर चुप बैठा रहा[१]। बहादुरशाह करीब पांच वर्ष तक राज्य (जुलाई १७०७ से फरवरी १७१२) करके मर गया। इसके बाद जहाँदारशाह कुछ ही माह के लिए गद्दी पर बैठा। उसे मार कर उसका भतीजा फरुखसियार सैयद बन्धुओं की सहायता से दिल्ली के तख्त पर १७१२ में बैठा। उसने १७१६ तक शासन किया। इस समय सैयद बन्धु ही दिल्ली के कर्ताधर्ता थे। वे चाहे जिसको राजगद्दी पर बैठा देते थे और उतार देते थे। भीमसिंह हाड़ा ने दिल्ली की राजनीति में सैयद भाइयों को सहयोग दिया। इस कारण उसका सम्मान बढ़ गया[२]। उधर बुद्धसिंह ने फरुखसियार को राजगद्दी पर बैठने में कोई सहायता नहीं दी थी। यहाँ तक कि वह बादशाह के बुलाये जाने पर और राजाओं की तरह प्रमादवश शाही दरबार में उपस्थित नहीं हुआ। अतः बादशाह इस पर बहुत नाराज हुआ। इस बार भीमसिंह ने राजनैतिक उथल-पुथल का लाभ उठा कर बादशाह फरुखसियार से बून्दी विजय की आज्ञा माँगी जो उसे प्राप्त हो गई[२]।

भीमसिंह ने वि० सं० १७७० (सन् १७१३) में बुद्धसिंह के अपने मामा के चले जाने के बाद, सुअवसर देख कर बून्दी पर चढ़ाई कर उसको अपने अधिकार में कर लिया। बून्दी का राजकोश कोटा पहुँचा दिया गया। राव रतन के बाद शाही निशान, रणशंख नामक नक्कारा छीन कर कोटा लाया गया[३]। उसे पुनः प्राप्त करने के लिए बून्दी वालों ने कई बार प्रयत्न किया, पर वे असफल रहे। फरुखसियार ने भीमसिंह को पंचहजारी मनसबदार बना दिया[४]। बून्दी राज्य पढार (माँडलगढ से बून्दी तक क्षेत्र) और खीचोवाडे तथा उमरवाडे का उसको पट्टा दे दिया गया। इस प्रकार भीमसिंह ने कोटा राज्य को तीसरी श्रेणी से प्रथम श्रेणी का राज्य भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में बना दिया। बुद्धसिंह भी चुप न रहा। उसने आमेर के सवाई जयसिंह से मदद ली। सवाई जयसिंह के प्रयत्न से फरुखसियार ने बुध्दसिंह को वि० सं० १७७२ (सन् १७१५) में बाराँ और मड के परगनों के अलावा बून्दी राज्य दिलवा दिया। वि० सं० १७७३

---

१ कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० २५६।

२ वंशभास्कर : चतुर्थ भाग, पृ० ३०४०-४३।
टाड : राजस्थान तृतीय भाग, पृ० १५२४।

३ वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० ३०४४-४५।
टाड : राजस्थान, तृतीय भाग : पृ० १५२७।

४ उपरोक्त, पृ० १५२४।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

(१७१६ ई०) में बारां और मउ के परगने भी बादशाह के आदेश से बुध्दसिंह को लौटा दिये गये[1] । इस पर भीमसिंह व फरुखसियार का विरोध हो गया ।

फरुखसियार की सैयद बन्धुओं से नहीं बनी । अतः २८ फरवरी सन् १७१९ में सैयदों ने फरुखसियार को कैद कर मार डाला । बादशाह को कैद करने के समय सैयद भाइयों को डर था कि बुद्धसिंह और जयसिंह बादशाह के मित्र होने के नाते उसे पुनः तख्त पर बैठाने का प्रयत्न न करें । अतः उन्होंने बुद्धसिंह को, जो उस समय दिल्ली ही था, मार डालने की योजना बनाई । सैयद हुसेनअली के साथ जोधपुर के अजीतसिंह, किशनगढ के राजसिंह तथा कोटा के भीमसिंह ने बुद्धसिंह के डेरे पर हमला किया । बुध्दसिंह के कई वीर मारे गए । बुध्दसिंह लाहौरी दरवाजे होता हुआ भाग निकला[2] । इसके बाद फरुखसियार को मार डाला गया । बेदारबख्स के पुत्र बेदारदिल को रफीउद्दरजात के नाम से राजगद्दी पर बैठाया गया । रफीउद्दरजात ने भी ४ जून सन् १७१८ को राजगद्दी छोड़ दी और उसके बाद बहादुरशाह का पोता रफीउद्दोला गद्दी पर बैठाया गया । वह १८ सितम्बर १७१९ में मर गया । इसके बाद उसका भाई मुहम्मदशाह तख्त पर बैठाया गया । इस प्रकार सैयद बन्धु दिल्ली की राजनीति के सर्वेसर्वा थे । राजनैतिक उथल-पुथल से शासन में ढिलाई आने लगी । शाही फरमानों की अवहेलना की जाने लगी[3] । ऐसे समय में साम्राज्य में विद्रोह होने लगा । बादशाह के आदेशों की कोई परवाह नहीं की जाने लगी । इलाहबाद के सूबेदार छबेलाराम ने सैयदों के विरुध्द विद्रोह कर दिया । बून्दी का बुध्दसिंह हाड़ा उससे जा मिला[4] । इस पर सैयदों ने १७ नवम्बर १७१९ को दिलावरखाँ के

---

१ फरुखसियार के काल में राजधानी में ३ दल थे—मुगल, तुरानी व इरानी । फरुखसियार सैयद भाइयों से मुक्त होना चाहता था । उसने दक्षिण के सूबेदार निजाममुल्क से साँठ-गाँठ की । सैयद भाइयों में बड़ा भाई अब्दुला खाँ वजीर था और छोटा भाई हुसेनअली सेनापति । हुसेन अधिक चालाक था । जयसिंह व बुद्धसिंह उसके विरोधी थे । अतः फरुखसियार ने हुसनअली को दक्षिण का सूबेदार बना कर मराठों के विरुद्ध भेज दिया । इसी प्रकार लाभ उठा कर जयसिंह ने बुद्धसिंह को फरुखसियार से पुनः बून्दी दिलादी ।

२ टाड : राजस्थान, भाग ३, पृ० १५२५ ।

वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० ३०६५-६७ ।

३ इरविन : लेटर मुगल्स, भाग १, पृ० ८८६ ।

४ इरविन : लेटर मुगल्स, जिल्द २, पृ० १०-११ ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

साथ बून्दी पर शाही सेना भेजदी। शाही सेना के साथ नरवर के राजा गजसिंह व कोटा के भीमसिंह भी थे। बुध्दसिंह बुरी तरह से पराजित हुआ[1]।

दक्षिण में सूबेदार निजामुल्मुल्क स्वतन्त्र शासक बनने की चेष्टा करने लगा। फरुखसियार के समय वह दक्षिण का सूबेदार बनाया गया था। वहाँ उसने बड़ी कुशलता से शासन को सुव्यवस्थित व सुसंगठित किया। सैयदों ने उसे शीघ्र ही वहाँ से हटा कर मुरादाबाद और फिर मालवा का सूबेदार बनाया। इससे वह सैय्यदों का विरोधो बन गया। मालवा पहुँच कर वह गुप्त रूप से सैय्यदों के विरुद्ध सैनिक तैयारी करने लगा। निजाम को काबू में रखने के लिए सैय्यदों ने बून्दी से दिलावरखाँ व भीमसिंह को मालवा जाने की आज्ञा दी। इस समय भीमसिंह को यह प्रलोभन दिया गया था कि निजामुल्मुल्क के विरुध्द सहायता देने पर उसे 'महाराजा' की पदवी, सात हजार की मनसब तथा सात हजार सवारों का भो अधिकारी बना दिया जायेगा तथा उसको शाही मरातिब भी मिलेगा। दिलावरखाँ को मालवा का सूबेदार बनाना तय किया गया[2]।

निजामुल्मुल्क भी सेना के साथ उज्जैन की ओर बढा। उसने असीरगढ व बुरहानपुर के किलों पर पहले से ही कब्जा कर रक्खा था। बादशाही सेना को देख कर पहले तो निजामुल्मुल्क ने सन्धि का प्रस्ताव किया लेकिन दिलावर खाँ ने उसे अस्वीकार कर दिया। इस पर निजामुल्मुल्क ने एक चाल चली। महाराव भीमसिंह और निजामुल्मुल्क पगड़ीबदल भाई थे। इसलिए निजाम ने महाराव को पत्र लिखा कि आपके चालाक महाराजा जयसिंह के कहने पर यध्द न करें। वह आपको आपस में लड़ा कर नष्ट करना चाहता है। परन्तु भीमसिंह अपने कर्त्तव्य से नहीं हटा और लिख भेजा कि कल ही हम तुम पर हमला करेंगे[3]। भोमसिंह की निष्कपटता और सत्यता निजाम की चालाकी के सामने नहीं चल सकी। बुरहानपुर के पास गाँव कुरवाई के मैदान में निजाम ने पड़ाव डाला। झाड़ियों में निजाम ने तोपें छिपा कर मोर्चा बाँधा। जिस समय भीमसिंह प्रात:काल ही हाथी पर चढ कर आगे बढा तो निजाम की तोप के गोले से ज्येष्ठ सुदि १४ (ई० सन् १७२० ता० ८ जून) को मारा गया। राजा गजसिंह

---

१ खफीखां लिखता है कि यह युद्ध १९ फरवरी १७२० को हुआ और बुद्धसिंह का काका व ६ हजार राजपूत मारे गए। खफीखाँ, जिल्द २, पृ० ८४४-४५।

२ खफीखाँ, जिल्द २, पृ० ८५१। भीमसिंह २००० राजपूतों को व नरवर के राजा गजसिंह ३००० राजपूतों को लेकर निजाम के विरुद्ध युद्ध में भाग लेने पहुँचे थे।

३ टाड : राजस्थान, तृतीय भाग, पृ० १५२५-२६।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

नरवरी भी इस समय काम आया। दिलावरखाँ भी एक गोले की चोट से मारा गया। शाही सेना तितर-बितर हो गई। विजयनिजाम की रही[१]।

भीमसिंह बड़ा वीर और धैर्य्यवान् नरेश था। इसके शरीर पर कई युध्दों में भाग लेने के कारण, कई घाव थे। अन्तिम समय में कुरवाई के रण-क्षेत्र में इन घावों को देख कर लोगों ने आश्चर्य किया। परन्तु मरते समय भी भीमसिंह ने यही कहा कि हाड़ा के राज्य व देश की रक्षा करने वालों के ऐसे निशान मिलते ही हैं तथा राजपूत सन्तान का धर्म है कि वह युध्द में सदा आगे रहे। कोटा के नरेशों में भीमसिंह ही पहला नरेश था जिसने महाराव की पदवी धारण की। इसके पहले ये 'राव' कहलाते थे। इसका अधिकांश समय युध्दों में ही बीता। अत: अपने राज्य का आन्तरिक प्रबन्ध ठीक नहीं कर सका। ज्यादातर राज्य जागीरदारों में बँटा था। अत: कोटा का शासक एक प्रकार से जागीरदारों के ही हाथ में था। यों अत्याचारी जागीरदारों की जागीरें जब्त कर ली जाती थीं। इसने साँवलजी के मन्दिर का निर्माण करवाया था। यह वल्लभ सम्प्रदायवादी था[२]। भीमसिंह ने जजिया कर भी माफ करवाया था।

महाराव भीमसिंह के समय हलवर (धागधड़ा राज्य) का झाला भाउसिंह अपने पुत्र माधोसिंह सहित दिल्ली जाता हुआ कोटा आया। वह अपने पुत्र माधोसिंह को कोटा नरेश की सेवा में छोड़ कर आप आगे दिल्ली चला गया। उसके साथ २५ घुड़सवार भी थे। यह माधोसिंह झाला अपने ननिहाल ठिकाना सावर (अजमेर) में ही छोटे से बड़ा हुआ था। माधोसिंह बहुत ही साहसी, पराक्रमी और चतुर था। भीमसिंह इस समय योग्य राजपूतों को इकट्ठा कर रहा था क्योंकि उसे सैय्यद बन्धुओं की सहायता में निजामुल्मुल्क पर चढ़ाई करनी थी। माधोसिंह झाला को अपनी सेना में नौकर रख लिया। थोड़े ही समय में अपनी चतुराई व वीरता से महाराव को प्रसन्न कर लिया। अत: उसकी बहिन का विवाह महाराव ने अपने युवराज अर्जुन से करा दिया[३]। इससे

---

५ वंशभास्कर : चतुर्थ भाग, पृ० ३०७८-७९।
इरविन : लेटर मुगल्स, जिल्द २, पृ० २८-३१।
टाड : राजस्थान, तृतीय भाग, १५२६।

२ डा० मथुरालाल शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ३०८। वीर विनोद भाग ३, पृ० १४७२।

३ वीरविनोद में यह उल्लेख है कि महाराव अर्जुनसिंह की शादी माधोसिंह झाला की बेटी से हुई थी।

टाड के कथनानुसार बहन लिखा है। टाड : जिल्द २, पृ० ५६५-६६।
झालावाड़ गजेटीयर, पृ० १९१ के अनुसार 'झाला माधोसिंह की बहन युवराज अर्जुनसिंह धाटी" लिखा मिलता है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

माधोसिंह की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई। कुछ दिनों महाराव ने उसे फौजदार के पद पर नियुक्त किया और उसको कोटा के पास नानता की जागीर देदी। इस जागीर की आय १२,०००) रु. थी। आगे चल कर माधोसिंह झाला के परिवार ने कोटा की राजनीति में प्रमुख भाग लिया और झालावाड़ की रियासत अलग से स्थापित की।

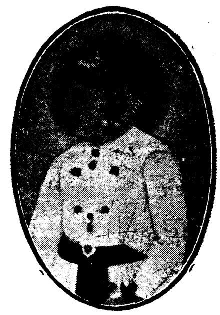

महाराव भीमसिंह के अर्जुनसिंह, श्यामसिंह और दुर्जनशाल नामक तीन पुत्र थे। भीमसिंह की मृत्यु के बाद अर्जुनसिंह वि० सं० १७७७ में गद्दी पर बैठा। यह केवल ३ वर्ष तक ही राज्य कर सम्वत् १७८० (सन् १७२३ ई० में स्वर्ग सिधारा। इसके कोई पुत्र नहीं था। इस कारण इसने अपने छोटे भाई दुर्जनशाल को अपना उत्तराधिकारी बनाने की इच्छा राज्य के प्रमुख सरदारों के समक्ष प्रकट की। इसके समय बून्दी राज्य पुनः बुद्धसिंह को प्राप्त हो गया तथा बून्दी के सब परगनों से कोटा के थाने उठवा दिये गये।

महाराव दुर्जनशाल (वि. सं. १७८०-१८१३)

अर्जुनसिंह की अन्तिम इच्छानुसार राव दुर्जनसाल कोटा की राजगद्दी पर बैठा। उसका राज्याभिषेक वि०सं० १७८० (ई० सं० १७२३) मार्गशीर्ष वदि ५ में हुआ। गद्दी पर बैठते ही इसे एक बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। महाराव दुर्जनसाल का बड़ा भाई श्यामसिंह इस समय यह विचार कर रहा था कि अर्जुनसिंह के बाद कोटा की राजगद्दी पर उसका अधिकार है अतः अपने भाई दुर्जनसाल के विरुद्ध विद्रोह कर बैठा। राजगद्दी के लिये इस युद्ध को प्रोत्साहन देने का कार्य जयपुर के शासक सवाई जयसिंह ने किया था। अर्से से वह इस ताक में था कि बून्दी व कोटा के राज्य उसके प्रभाव में रहें। अतः उसकी राजनैतिक सफलता इस बात में थी कि कोटे का राजा ऐसा व्यक्ति बने जो उसके इशारों पर चलता रहे। गृह-युद्ध के इस अवसर पर सवाई जयसिंह ने श्यामसिंह का साथ दिया। जयपुर की सेना की सहायता पाकर श्यामसिंह ने कोटा पर आक्रमण कर दिया। दोनों भाइयों में अभलिया[1] गांव के पास

१ उदयपुरया का युद्ध सं० १७८५ में।

Ac. Gunratnasuri MS   Jin Gun Aradhak Trust

सं० १७८५ (ई०सं० १७२८) में युद्ध हुआ जिसमें श्यामसिंह मारा गया[1]। श्यामसिंह की मृत्यु पर महाराव दुर्जनसाल को बहुत दुःख हुआ और कहा कि यदि मुझे ऐसा मालूम होता तो मैं अपना राज्य छोड़ देता। बाद में इसने वि० सं० १७९७ में श्यामसिंह की मृत्यु के स्थान पर एक छत्री भी बनवाई[2]। इस गृह-कलह का एक स्वाभाविक परिणाम यह हुआ था कि कोटा राज्य की शक्ति कमजोर हो गई। इस विजय के पहले ही मुगल सम्राट मुहम्मदशाह ने हाथी, खिलअत और मसनदन शीनी भेज कर राव दुर्जनसाल को कोटा का शासक स्वीकार कर लिया था[3]।

महाराव दुर्जनसाल का मुगल दरबार में काफी प्रभाव था। शाह मुहम्मद शाह में वह व्यक्तित्व व शक्ति नहीं थो जिससे मुगलों की परम्परा की शक्ति निभा सके[4]। दरबार में उसकी कोई परवाह नहीं करता था। गद्दी पर बैठने के कुछ समय बाद जब दुर्जनसाल से मिलने के लिये दिल्ली गया[5] तब गायों की रक्षा के हेतु वहां के कुछ कसाइयों और नगर कोतवाल को मार डाला था। ये गायें शाही रसोईघर के लिये कटने वाली थीं। लेकिन इसने बादशाह की कोई परवाह न कर गायों को कोटा भेज दिया। इसके अलावा गायों का जो कसाई-खाना यमुना नदी के किनारे था उसे वहाँ से हटवा दिया क्योंकि यमुना नदी के किनारे होने से गायों का रक्त यमुना में जा मिला था[6]।

मराठों के पेशवा बाजीराव प्रथम की प्रधानता में मराठों ने पहले-पहल कोटा पर, वि० सं० १७९५ में, धावा किया। उस समय दुर्जनसाल ने मरहठों को

---

१ वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० ३०९४।
श्यामरु दुर्जनसल्लके, भो भूहित घमसान।
अग्रज श्यामसिंह मारिके, भौ नृप दुर्ज्जनसाल ॥

२ डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, प्रथमं भाग, पृ० ३३९।

३ टाड : राजस्थान, तृतीय जिल्द, पृ० १५२९।

४ खफीखाँ : मुहम्मद शाह की पतित स्थिति का वर्णन करते लिखता है कि वह (बादशाह) नपुंसकों की संगति में अधिक रहता था, और उन्हीं लोगों को राज्य के ऊँचे पद दिये जाते थे। (पृ० ९४०)

५ मुहम्मदशाह के विरोधियों में मारवाड़ के शासक अजीतसिंह व मेवाड़ के महाराणा थे। जयसिंह, जयपुर नरेश ने प्रत्यक्ष रूप में बादशाह का विरोध नहीं किया था परन्तु धीरे २ वह अपनी स्वतंत्र नीति अपनाने लगा, मराठों से मित्रता करली और हिन्दूपद पादशाही का स्वप्न देखने लगा। सिर्फ कोटा का शासक दुर्जनसाल ही उसका मित्र रह गया था।

६ टाड : राजस्थान, तृतीय जिल्द, पृ० १५२९।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भोजन तथा युद्ध-सामग्री से सहायता की इसलिए उन्होंने भी मित्रता का परिचय दिया और नाहरगढ का किला जो मुसलमानों के अधिकार में था, छीन कर महाराणा दुर्जनसाल को दे दिया[१]।

जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह[२] की वृहत् जयपुर की नीति का अनुसरण उसके पुत्र ईश्वरसिंह ने भी किया[3]। उसने हाड़ोती को अपने अधिकार में रखने का पूर्ण प्रयत्न किया। जब उसे यह ज्ञात हुआ कि कोटा तथा शाहपुरा की सहायता से रावराजा उम्मेदसिंह हाड़ा ने बून्दी राज्य पर पुनः अधिकार कर लिया तो ईश्वरसिंह ने वि० सं० १८०१ (ई० सं० १७४४) में बून्दी की तरह कोटा को भी अपने अधीन करने के लिये चढाई की। इस समय महाराजा ईश्वरसिंह ने जयप्पा सिंधिया, मल्हारराव होल्कर तथा सूरजमल जाट की सहायता लेकर कोटा शहर का घेरा डाल दिया जो ६१ दिन तक रहा। कोटा के पास कोटड़ी नामक स्थान पर दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ। इस युद्ध में जयप्पा सिंधिया

---

१ पेशवा बाजीराव ने १७२६ ई० के बाद अपनी प्रसिद्धि उत्तरी भारत में प्रसार की नीति के अन्तर्गत मालवा, बुन्देलखण्ड व गुजरात पर मराठी प्रभाव स्थापित करना आरम्भ किया। ये तीनों सूबे मुगल साम्राज्य के अंग थे। मालवा की सूबेदारी जयसिंह को प्राप्त हुई कि वह मरहठों को वहाँ से हटा दे। पर जयसिंह ने मरहठों से मित्रता की नीति ही अपनाई। इस पर मुहम्मदशाह ने वजीर कमीरुद्दीन व बक्शी खानेदोरान को मराठों को दबाने भेजा। सम्वत १७६१ (सन् १७३४) में खानेदोरन ने राजस्थान के शासकों से जयसिंह, अभयसिंह व दुर्जनसाल से सहायता लेकर रामपुरा में पड़ाव डाला। होल्कर व सिंधिया ने खानेदोरान को बुरी तरह तंग किया। आठ दिन तक उनके पास रसद नहीं पहुँचने दी। बाजीराव ने खानेदोरान को संधि के लिये बाध्य किया। होल्कर व सिंधिया ने मारवाड़, जयपुर, सांभर आदि को लूटा। कोटा ने संधि करली जहाँ महाराव दुर्जनसाल ने मरहठों की सेवा-सुश्रुषा की। बाद में होल्कर व सिंधिया सहित बाजीराव ने कोटा का घेरा डाला। यह घेरा ४० दिन तक रहा। १७६५ में बालाजी यशवन्त की मध्यस्थता से बाजीराव व तुर्जनसाल के बीच मित्रता हो गई। बाजीराव को ४० लाख रु. प्राप्त हुए।

२ बून्दी को कोटा से मुक्ति दिलाने के बाद जयसिंह ने बुद्धसिंह को पुनः बून्दी का शासक बना दिया था। परन्तु उसका मंत्री नागराज जयसिंह के प्रभाव में ही कार्य करने लगा जिससे जयसिंह का प्रभाव बून्दी पर स्थाई रूप से बना रहा (वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० ५०६४)।

३ जयसिंह का बून्दी पर अधिकार : बून्दी का इतिहास, पृ० संख्या......।

बुद्धसिंह ने कोटा नरेश की सहायता प्राप्त कर बून्दी पुनः लेनी चाही पर वह असफल रहा। इस पर जयसिंह दुर्जनसाल से अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने दलेलसिंह को बून्दी का राजा बना दिया तथा दुर्जनसाल को उसे शासक मानने के लिये बाध्य किया। दुर्जनसिंह ने दलेलसिंह के लिये एक सिरोपाव व एक घोड़ा भेजा।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

का एक हाथ तोप के गोले से पोष शुक्ला १५ को उड़ गया। अन्त में किलेदार हिम्मतसिंह की चतुराई और हाड़ों की वीरता से आपस में सुलह हो गई। महाराव ने बून्दी के पाटया और काचरण परगने तथा ४ लाख रुपये फोज-खर्च देकर मरहठों से पीछा छुड़वाया।

गुगोर का ठाकुर भीमसिंह के देहांत पर कोटा से अलग हो गया अतः सं० १८१० (ई० स० १७५३) में महाराव ने गढ़ गुगोर को वापस लेना चाहा पर इसमें सफल नहीं हुआ। खीचियों के राजा बलभद्र ने सामना किया। यहाँ तक कि रामपुरा, शिवपुर व बून्दी के सरदारों ने दुर्जनसाल का सामना करना चाहा परन्तु इसी समय बून्दी के रावराजा उम्मेदसिंह ने कोटा की सहायता की, जिससे कोटा राज्य खीचियों के हाथ में जाने से बच गया[1]।

सं० १८१३ के श्रावण शुक्ला ५ (ई० स० १७५६) को महाराजा दुर्जनसाल का स्वर्गवास हुआ। इन्होंने ३२ वर्ष तक राज्य किया। इनका विवाह सं० १७९१ आषाढ कृष्णा ९ (सन् १७३४ जून) को उदयपुर के महाराणा जगतसिंह दूसरे की बहिन राजकुमारी ब्रजकुँवरबाई के साथ हुआ था इसलिये महाराणा ने गद्दी पर बाईं तरफ बैठने की इज्जत महाराव को दी और दूसरे नरेशों की भाँति उदयपुर से महाराव के नाम पर भी लिखा जाने लगा[2]।

इसके कोई पुत्र नहीं था। इससे निराश होकर ये कभी-कभी कह बैठते थे कि दूसरे का हक छीनने वाले के उत्तराधिकारी कहाँ से आवें? इसलिये महाराव के पीछे अन्ता ठिकाने का जागीरदार अजीतसिंह गोद आकर राजगद्दी पर बैठा[3]। दुर्जनसाल बड़ा ईश्वर-भक्त था। वि० सं १७९८ की कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को उसने नाथद्वारे में एक धार्मिक उत्सव का आयोजन किया तथा वहाँ शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के ७ स्वरूपों—बिट्ठलनाथजी, नवनीतप्रियाजी, द्वारिकारूपजी, गोकुलचन्दजी, मयूरनाथजी, गोकुलनाथ, मदनमोहनजी, को एकत्र करवाया। इस अवसर पर जयपुर के सवाई जयसिंह, करोली के राजा गोपालसिंह, उदयपुर के महाराणा जगतसिंह, द्वितीय, भरतपुर के जाट जवाहरमल, भैंसरोड़ के

१ टॉड : राजस्थान, पृ० १५३०।

२ ओझा : राजपूताने का इतिहास, तृतीय भाग, पृ० ९३३। यह रानी महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय की पुत्री थी। संग्रामसिंह का देहान्त माघ सम्वत १७९० में ही हो चुका था, अतः ब्रजकुंवरबाई का कन्यादान उनके भाई महाराणा जगतसिंह ने किया।

३ गोद तो अजीतसिंह के पुत्र शत्रुशाल को लेना चाहता था परन्तु हिम्मतसिंह झाला (जो कि उस समय सेनापति था) ने जोर दिया कि पिता होते हुए पुत्र को किस प्रकार गद्दी दी जा सकती है। अतः अजीतसिंह वृद्धावस्था में गोद आया।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सूरतसिंह चूड़ावत, बेगू के देवसिंह, आदि को सपरिवार आमन्त्रित किया गया। इस उत्सव पर दुर्जनसाल ने लगभग १ लाख रुपये खर्च किये[1]।

उसने अन्नकूट आदि बल्लभ सम्प्रदाय के कई उत्सव भी जारी किये थे। उसके समय विक्रम सं० १८०१ में मथुरानाथजी बूंदी से कोटा आये थे। मथुरानाथजी के लिये राज्य मंत्री द्वारिकादास की हवेली अर्पण की गई जिसमें अब तक मथुरानाथजी प्रतिष्ठित हैं। इस मन्दिर के खर्च के लिये १२००० रु. की जागीर के गाँव प्रदान किये। वि०सं० १८१२ में महाराव दुर्जनशाल द्वारिका की यात्रा करने भी गया था।

महाराव दुर्जनशाल एक बहादुर नरेश था। उसके अंदर राजपूतों के गुण विद्यमान थे। मिलनसारी, दयालुता और वीरता के लिये वह प्रसिद्ध था। उसे सूअर के शिकार का बड़ा शौक था और शिकार के समय अक्सर रानियों को अपने साथ रखता था[2]।

महाराव अजीतसिंह (वि०सं० १८१३-१८१५)

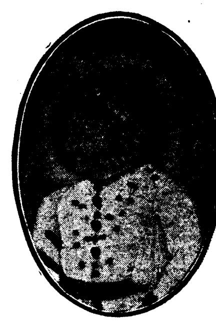

दुर्जनशाल के कोई पुत्र नहीं था। अत: उसके बाद उसका निकटतम संबंधी विशनसिंह का जेष्ठ पौत्र और अन्ते का जागीरदार अजीतसिंह राजगद्दी पर बैठा। यों तो दुर्जनशाल ने अजीतसिंह के पुत्र शत्रुशाल को गोद लिया था क्योंकि उस समय अजीतसिंह दुर्जनशाल की महाराणी से भी आयु में बड़ा था। लेकिन हिम्मतसिंह झाला ने यह नहीं चाहा कि अजीतसिंह के जीवित रहते शत्रुशाल गद्दी पर बैठे। अत: उसने यही निश्चय कराया कि पहले अजीतसिंह राजगद्दी पर बैठे और फिर उसका लड़का शत्रुशाल।

अत: दुर्जनशाल की मृत्यु के ८ मास बाद यह निश्चय हुआ और इसके फलस्वरूप १८१३ की फाल्गुन में अजीतसिंह कोटा की गद्दी पर बैठा। इस आठ मास के समय राजमाता ने शासन का संचालन किया।

अजीतसिंह के राजगद्दी पर बैठने के बाद ही राणोंजी सिंधिया, जो इस समय मरहठों में सबसे अधिक शक्तिशाली था, ने कोटा पर आक्रमण कर दिया[3]। मरहठे यह नहीं चाहते थे कि बिना उनकी अनुमति लिये कोई राजगद्दी पर

---

१ वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० ३३१२।

२ टाड: राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५३०-३१।

३ डा० शर्मा: कोटा राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० १४।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

बैठे। इस समय तक मुगलों का स्थान मरहठों ने ले लिया था। अतः मरहठों की सेनाका सामना करना कोटा के लिये एक बड़ी विषम समस्या बन गई। राजमाता ने इस समय बड़ी चालाकी से काम लिया। उसने राणाजी सिंधिया को राखी भेज कर अपना धर्मभाई बनाया[1]। सिंधिया ने राज हड़पने का विचार त्याग दिया लेकिन धन का लोभ नहीं छोड़ा अतः यह निश्चय किया गया कि अजीतसिंह ४० लाख रु. नजराने के देगा। इस नजराने की ४ किश्तें की गई। इन किश्तों में से अन्तिम किश्त में २ लाख रुपये छूट के दिये गये। बाद में अजीतसिंह ने मरहठों को जयपुर लूटने के समय घोड़ों की नालें आदि भेज कर सहायता दी[2]।

अजीतसिंह ने लगभग डेढ वर्ष राज्य किया। १९५० की अमावश्या को हुआ। इनके साथ इनकी रानी सती हुई। इनके तीन पुत्र—शत्रुशाल, गुमानसिंह व राजसिंह थे।

महाराव शत्रुशाल (वि० सं० १८१५-१८२१)

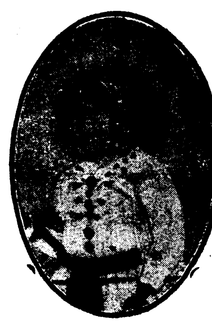

शत्रुशाल को दुर्जनशाल ने गोद लिया था और उसकी मृत्यु के बाद यही राजगद्दी पर बैठने वाला था लेकिन हिम्मतसिंह झाला की चाल के कारण यह राजगद्दी पर बैठ न सका अतः अपने पिता अजीतसिंह की मृत्यु के बाद, बड़ा लड़का होने के कारण वि० सं० १८१५ में गद्दी पर बैठा।

इस समय मरहठों का राजपूताने पर बोलबाला था। मुगलों की अब कोई पूछ नहीं थी। शत्रुशाल के गद्दी पर बैठते ही जवरोजी सिंधिया और मल्हारराव होल्कर कोटा आ धमके और नजराना मांगने लगे। दोनों ने मिल कर शत्रुशाल से २ लाख रु० नजराने के ले लिये[3]।

इसके राज्यकाल में सबसे विकट युद्ध मरवाड़े का हुआ। यह युद्ध इसके और जयपुर नरेश माधोसिंह के बीच हुआ। इस युद्ध का मुख्य कारण रणथम्बोर का किला था। वि० सं० १८११ में जब रणथम्बोर के किले पर माधोसिंह का

---

१ उपरोक्त; फाल्के : जिल्द प्रथम, टिप्पणी १९४।

२ यह आक्रमण सं० १८१३ में हुआ। इसमें लगभग ७००० रु. खर्च हुए। राजकीय कोष की हालत ठीक न होते हुए भी यह सहायता दी गई थी।

३ सरकार : फाल ऑफ दी मुगल एम्पायर, पृ० १९४-९५।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अधिकार हो गया[1] तब उसने चाहा कि कोटा और बून्दी वाले उसकी अधीनता स्वीकार करलें। जैसे कि वे पहले मुगलों के समय में रणथम्बोर की अधीनता मे रहते थे। वास्तव में कोटा और बून्दी वाले मुगल सम्राट की अधीनता में रहते थे न कि रणथम्बोर के अतः इसकी परवाह नहीं की। कोटा और जयपुर में पहले से ही शत्रुता थी अतः अब फिर बढ़ने लगी[2]। इसके अलावा रणथम्बोर के आसपास के इन्द्रगढ, खातोली, गैता, बलवन आदि के हाड़ा जागीरदारों ने भी अब जयपुर वालों को कर देना बंद कर दिया क्योंकि वे भी तब मुगलों को ही कर देते थे। इन हाड़ा सरदारों पर ज्यादा सख्ती की जाने लगी। तब ये कोटा नरेश के पास सहायता के लिये गये[3]। शत्रुशाल ने इनको इस शर्त पर सहायता देना स्वीकार किया कि वे कोटा को नालू, बून्दी देंगे। इससे जयपुर और कोटा के बोच युद्ध होना अनिवार्य हो गया। जयपुर के महाराजा माधोसिंह ने एक बड़ी सेना कोटा के विरुद्ध वि० सं० १८१७ में रवाना की। रास्ते में इस सेना ने उणियारा पर कब्जा कर वहाँ के ठाकुर से अपनी अधीनता स्वीकार कराई। वहाँ से यह सेना लारबेरी पहुँची। वहाँ से भी मरहठों का कब्जा हटा कर अपना आधिपत्य स्थापित किया[4]। यह सेना आगे बढ कर चम्बल और पार्वती नदी

---

१ उपरोक्त : जिल्द १, पृ० सं० ५०१-४। इस किले पर अकबर के काल से मुगलों का अधिकार चला आ रहा था। अजमेर के सूबेदार के अधीन यहां का शासन होता था। जयसिंह, आमेर-शासक इसे हस्तगत करना चाहता था, पर वह असफल रहा। नादिरशाह के आक्रमण के बाद (१७३९) मुगल शक्ति का प्रभाव सर्वदा के लिये समाप्त हो गया। १७४९ में मुगल बादशाह मोहम्मदशाह मर गया। अहमदशाद गद्दी पर बैठा। उसके समय में (१७५१-५२) उसके और उसके वजीर सफदरजंग के बीच युद्ध हो गया। जयपुर नरेश माधोसिंह ने प्रयत्न कर बादशाह और वजीर के बीच सुलह करादी। इस सेवा के उपलक्ष में रणथम्बोर का किला माधोसिंह को दे दिया परन्तु रणथम्बोर के फोजदार ने युद्ध के बाद यह किला माधोसिंह को सौंपा।

२ जयपुर-कोटा शत्रुता बून्दी के युद्ध (बुद्धसिंह व जयसिंह के बीच में) के समय हो गई थी, जब कि राव दुर्जनशाल ने बुद्धसिंह की सहायता कर उसे बून्दी का राज्य दिलाने का प्रयत्न किया और बुद्धसिंह के बाद उम्मेदसिंह बून्दी नरेश कोटा के शासकों की सहायता से ही हुआ था।

३ डा० मथुरालाल शर्मा कृत कोटा राज्य का इतिहास, पृ० ४४१।

४ माधवसिंह ने यह हमला सन् १७६०-६१ में किया था जब कि मराठे अहमदशाह अब्दाली से पानीपत के मैदान में संलग्न थे। मरहठों को इस प्रकार व्यस्त देख कर जयपुर-कोटा संघर्ष पुनः प्रारम्भ हो गया। इस प्रकार राजपूत शासक अप्रत्यक्ष रूप में अहमदशाह अब्दाली की विजय के कारण बन गये। पेशवा ने माधोसिंह को पानीपत के युद्ध में सहायता

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

के संगम स्थान पालीघाट[1] होती हुई कोटा राज्य की सीमा में घुस गई। इस पर कोटा की सेना की झालमसिंह तथा राय अहतमराय की अध्यक्षता में इस सेना से टक्कर हुई। इस सेना का मांगलोर तहसील के भटवाड़े नामक स्थान पर सामना हुआ। कोटा की सेना में १५००० सवार तथा जयपुर की सेना में ६० हजार सवार थे। उस समय मल्हारराव होल्कर कोटा राज्य के पास ही अपनी सेना का पड़ाव डाले पड़े थे[2]। झालमसिंह झाला ने उससे सहायता चाही लेकिन उसने प्रत्यक्ष सहायता देने से इन्कार कर दिया। उसने यही स्वीकार किया कि उसकी सेना रणभूमि के पास पड़ी रहेगी और यदि जयपुर की सेना हारने लगी तो उनको लूट लूँगा। इससे कोटा की सेना को बड़ी सहायता मिली। इससे जयपुर वालों का साहस कम हो गया। उनको यह बराबर डर लगा रहा कि कभी होल्कर उन पर टूट न पड़े। यह लड़ाई वि० सं० १८१८ की आश्विन शुक्ला ४ (ई०स० १७६१) को हुई। उसमें बून्दी की सेना भी आई थी लेकिन वह किसी ओर से लड़ी नहीं।

भटवाड़े[3] के युद्ध में जयपुर की सेना को हार कर भागना पड़ा व उसे काफी हानि उठानी पड़ी। मल्हारराव होल्कर की सेना ने भी जयपुर के डेरे बहुत लूटे। कोटा वाले जयपुर वालों के १७ हाथी, १८०० घोड़े, ७३ तोपें तथा एक पंचरंगा लूट कर कोटा ले आये। इस युद्ध में कोटा के ३५,५,००० खर्च हुए थे[4]। इस युद्ध के विषय में कहा जाता है कि—

जंग भटवाड़ा जीत, तारा जालिम झाला।
रिंग एक रंगजीत, चढियो रंग पचरंग के[5] ॥

यह युद्ध जयपुर व कोटा के बीच का अंतिम युद्ध था। महाराव शत्रुशाल ने

देने के लिये लिखा था, परन्तु मरहठों से बार २ शोषित होने के कारण राजपूत शासकों ने मरहठों की कोई सहायता नहीं की। पानीपत के युद्ध के बाद मरहठों ने जो राजस्थान को रोंद डाला, इस नीति का परिणाम ही था।

१ इन्द्रगढ से लगभग ६ मील उत्तर की ओर।

२ मल्हारराव होल्कर पानीपत के मैदान से ७ जनवरी १७६१ को भाग कर राजस्थान की ओर आ चुका था। इसकी हारी हुई सेना किसी का पक्ष लेना नहीं चाहती थी।

३ भटवाड़े का युद्ध जनवरी १७६१ को हुआ था। विजय की यह लूट इसी युद्ध में ही प्राप्त हुई थी (उपरोक्त पृ० १५३४)।

४ डा० शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ४४७।

५ इसका अर्थ है मरवाड़ा के युद्ध में जालिमसिंह का सौभाग्य रूपी सितारा उदय हुआ। उस रण-क्षेत्र में एक रंग रहा। पंचरंग पताका को डाल दिया। इस युद्ध के समय जालिमसिंह २१ वर्ष का युवक था। व्यक्तिगत वीरता के कारण ही उसे सफलता प्राप्त हुई।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इस युद्ध में विजयी होने के कारण वीर जालिमसिंह झाला के सम्मान में वृद्धि की और उसे कोटा राज्य का मुसाहिब (प्रधान मन्त्री) बनाया। इस युद्ध के पश्चात शत्रुशाल ने माधवराव सिंधिया तथा केदारजी सिंधिया को बून्दी पर चढाई करने में वि० सं० १८१६ में सहायता दी। बून्दी का घेरा डाला गया। लेकिन उसे जीत नहीं सके। अन्त में संधि हो गई। माधवराव सिंधिया ने शत्रुशाल को सेना खर्च के १७१२० रु० दिये[1]।

कोटा राज्य होल्कर व सिंधिया के राज्यों से मिला हुआ था। इसके अलावा मालवा से दिल्ली के बीच में कोटा पड़ता था। इस कारण मरहठों को कोटा बराबर आना-जाना पड़ता था। मरहठे अपनी सेना का खर्चा लूटमार से ही चलाते थे, अतः कोटा पर मररठों की बराबर आँख लगी रहती थी। कोटा वाले भी सामदाम की नीति से काम चलाते थे। शत्रुशाल के राज्यकाल में सं० १८१५ में मल्हारराव की सेना द्वारा सुकेत को घेरने पर कोटा ने ८००० रु० खर्च किये[2]। इसके बाद मल्हरराव होल्कर दिल्ली जाते हुए कोटा में होकर निकला तब शत्रुशाल ने अपने प्रधान को भेज कर होल्कर की सेना की बड़ी खातिरदारी की तथा नजर भेंट की। जब वह आषाढ मास में वापस लौटा तब फिर ५१ हजार रु० होल्कर को दिये। इस बार वह फिर उज्जैन की ओर से आया तब १४००० रु० भेंट किये। वि० सं० १८१६ में होल्कर को १५२००० नजराने दिये गये। इसके अलावा बून्दी के मोर्चे के समय कोटा से १८०००० लिये गये। यह रकम दुर्जनशाल ने जब उम्मेदसिंह को गद्दी पर बैठाया तब से बाकी चली आ रही थी। इस प्रकार शत्रुशाल ने मरहठों को काफी धन देकर राज्य की शांति खरीदी[3]। इस धन की पूर्ति के लिये कोटा में कई नये कर लगाये गये। करों को सख्ती से वसूल किया गया[4]। शत्रुशाल केवल ६ साल तक राज्य कर वि० सं० १८२१ की पोष कृष्णा ९ (१७६४ ई०) को स्वर्ग सिधारा। इसके कोई पुत्र न होने के कारण इसके छोटे भाई गुमानसिंह को राजगद्दी प्राप्त हुई।

---

१ वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० ३७१०; डा० मथुरालाल शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ४५१।

२ उपरोक्त, पृ० संख्या ४४८।

३ उपरोक्त : पृ० संख्या ४५१-५२।

४ जो नये कर लगाये गये उनमें मुख्य ये थे : चोथान (जागीरदारों से लिया जाता था) पेशकसी, कोटा नगर पर मरहठों ने कर लगाया, (इसकी रकम ४८००० थी) नगर में जाति पंचायतों पर कर, बीघेड़ी और जामदारी कठोरता से वसूल किये गये। बीघेड़ी प्रति बीघा ४ आना व जामदारी प्रति कुटुम्ब १ रुपया।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

गुमानसिंह (वि० सं० १८२१-१८२७ई० स० १७६४-१७७०)

महाराव शत्रुशाल की मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई गुमानसिंह पोष शुक्ला ६, वि० सं० १८२१ (ई. सं० १७६४) को गद्दी पर बैठा। यह नौजवान, उत्साही और बुद्धिमान व्यक्ति था। उस समय फौजदार जालिमसिंह झाला की शक्ति बढ रही थी। जालिमसिंह की बहिन की शादी गुमानसिंह से हो जाने के कारण वह राज्य का सर्वेसर्वा हो गया[1]। परन्तु महाराव और जालिमसिंह में अधिक समय तक नहीं पटी। इसका कारण यह था कि महाराव का प्रेम एक सुन्दरदासी (दरोगण) से था और वही युवती जालिमसिंह की नजरों में भी चढ गई थी। इससे साले बहनोई में मनमुटाव हो गया[2]। मौका पाकर झाला के द्वेषी हाड़ा सरदारों ने महाराव को उसके विरुद्ध बहका कर उसके कामों में हस्तक्षेप करना शुरू किया। झाला ने इस पर विरोध प्रकट करना शुरू किया तब महाराव ने उसकी मुसाहिबी और नानते की जागीर छीन ली[3]।

निराश होकर जालिमसिंह कोटा से चल दिया। जयपुर का दरवाजा तो उसके लिये पहले से ही बन्द था। मारवाड़ में उसको तदवीरें नहीं चलीं। मेवाड़ में उस समय मरहठों ने लूट मचा रखी थी। वहाँ उस जैसे कूनीतिज्ञ को आवश्यकता थी अतः वह मेवाड़ चला गया[4]।

मेवाड़ में वह देलवाड़ा पहुँचा जहाँ के झाला सरदार राधादेव के द्वारा महाराणा अरिसिंह से परिचय प्राप्त किया। वहाँ पर भी अपनो राजनीति को वह भूल न सका। अपने शुभचिंतक राघवदेव झाला के साथ विश्वासघात करके उसे मरवा डाला। इस पर महाराणा बड़े प्रसन्न हुए क्योंकि अरिसिंह राघवदेव के प्रभाव से मुक्त होना चाहता था। महाराणा ने जालिमसिंह को 'राजराणा' की पदवी दी और चीतखेड़ा की जागीर भी[5]। मेवाड़ में जब माधवराव

---

१ ठाकुर लक्ष्मणदान द्वारा उल्लेख है कि जालिमसिंह की बहिन का विवाह गुमानसिंह के साथ हुआ था।

२ टाड : राजस्थान, तृतीय भाग, पृ० १५३७।

३ उपरोक्त : जालिमसिंह के स्थान पर ठाकुर भोपतसिंह भंकरोत को फौजदार नियुक्त किया। यह गुमानसिंह का मामा था। बाद में यह पद काका स्वरूपसिंह को दिया गया। वह भी मरहठों को रोकने में असफल रहा, अतः जालिमसिंह पुनः उस पद पर लाया गया।

४ उपरोक्त।

५ उपरोक्त, पृ० १५३८।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सिंधिया[1] का हमला हुआ तब वह लड़ते-लड़ते घायल होकर कैद हो गया। बाद में एक मरहठा सरदार अम्बाजी इंगले ने ६०००० रु० देकर इसे कैद से छुड़वाया। कैद से छूट जाने पर मेवाड़ में अपना प्रभाव लुप्त होते देख कर वह मरहठे वल्लाल के साथ वापस कोटा आ गया[2]।

उस समय तक मरहठे कोटे को दक्षिणी सीमा तक पहुँच गये थे। मल्हरराव होल्कर ने बकानी के किले को जो कोटा से दक्षिण में ६० मील पर था, घेर लिया। वहाँ हाड़ों और मरहठों में घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध में सेनापति माधोसिंह, सावंतसिंह बड़ी वीरता से, मय अपने चारसौ हाड़ों के साथ काम आये। होल्कर विजयी होकर कोटा की ओर आगे बढा[3] तब महाराव गुमान-सिंह ने अपने मामा बासीहेड़ा के भोपतसिंह फौजदार को संधि के लिये भेजा परन्तु वह सफल नहीं हुआ। इसलिये लाचार होकर महाराव ने जालिमसिंह से स्थिति सम्हालने को कहा। जालिमसिंह इस अवसर की प्रतीक्षा में था हा। उसने होल्कर के साथ संधि की वार्ता प्रारम्भ की। ६ लाख रु. उसे देकर शाँति खरीदी गई। इसलिये महाराव ने प्रसन्न होकर जालिमसिंह झाला को पुनः मुसाहिब का पद और नानता की जागीर देदी[4]। इसके बाद जालिमसिंह का बोलबाला दिनोंदिन बढता ही गया। यहाँ तक कि कोटा की चार पीढी तक जालिमसिंह ही राज्य का कर्ताधर्ता मुसाहिब रहा[5]। जब महाराव गुमानसिंह लगभग ७ वर्ष राज्य करके सख्त बिमार हुआ तो इसने अपने बालक पुत्र

---

१ महाराणा अरिसिंह के विरुद्ध राणा रत्नसिंह ने विद्रोह कर सलूम्बर, घाणेराव, बद्नीर व कानोड़ के जागीरदारों की सहायता से कुम्भलगढ में अपने को महाराणा घोषित कर दिया और महारानी सिंधिया की सहायता से मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया।

२ वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० ३७३८-३९।

वीरविनोद, भाग २, पृ० १५५६-५८।

टाड : राजस्थान, तृतीय भाग, पृ० १५३८।

उज्जैन के पास मेवाड़ की हार से राणा की स्थिति कमजोर हो गई। जालिमसिंह ने ऐसी स्थिति में वहां रहना उचित नहीं समझा।

३ टाड : राजस्थान, भाग ३, पृ० १५३९।

४ उपरोक्त, पृ० १५४०। डा० शर्मा का मत है कि झाला जालिमसिंह को पुनः फौजदार बना कर भी महाराजा स्वरूपसिंह को अपने पद से नहीं हटाया। वह भी जालिमसिंह के साथ राज्य-प्रबंध करता रहा।

५ १७६६ ई० में महाराव गुमानसिंह ने नाथद्वारा की यात्रा की थी। वहाँ महाराणा अरिसिंह व जोधपुर नरेश महाराजा विजयसिंह से मिले। नाथद्वारे में तीनों नरेशों ने मरहठों के विषय में परामर्श किया, पर क्या निर्णय हुआ यह ज्ञात नहीं है।

Ac. Gunratnasuri MS　　　　Jin Gun Aradhak Trust

उम्मेदसिंह को जालिम झाला की गोदी में बिठा कर कहा कि यह तुम्हारे भरोसे है और जालिमसिंह को राज्य का सर्वाधिकारी संरक्षक बनाया। गुमानसिंह की मृत्यु माघ शुक्ला १ सम्वत १८२७ को हुई।

महाराव उम्मेदसिंह (वि. सं. १८२७-१८७६)

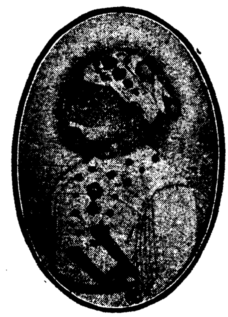

वि. सं. १८२७ में राजसिंहासन पर बैठने के समय इसकी आयु १० साल की थी। महाराव गुमानसिंह ने इस के मामा जालिमसिंह को राज्य तथा इसका संरक्षक बनाया था[1]। जालिमसिंह इस कारण कोटा का सर्वेसर्वा बन गया। उसने ५० वर्ष तक महाराव को एक कठपुतली की तरह रख कर बड़ी कुशलता से राज-कार्य चलाया। महाराव ने अपना अधिकांश समय ईश्वर-भक्ति में ही बिताया[2]।

जालिमसिंह बड़ा ही महत्वाकांक्षी था। अतः शासन-सूत्र संभालते ही वह राज्य की सम्पूर्ण शक्ति अपने हाथ में करने का प्रयत्न करने लगा। उस समय मालगुजारी, खजाना और जकात जैसे महत्वपूर्ण विभाग महाराव के निकट के भाई महाराजा स्वरूपसिंह के अधीन थे। जालिमसिंह ने उसको उसके पद से हटाना चाहा। उसने राजमाता को बहका कर उसकी सहमति लेकर वि०सं०१८१६ की फाल्गुन शुक्ला[3] को धाभाई जसकरण द्वारा मरवा डाला[4]। जसकरण को भी बाद में राजद्रोही करार करके उसे राज्य-निकाला दे दिया[5]।

---

१ महाराव गुमानसिंह ने उम्मेदसिंह को जालिमसिंह की गोद में बिठा कर कहा कि तुम्ही इसके संरक्षक हो।

२ जालिमसिंह का जन्म सन् १७३९ में हुआ था, जब कि नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण किया। और मुगल सल्तनत के अवशेषों को चूर २ कर दिया। उसका राजनैतिक जीवन सन् १७६१ में भरवाड़े के यद्ध से प्रारम्भ होता है जब कि पानीपत के मैदान में मरहठे हार चुके थे। आरंभिक जीवन : देखो यही पुस्तक, पृ० सं०......।

३ टाड : राजस्थान, भाग ३, पृ० संख्या १५४१; वह फौजदार था परन्तु साथ ही दीवान के अधिकार प्राप्त कर सर्वेसर्वा बनना चाहता था। वह अपने विरोधियों को जिनमें स्वरूपसिंह व जसकरण धाभाई थे, दर करना चाहता था।

४ जालिमसिंह ने राजमाता से कहा कि स्वरूपसिंह ने गुमानसिंह की हत्या करवाई। क्योंकि जब महाराव बिमार पड़े तो स्वरूपसिंह ने उन्हें जहर देकर मार डाला। परन्तु वंश-भास्कर में इसका दोष जालिमसिंह के प्रति लिखा गया है। वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० संख्या १५४१।

टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृ० संख्या १५४२।

५ उपरोक्त : धाभाई जसकरण पर राजद्रोह का आरोप लगा कर हमेशा के लिये देश से निर्वासित कर दिया। धाभाई दरिद्र अवस्था में जयपुर में मरा।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

स्वरूपसिंह के मारे जाने के बाद जालिमसिंह कोटा का सर्वेसर्वा बन गया। महाराव तो केवल नाम का राजा था, यहाँ तक जालिमसिंह स्वयं गढ के अन्दर हवेली बना कर ही रहने लगा[१]। वहाँ रहने का अभिप्राय महाराव के रात-दिन संपर्क में रहना था ताकि वह उनके पास आने-जाने वालों पर भी कड़ी निगाह रख सके।

जालिमसिंह ने हाड़ा सरदारों को बराबर कुचलने का प्रयत्न किया। उसके समय में कई हाड़ा सरदार कोटा छोड़ कर अन्य राज्यों—बून्दी, जयपुर, जोधपुर आदि में चले गये। लेकिन उनको वहाँ भी सुख से नहीं रहने दिया। इसने अन्य राजाओं को भी सूचित किया कि ये सब सरदार राज्य-द्रोही हैं। तथा विश्वासघाती हैं। राजा लोग यह सूचना पाकर तथा इसके अलावा जालिमसिंह के प्रभाव के कारण इनको आश्रय देने का साहस न कर सके। लाचार होकर वे वापस कोटा लौट आये। जालिमसिंह ने उनको कोटा में रहने की अनुमति देदी लेकिन उनको जागीरें वापस नहीं दी। यदि दी भी तो बहुत छोटी जागीरें दी[२]। सरदारों में से महाराजा स्वरूपसिंह के नजदीकी भाई आटोण के जागीरदार देवीसिंह ने जालिमसिंह के विरुद्ध कार्यवाही करने का विचार किया लेकिन इसके तैयारी करने से पहले ही जालिमसिंह ने उसके विरुद्ध सेना भेजदी। महाराव सेना भेजने के विरुद्ध थे और एक बार सेना की चढाई करने से पूर्व रोक भी दिया था लेकिन महाराव ज्यादा समय तक विरोध नहीं कर सके। जालिमसिंह ने मरहठों के एक अंग्रेज फौजी अफसर मूसाकल्ची के द्वारा आरोण पर चढाई करादी तथा फिर कोटा से भी सेना भेजदी। देवीसिंह को हार माननी पड़ी और सिंधिया की शरण लेनी पड़ी। बाद में सिंधिया के कहने पर देवीसिंह को एक छोटीसी जागीर कोटा में देदी गई[३]। इसी प्रकार स्वरूपसिंह के पुत्रों को भी बहुत ही छोटी जागीरें दी गईं।

वि० सं० १८३६ में भारत की प्राचीन दिग्विजय प्रथा के अनुसार जालिमसिंह ने महाराव द्वारा टीका दौर कराया[४]। इसके द्वारा वह कोटा राज्य के

---

१ उपरोक्त : पृ० सं० १५४४।

२ टाड : राजस्थान, तृतीय भाग, पृ० सं० १५४३।

३ आन्ता की जागीर ६० हजार रु. आय की थी। झालासिंह से असतुष्ट हाड़ाओं ने एकत्र हो विद्रोह कर दिया। विद्रोह दबा दिया गया। देनसिंह भाग गया और परदेश में ही उसकी मृत्यु हुई। उसके पुत्र ने क्षमा मांग ली और उसे बागोलिया की रियासत मिली जो कि १५००० की आय वली थी। टाड: राजस्थान, तृतीय भाग, पृ० १५४४।

४ टीका दौर राज्याभिषेक के बाद दिग्विजय के लिये प्रमाण करने व चक्रवर्ती शासक बनने की प्रथा को कहते हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

आसपास के छोटे-छोटे राज्यों व बिकानों को हस्तगत करना चाहता था तथा राज्य का विस्तार करना चाहता था। इसी टीका दौर में सर्वप्रथम शाहबाद पर आक्रमण कर हस्तगत किया[1] तथा वहाँ कोटा का जमादार अनवरखाँ निगरानी के लिये नियुक्त किया गया। इसके बाद वि० सं० १८३० में शोपुरबड़ौदे पर चढाई की गई।

इस समय जयपुर का महाराजा प्रतापसिंह कोटा रियासत पर अधिकार जमाने का बार-बार प्रयत्न कर रहा था। उसको रोकने के लिये कोटा से वि०सं० १८३७ में सेना भेजी गई। इस सेना ने उस समय जयपुर की सेना को रोक दिया लेकिन जयपुर वाले फिर भी दबे नहीं। अतः वि० सं० १८३६ में एक बड़ी सेना भेजी गई। इस सेना ने जयपुर की सेना पर पूर्ण विजय प्राप्त की[2]।

विदेशी नीति[3]—मरहठों के प्रति नीति—पेशवा ने कोटा राज्य सिंधिया, होल्कर और दोनों पँवारों को जागीर में दिया था। अतः इन चारों सरदारों की मातहत में कोटा रहा[4]। वि० सं० १७६४ (ई० सं० १७३७) से मरहठों का वकील कोटा में रहने लगा था। वह अंग्रेजी काल के रेजीडेन्ट की भाँति था। वह कोटा राज्य के विभिन्न परगनों से मामलात (राजस्व) एकत्र किया करता था तथा निश्चित अनुपात में चारों मरहठे सरदारों को भेज देता था। राज्य की छोटी-बड़ी घटनाओं का कोटा भी वह मरहठों के पास भेजता रहता था। इसको ३८,००० रु० वार्षिक वेतन मिलता था। इन्द्रगढ़, पीपल्दा आदि कोटरियों की मामलात इसी वकील के द्वारा वसूल होती थी। कोटरियात के सरदारों व मरहठों के बीच काफी झगड़े होते रहते थे। ऐसे समय में मरहठे कोटा से सहायता माँगा करते थे। कोटा नरेश की इच्छा न होते हुए भी सहायता देनी पड़ती थी।

वकील के नीचे दीवान रहता था जिसका मुख्य काम राजस्व की वसूली करना था। नरहरे सरदारों ने वकील की मातहत अपने कमविस्दार नियत कर

---

१ डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ४७६। यह विजय सम्वत १८३६ चैत्र सुदि ६ को हुई थी।

२ उपरोक्त : पृ० ४८०। पिडारियों के नेता करीमखां व मीरखां से सन्धि भी की गई। उपरोक्त पृ० ४८२; टाड : राजस्थान, तृतीय भाग, पृ० १५७४।

३ जालिमसिंह की विदेश नीति का उद्देश्य शक्ति-संतुलन का वातावरण तैयार करना था। प्रत्येक विदेशी शक्ति के साथ अच्छे संबंध बनाये रखना तथा कोटा का प्रभुत्व स्थापित करना था जिससे कोटा जिस शक्ति को सहयोग दे उसकी ताकत बढ जाये।

४ सिंधिया को पंचमहल और होल्कर को डीग, पीड़ावा आदि के परगने पेशवा के प्रभाव में थे जो बाद में अंग्रेजी विजय के उपरान्त कोटा को दिये गये थे।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

रखते थे। प्रत्येक परगने पर एक कमविसदार नियत था। ये वर्तमान तहसीलदार की भाँति थे। मराठों की नीति खूब मामलात वसूल करने की थी, शासन-संचालन की ओर कम ही ध्यान दिया जाता था। यह सब कुछ होते हुए भी मरहठे सरदार जब तक कोटा पर आक्रमण कर देते थे। वे ज्यादातर वसूली के लिये ही इधर आते थे। इनको साम और दाम द्वारा वापस किया जाता था। जालिमसिंह जानता था कि इनका सामना करना कतई हितकर नहीं है। अतः वि०सं० १८३४ में जीवाजी अप्पा को, सं० १८४१ में नरहरराव को, सं० १८४२ में खांडेराव को, नकदी देकर कोटा को मरहठों के आक्रमण से बचाया गया[1]। जालिमसिंह तुकोजी होल्कर की भी बड़ी खुशामद करता था। वि० सं० १८३६ में उसके पुत्र के विवाह पर कोटा की ओर से ७००० न्योते के भेजे गये। कोटा राज्य यों प्रति वर्ष कई लाख रु. का कर मरहठों को देता था। यह कर सिंधिया का वकील वसूल कर के भेजता था। यह कर आपसी करार से मरहठे परस्पर बाँट लेते थे[2]।

इस समय अंग्रेज राजस्थान की ओर बढने का विचार कर रहे थे[3]। अब तक राजस्थान व पंजाब ही अंग्रेजों के अधिकार से बचे हुए थे। वि०सं० १८६१को अंग्रेजी सेना ने प्रथम बार कोटा में प्रवेश किया[4]। यह सेना कर्नल मानसन की अधीनता में होल्कर के विरुद्ध लड़ने के लिये कोटा राज्य में से होकर निकली। जालिमसिंह ने इस सेना को सहायता के लिये राज्य को सेना भी पलायथे के आपा अमरसिंह के नेतृत्व में भेजी।

यह सेना पहले होल्कर के राज्य में घुस गई। होल्कर ने कहीं सामना नहीं किया। होल्कर अपनी बड़ी सेना की सहायता से अंग्रेज सेना को घेरना चाहता

---

१ डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ४८३ से ४८५।

२ यह विभाजन इस प्रकार होता था—सिंधिया व होल्कर का हिस्सा बराबर रहता था तथा बचा हुआ पँवार, पेशवा व रामचन्द्र पंडित में बांटा जाता था।

३ १८०३ ई० तक अंग्रेजों ने दक्षिणी भारत तथा पूर्वी भारत पर अधिकार स्थापित कर लिया था। १८०३ में सिंधिया हार गया। १८०४ में होल्कर-अंग्रेज युद्ध चल रहा था। सिंधिया व होल्कर से पीड़ित राजपूतों के राज्यों से सहायता की आशा अंग्रेजों ने की थी अतः इसी दृष्टिकोण से उन्होंने राजपूताने की ओर कदम बढाया पर वास्तव में उनका साम्राज्यवादी दृष्टिकोण इससे प्रकट होता है। कोटा होल्कर के राज्य के पास था, अतः होल्कर से युद्धकाल में पहली बार राजपूत शासकों से मुलाकात की।

४ डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, पृ० ४८६ व ४६०।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

था। जब मानसन को यह ज्ञात हुआ तो वह कोटा राज्य की सीमा में वापस चला आया। और मुकुन्दरा की नाल में शरण ली। यों मानसन अपनी कुछ सेना तथा कोटा की सेना को होल्कर को रोकने के लिये पीछे छोड़ आया था। इस सेना ने पीपल्या नामक स्थान पर होल्कर की सेना का मुकाबला किया। इस लड़ाई में कोटा की काफी बड़ी सेना मारी गई। आपा अमरसिंह भी मारा गया। लेकिन इससे......सेना बच गई। अंग्रेज सेना का कप्तान लुकन भी मारा गया[1]। इधर मानसन मुकन्दरा की घाटी होता हुआ कोटा नगर पहुँचा। उसने कोटा में शरण लेने का विचार किया लेकिन जालिमसिंह ने उसे घुसने नहीं दिया। उसने उसे सैनिक सहायता देने का अवश्य आश्वासन दिया था[2]। मानसन घबराया हुआ था। अतः उसने होल्कर का सामना न कर दिल्ली की ओर भागना ही उचित समझा। रास्ते में उसके कई सैनिक मर गये। कई छोड़ कर चले गये। अन्त में दिल्ली पहुँच कर उसने अपनी हार का मुख्य कारण जालिमसिंह द्वारा सहायता न देना बताया जो पूर्णतया असत्य था। सत्य यह था कि कोटा की सेना के कारण ही वह बच पाया था।

होल्कर कोटा राज्य द्वारा अंग्रेजों की सहायता करना सहन नहीं कर सका। अतः उसने कोटा पर आक्रमण कर दिया। जालिमसिंह ने सेना का सामना करना उचित नहीं समझा, अतः संधि की बातचीत आरम्भ की। दोनों सरदारों ने आपस में मिल कर समझौता करने के लिये चम्बल नदी के बीच में मिलना तय किया। कोटा के गढ के नीचे चम्बल में दोनों सरदार मिले। होल्कर ने पीपल्या युद्ध की शर्त के १० लाख रु० माँगे। परन्तु अंत में जालिमसिंह ने होल्कर को ३ लाख रु० देकर ही विदा किया[3]। वास्तविकता यह थी कि होल्कर जालिमसिंह से मित्रता बनाये रखना चाहता था। वह उसकी मित्रता में ही अपना हित समझता था। होल्कर को यह आशा थी कि वह उसकी थोड़ी बहुत मदद करता ही रहेगा। इसके कुछ समय बाद ही वि० सं० १८७४ (ई०स० १८१७) में होल्कर डींग की लड़ाई में बुरी तरह परास्त हुआ। होल्कर की शक्ति पूर्णतया समाप्त हो गई। तब से राजपूताने में होल्कर का प्रभाव कम होने लगा। यहाँ तक कि जयपुर व जोधपुर वाले तो उससे लड़ने तक को तैयार हो गये। लेकिन जालिमसिंह ने फिर भी होल्कर से अच्छा व्यवहार किया।

१ टाड : राजस्थान, भाग ३, पृ० १५७३। होल्कर को सिर्फ ३ लाख रु. प्राप्त हुए। ७ लाख के लिये वह जालिमसिंह को याद दिलाता रहता था पर उसे प्राप्त नहीं हुए।

२ टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५७१।

३ टाड : राजस्थान, भाग ३, पृ० १५७३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

उदयपुर के प्रति नीति—जालिमसिंह ने सिंधिया के विरुद्ध मेवाड़ को सहायता दी थी[1]। कोटा व मेवाड़ की संयुक्त सेना ने मरहठों को मेवाड़ से बाहर निकाल दिया। मरहठों के आने के बाद ही मेवाड़ को शक्तिशालो पक्षों, चूड़ावतों व शक्तावतों के बीच मनमुटाव हो गया था। महाराणा चूड़ावतों से परेशान था अतः उसने जालिमसिंह से सहायता मांगी। जालिमसिंह ने वापस सिंधिया से मित्रता कर चूड़ावतों को हराया। बाद में महाराणा तथा महादाजी सिंधिया आपस में मिले[2]। महाराणा, महादाजी सिंधिया तथा जालिमसिंह के प्रयत्न से चूड़ावतों को आत्मसमर्पण करना पड़ा। जालिमसिंह इसके बाद कोटा वापस चला आया। जालिमसिंह के मेवाड़ जाने का मुख्य ध्येय मेवाड़ में अपनी धाक जमाना था लेकिन इसमें उसे पूर्ण सफलता नहीं मिली।

जालिमसिंह के मेवाड़ से लौटते ही माधवराव सिंधिया के प्रतिनिधि अप्पाजी इंग्लिया, जो जालिमसिंह का घनिष्ठ मित्र था, के महाराणा विरुद्ध हो गये[3]। महाराणा ने चूड़ावतों से मेल कर लिया। इस पर जालिमसिंह स्वयं सेना लेकर उदयपुर गया। तेजा घाटी के पास महाराणा व जालिमसिंह के बीच युद्ध हुआ। महाराणा ने संधि करली। महाराणा ने फौज-खर्च में जालिमसिंह को जहाजपुर का किला और परगना दिया।[4]

---

१ देखो यही पुस्तक पृ०......महाराव गुमानसिंह के काल में जालिमसिंह मेवाड़ चला गया। वहाँ उसे 'राजराणा' की पदवी प्राप्त हुई। जबसिंह महाराणा अरिसिंह के विरुद्ध राजा रत्नसिंह ने सिंधिया की सहायता लेकर उदयपुर पर आक्रमण किया तो जालिमसिंह ने अरिसिंह का साथ दिया था। युद्ध में घायल होकर वह गिरफ्तार हो चुका था।...अम्बाइग्ले द्वारा वह छड़ाया गया। वह पुनः कोटा लौट आया और होल्कर के विरुद्ध महाराव गुमानसिंह से सहायता लेकर पुनः शक्तिशाली हो गया।

२ धीरजसिह चूड़ावत से हमीरगढ लेकर जालिमसिंह और अब्बाजी इग्लिया चित्तोड़ का घेरा डालने आगे बढा। चित्तोड़ के पास सिंधिया स्वयं आकर इससे मिल गया। जालिमसिंह के प्रयत्नों से सिंधिया-महाराणा मुलाकात·······(उदयपुर से १२ मील दूर) पर हुई और चूड़ावतों को चित्तोड़ से बाहर निकालने का समझौता हो गया। ओझा : राजपूताने का इतिहास, भाग ४, पृ० ९९०-९१।

३ अब्बाजी इग्लिया सिंधिया की ओर से राजपूताने में मरहठों का प्रतिनिधि था। चूड़ावतों की शक्ति समाप्त हो जाने पर अब्बाजी ने भीमसिंह चूड़ावत से मित्रता करली जो न राणाजी को व न जालिमसिंह को पसंद थी। महादाजी ने लकवा दादा को अम्बाजी के स्थान पर नियुक्त किया पर अम्बाजी का प्रतिनिधि गणेश पन्त यह पद छोड़ने के लिये तैयार न था। लकवा दादा व गणेश पन्त लड़ पड़े। महाराणा ने भी अब्बाजो का साथ छोड़ दिया।

४ वीरविनोद, भाग २, प्रकरण २५; ......ओझा : राजपूताने का इतिहास, भाग ४, पृ० १००३; वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० ३९१२, जालिमसिंह के कथनानुसार महाराणा ने

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जालिमसिंह ने महाराणा को व्यक्तिगत खर्च तथा मरहठों को खण्डणी आदि देने के लिये लगभग ७१ लाख उधार दिये थे। इस कर्ज के बदले में मेवाड़ के कई परगने कोटा राज्य में मिला लिये गये। इन परगनों की आमदनी कोटा राज्य में जमा होती थी, ये परगने वि० सं० १८७१ तक कोटा के अधीन रहे। बाद में कर्नल टाड के प्रयत्नों से ये परगने वापस मेवाड़ राज्य को दे दिये गये।

बून्दी के प्रति नीति—जालिमसिंह सब नरेशों के साथ मैत्री रखना चाहता था। बून्दी और कोटा के बीच काफी समय से वैमनस्य चला आ रहा था। जालिमसिंह ने बून्दी से मेल करना चाहा। इस कारण सबसे पहले उसने अपनी पुत्री का विवाह बून्दी नरेश के साथ कर दिया। बून्दी राज्य के प्रधान मंत्री धाभाई सुखराम से जब वह पाटण दर्शनार्थ गया तब बड़े प्रेम से मिला व शानदार आवभगत की। बाद में अगहन कृष्णा द्वितीया वि० सं० १८३१ के दिन दोनों ने श्री केशवरामजी की साक्षी करके परस्पर मित्रता की शपथ ली[1]। बाद में उसे अपने साथ कोटा लाया जहाँ उसका बड़ा आदर-सत्कार किया गया। स्वयं महाराव ने उसे सरपेंच, सिरोपाव, तथा घोड़ा भेंट किया। सुखराम जब वापस बूंदी लोटा तब उसके साथ गैता के महाराजा नाथसिंह और बालाजी यशवन्त गये। और वहाँ दो घोड़े, दो सिरोपाव, एक हाथी और एक बहुमूल्य आभूषण बूंदी नरेश को भेंट किये। बूंदी नरेश ने भी दोनों सरदारों को एक एक सिरोपाव और घोड़ा देकर रवाना किया। इस प्रकार जालिमसिंह की चतुराई से दोनों नरेशों का पारस्परिक द्वेष समाप्त हो गया।

अंग्रेजो के प्रति नीतिः—जालिमसिंह अंग्रेजों की उतरोत्तर वृद्धि को बड़े ध्यान से देख रहा था। वह समझ गया था कि शीघ्र ही मरहठों का राज्य समाप्त हो जायेगा तथा उनका स्थान अंग्रेज लेलेंगे। यों भी अब तक राजपूताना व पंजाब ही उनके अधिकारों से बचे हुए थे। अतः वह अब अंग्रेजों को विशेष रूप से सहायता देने लगा। वि० सं० १८६१ (ई० स० १८०४) में अंग्रेजी सेना ने कोटा राज्य में प्रथम बार प्रवेश किया। जालिमसिंह ने इस सेना को सहायता के लिये अपनी सेना भी दी। इसका वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं[2]। अंग्रेज इस समय मरहठों की शक्ति समाप्त करने में लगे हुए थे। ऐसे वक्त में अंग्रेजों को जालिमसिंह के सहयोग तथा सहायता की बड़ी आवश्यकता थी।

इंगले के भाई मालेराव को कैद से मुक्त कर दिया और जहाजपुर का हाकिम जालिमसिंह ने विष्णुसिंह शक्तावत को बनाया।

१ वंश भास्कर : चतुर्थ भाग, पृ० ३८२४।

२ यही पुस्तक फुटनोट।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जालिमसिंह ने भी सहायता मांगे जाने पर देने का वायदा किया। कम्पनी की ओर से वायदा किया गया कि चोमहला के परगने, जो कि फिलहाल कम्पनी की ओर से उसे इजारे पर दिए हुए थे। उनको उसे जागीर में दे दिया जायेगा। बाद में जब जालिमसिंह को ये चारों परगने दिये जाने लगे तो उसने अपनी स्वामीभक्ति का परिचय देते हुए कहा कि ये परगने कोटा राज्य में मिलाये जाने चाहिये क्योंकि सहायता कोटा नरेश ने दी है तथा उसने तो केवल कम्पनी की सेवा की है। कम्पनी ने उस पर चारों परगने कोटा राज्य में मिला दिये[1]।

कर्नल टाड ने जब जालिमसिंह से कम्पनी की पिण्डारियों को दमन करने की योजना बताई तथा सहायता मांगी तबभी उसने सहायता देना स्वीकार किया यों जालिमसिंह ने ही पिण्डारियों को अपने राज्य में शरण दे रखी थी। लेकिन वह अब क्या करता? कर्नल टाड ने भी उसे स्पष्ट रूप से कह दिया कि कम्पनी पिंडारियों का दमन देश में शाँति स्थापित करने के लिये कर रही है। राज्य-विस्तार के लिये नहीं कर रही है। तब जालिमसिंह ने वापस उत्तर दिया—"मैं जानता हूँ कि १० वर्ष बाद सम्पूर्ण भारत में कम्पनी का ही राज्य हो जाना है[2]।" पिंडारियों के दमन के लिये जालिमसिंह ने अंग्रेजों को १५०० पैदल, तथा सगर और चार तोपें कम्पनी को सुपुर्द की। १८१७ ई० में पिंडारी समाप्त कर दिये गये। पिंडारियों को कुचलने के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने मरहठों की शक्ति को समाप्त कर दिया। जालिमसिंह ने कोटा और अंग्रेजों के बीच में २६ दिसम्बर सन् १८१७ को संधि कराई थी। इसकी निम्नलिखित शर्तें थीं।

(१) अंग्रेजी सरकार और महाराव उम्मेदसिंह तथा उसके उत्तराधिकारियों केबीच में मित्रता के संबंध और हितसमता रहेगी।

(२) दोनों पक्षों में से एक पक्ष के शत्रु और मित्र दूसरे पक्ष के शत्रु और मित्र माने जायेंगे।

(३) अंग्रेजी सरकार कोटा राज्य को अपने संरक्षण में लेना कबूल करती है।

(४) महाराव और उसके उत्तराधिकारी अंग्रेजी सरकार के साथ मातहत रहते हुए सदा सहयोग करेंगे। तथा उसके आधिपत्य को मानेंगे और भविष्य में

---

१ टाड: राजस्थान, तीसरी जिल्द, पृ० १५८१ ये चार परगने जब जालिमसिंह के वंशजों को नया राज्य दिया गया तो वे परगने झालावाड़ राज्य में मिला दिये गये।

२ उपरोक्त, पृ० १५८०।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

उन राजाओं और रियासतों से कोई संबंध नहीं रखेंगे जिनके साथ अब तक कोटा राज्य का संबंध रहा है।

(५) अंग्रेज सरकार की अनुमति के बिना महाराव और उसके उत्तराधिकारी किसी राणा या रियासत के साथ किसी प्रकार की शर्तें तय नहीं करेंगे।

(६) महाराव और उसके उत्तराधिकारी किसी राज्य पर आक्रमण नहीं करेंगे। यदि महाराव को युद्ध की स्थिति में प्रवेश करना पड़ेगा तो अंग्रेज सरकार के परामर्श से ही ऐसा हो सकता है।

(७) कोटा राज्य जो कर अब तक मरहठों को देता था वह अंग्रेज सरकार को देगा।

(८) कोटा राज्य अन्य किसी राज्य को कर नहीं देगा। यदि कोई ऐसा अधिकार प्रस्तुत करेगा तो अंग्रेज सरकार उसका उत्तर देगी।

(९) आवश्यकता पड़ने पर कोटा राज्य अंग्रेजी सरकार को सैनिक सहायता देगा।

(१०) महाराव और उसके उत्तराधिकारी पूर्ण रूप से अपने राज्य के शासक रहेंगे। उसके राज्य में अंग्रेज सरकार का दीवानी या फौजदारी अमत जारी नहीं किया जायेगा[१]।

इस संधि के तीन माह बाद मार्च १८१८ में उपरोक्त संधि में २ शर्तें और बढा दी गईं।

(१) महाराव उम्मेदसिंह और उसके उत्तराधिकारी कोटा के राजा माने गये।

(२) जालिमसिंह और उसके वंशज सम्पूर्ण अधिकार-सम्पन्न राज्य मंत्री बने रहेंगे[२]।

जालिमसिंह के सुधारः—जालिमसिंह ने कोटा राज्य का प्रसार किया। उदयपुर से कई परगने प्राप्त किये। इन्द्रगढ, खातोली, करवाड़, गैता आदि

---

१ टाड : राजस्थान : भाग ३, पृ० १८३३, परिशिष्ट ६।

एचिशन : ट्रिटीज सनद एण्ड एनगेजमेंट भाग ३, पृ० ३५७।

२ जालिमसिंह के साथ यह अलग सन्धि हुई। उपरोक्त पृ० ३६१। कोटा के महाराज ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ सन्धि कर राजपूताने को अंग्रेजी प्रदेश में सहूलियत स्थापित करदी। बाद में धीरे २ राजपूताने के सब शासकों ने मरहठों से मुक्ति प्राप्त करने के लिये ठीक इसी प्रकार की संधियां कीं। अंग्रेजी सार्वभौमिकता ने धीरे २ इन शासकों को नपुंसक बना दिया। जालिमसिंह का यह कार्य कोटा के लिये कितना लाभप्रद हो सकेगा इसका प्रमाण तो उम्मेदसिंह की मृत्यु के बाद राज्य उत्तराधिकार का युद्ध है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

उसके अधीन रहे। पाटणी खिलचीपुर मरहठों को न लेने दिया। इतना बड़ा राज्य का संगठन उनकी सैनिक व्यवस्था पर आधारित था।

सैनिक व्यवस्था—वह हाड़ा जागीरदारों को और यथासंभव किसी भी राजपूत सरदार को सेनापति नहीं बनाता था। सेना का संचालन या प्रबंध मुसलमान या कायस्थों को सौंपा जाता था। प्रधान सेनानायक दलेलखां पठान था। मुख्यपद भी पठाणों को सौंपे गये। उसकी सेना में २०,००० सैनिक थे व १०० से अधिक तोपें थीं जो आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजी जा सकती थीं घुड़सवार व पैदल उसकी सेना के मुख्य अंग थे। उसकी सेना के अलावा रण क्षेत्रों में जागीरदारों की सेना का भी प्रयोग किया जाता था। अंग्रेजों से मित्रता होने पर अपने यहाँ २ अंग्रेज सैनिक अफसर रखे तथा पश्चिमी ढंग से सैनिक कवायद तथा शिक्षा देनी शुरू की। राज्य में नये किले बनवाये गये। पुराने किलों की मरम्मत की गई। कोटा नगर का शहर पनाह सं० १८३६ में सुरक्षा के लिये बनवाया गया। मुख्य किलों को—जागरोण, नाहरगढ़, केलवाड़ा, शाहाबाद आदि, सैनिक दृष्टि से सुरक्षित किया गया। प्रत्येक किले में नयी तोपें व बारूद, खाना तथा सुरक्षित (Reserve) सेना रखी गई। सं०१ ८५६ (१८०० ई०) के बाद उनकी खोज का मुख्य केन्द्र छावनी था जो गगरो व किले के पास थी[1] भूमि कर प्रबंध सुधार[2] । लगातार युद्धों के कारण तथा सैनिक नवसंगठन से कोटा राज्य का कोष खाली होने लगा। राज्य की आय मरहठों को मामलात के रूप में देनी पड़ती थी तब ही राज्य में शाँति रह सकती थी। अतः आय वृद्धि के लिये जालिमसिंह ने भूमि कर सुधार किये। सर्व प्रथम जालिमसिंह ने पटेल-व्यवस्था में सुधार किये। पटेल, राज्य व जनता के बीचमें संस्था के रूप में कार्य करते थे। प्रजा से अधिक कर वसूल किया जाता था। अत्याचार और अनाचार के वे प्रतीक थे। राज्य की आय को वे कम बतलाते थे। बाकी धन वे स्वयं हड़प जाते थे। प्रति तीसरे वर्ष एक कर पटेलों से लिया जाता था जिसे बराड़ कहा जाता था। पटेल यह कर भी जनता से वसूल करते थे। जालिमसिंह ने पहली घोषणा तो यह की कि जो पटेल राज्य को बराबर उसका हिस्सा देंगे, उनसे बराड़ नहीं लिया जायेगा। पटेलों की रसूम नियत करदी। राज्य के सब पटेलों को एकत्र किया गया और उन्हें पटेली के पट्टे दिये गये। यह पटेलों की एक संस्था बन गई। सब पटेलों में से ४ सबसे योग्य

१ टाड : राजस्थान, जिल्द तीन, पृ० १५४९-५०।

२ उपरोक्त : पृ० १५५०-१५६७।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पटेल छाँटे गये। उनकी एक समिति बनाई गई जिसका अध्यक्ष स्वयं जालिमसिंह था। इसका कार्य मालगुजारी वसूल करना तथा जमीन को आबाद रखना था। बाद में इस समिति को गाँव का पुलिस कार्य भी सोंप दिया गया तथा गाँव की पंचायतों से असंतुष्ट व्यक्तियों की अपील पर निर्णय करना भी इसका काम रखा गया। गाँव के पटेल पर गाँव की शाँति, न्याय तथा मालगुजारी का कार्य सौंपा गया। इसके अलावा गाँव का पटेल विदेशियों के प्रवेश व चाल-चलन पर भी निगरानी रखता था। इन पटेलों व पटेल समिति पर नियंत्रण रखने के लिये उसने कठोर गुप्तचर व्यवस्था का संगठन किया।

भूमि की पैदाइश—पटेल सम्मेलन के समय जालिमसिंह ने तत्कालीन भूमि-व्यवस्था की पूर्ण रिपोर्ट प्राप्त की। कर कैसे वसूल किया जाता है? कितना? कब? भमि कैसी है? खेती में क्या बोया जाता है? यह सूचना प्राप्त करने के बाद उसने जमीन को नपवाया। जमीन की चकबंदी की गई। उसको तीन भागों में विभक्त किया गया। पीवत, गौरमा और मौमभी। इसके अनुसार लगान निश्चित किया गया। साथ ही घोषणा की गई कि लगान नकद लिया जायेगा। पटेल की वसूली प्रति बीघा डेढ आना की गई। इससे राजकीय आय बढने लगी[१]।

कर व्यवस्था—जालिमसिंह के इन सुधारों से कृषक वर्ग को कष्ट से छुटकारा प्राप्त हो गया हो, ऐसी बात तो नहीं है। पटेलों के पास कुछ ताकतें ऐसी थीं जिससे वे खेत काटने से पहले धन प्राप्त कर सकते थे। इस अवस्था में किसान उधार रुपया लेकर पटेल को प्रसन्न रखता था। कभी उपज का कुछ भाग पहले ही पटेल का हो जाता था। क्योंकि पटेल ही किसान को रुपये उधार देता था। अतः जालिमसिंह ने पटेल-व्यवस्था का ही अन्त करने का निश्चय कर लिया। सं० १८६७ (ई०स० १८१०) में सब बड़े २ पटेल राज्य द्वारा गिरफ्तार कर लिये गये। उनकी सम्पति पर राज्य का अधिकार कर लिया गया। जमीनों पर राज्य के हवाले स्थापित किये गये। राज्य का हिस्सा सख्ती से वसूल किया जाता था। जो किसान विलम्ब करता उसकी जमीन खालसा करली जाती थी। राज्य की ओर से खेती होने लगी। सन् १८२०-२ में राज्य के द्वारा संचालित ४ लाख बीघा जमोन थी और १६ हजार बैल थे। बैलों की खरोद व बिक्री के लिये नये २ मेले व उत्सव आयोजित किये गये। उपज बढने लगी। प्रति वर्ष

१ ४००० हल ४,००,००० बीघा भूमि जोतते थे। और दूसरी फसल में भी इतनी ही भूमि जोती जाती थी। प्रति बीघा ४ मण अनाज पैदा होता था। इस प्रकार ३२ लाख मण अनाज पैदा होता था। टाड: पृ० १५६२।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

३२ लाख मरण अन्न पैदा होने लगा। अन्न बेचने का अधिकार भी राज्य को था। दुर्भिक्ष के समय कोठारों में भरे हुए अन्न को मंहगे भावों पर बेचा जाता था। किसानों और व्यापारियों को व्यक्तिगत रूप से अन्न बेचने पर एक प्रकार का कर देना पड़ता था जिसे लट्टा कहते हैं। सीगोंटी, बोघोटी, घाणी, नापो, छापो, बेसक, कंवरमट आदि कर तो परम्परा से ही चले आ रहे थे। जालिमसिंह द्वारा लगाये गये नये करों में विधग, बगड़, तूम्बा, बराड़, झाड़ बराड़, चूल्हा बराड़, कागली, कूलड़ी, जागीरदार आदि थे। इनके अतिरिक्त पटेलों, बोहरों व व्यापारियों की आय से तिसाला दण्ड के रूप में कर लिया जाता था। इन करों को किस प्रकार एकत्र किया जाता था, इनका हिसाब खाता व खर्च का बंटवारा कैसे होता था, यह स्पष्ट ज्ञात नहीं है।

आर्थिक मेलों की व्यवस्था—अधिक कर लेने की प्रथा के कारण अशांति फैलने लगी और सं० १८८० से १८८५ में राज्य के विरुद्ध कई विद्रोह होने लगे। जालिमसिंह को इस अप्रियता के विरुद्ध कर-मुक्ति की नीति अपनानी पड़ी। पटेल व पटवारियों को जनता से सद्व्यवहार करने की हिदायत दी गई। इसका आर्थिक स्थिति पर असर पड़ा। जुवार का भाव वि० सं० १८३८ में साढे तीन रु० मण था। धान अधिक तो था पर लोगों के पास खरीदने को पैसे नहीं थे। राज्य का कोष मरहठों व लगातार युद्धों के कारण खाली हो रहा था। मरहठों को धन देने के लिये व्यापारियों से ब्याज पर ऋण लेना पड़ता था। आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये जालिमसिंह ने पशुओं व साधारण व्यापार के मेले प्रारम्भ किये। विशेषकर उम्मेदगंग और नांता का बृजनाथजी का मेला व झालरापाटन का मेला प्रारम्भ किया। इन मेलों में आने वाली वस्तुओं पर कर नहीं लिया जाता था। दूर-दूर से व्यपारियों को आने का निमन्त्रण दिया जाता था। अपने आदमियों को डाक द्वारा सूचना भेजी जाती थी। यह काम सेठ किशनदास हल्दिया किया करता था।

उम्मेदसिंह का देहान्त—महाराव उम्मेदसिंह ५० वर्ष तक राज्य करके सं० १८१७ के मार्गशीर्ष शुक्ला २ शनिवार (ई० स० १८१९ की २१ नवम्बर) को एकाएक रामशरण हो गये। उस समय मुसाहिब जालिमसिंह झाला झालरापाटण की छावनी में रहता था। महाराव की मृत्यु सुन कर वह तुरन्त कोटा गया और कर्नल टाड को महाराव के देहान्त की सूचना देते हुए यह पत्र लिखा कि "महाराव उम्मेदसिंह शनिवार की शाम तक पूर्णरूप से स्वस्थ थे, सूर्यास्त के बाद श्रीबृजनाथजी के मन्दिर में गये और छः बार दण्डवत की। सातवीं बार दण्डवत करने के लिये झुकते ही उनको मूर्छा आ गई और उसी दशा में रात को दो बजे

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

उनका देहान्त हो गया। यहाँ उनके जेष्ठ राजकुमार किशोरसिंह को गद्दी पर बैठा कर आपको मित्रता के नाते यह सूचना दी है[1]। महाराव उम्मेदसिंह के किशोरसिंह, विष्णुसिंह और पृथ्वीसिंह नाम के ३ पुत्र थे।

महाराव किशोरसिंह दूसरा (वि० सं० १८७६-१८८४)

इसका जन्म वि० सं० १८३६ (ई० स० १७८१) में हुआ था। गद्दी पर बैठने के समय इसकी अवस्था ४० वर्ष की थी[2]। सम्वत् १८७६ मार्गशीर्ष सुदि १४ को इसका राज्याशिषेक हुआ। इसके समय में मुसाहिबआला का पद जालिमसिंह झाला को ही दिया गया था। अंग्रेजी सरकार की गुप्त संधि के अनुसार[3] यह पद झाला वंश का पैतृक हो गया था। जालिमसिंह कोटा राज्य का सर्वेसर्वा था। वृद्धावस्था में इसकी नजर अति कमजोर हो गई थी। अतः इसने अपने पुत्र कुंवर माधोसिंह झाला को मुसाहिब बना दिया था तथा स्वयं छावनी में रहने लगा था। फिर भी बिना उसकी सलाह से कोई निर्णय या नीति राज्य निश्चित नहीं करता था। महाराव किशोरसिंहजी जालिमसिंह के प्रभाव से मुक्त होकर स्वयं शासक के रूप में राज्य करना चाहता था। परन्तु जालिमसिंह का समर्थक अंग्रेजी सरकार का राजदूत कर्नल टाड था जो कि कोटा-अंग्रेज-संधि के अनुसार जालिमसिंह की स्थिति बनाए रखना चाहता था।

जालिमसिंह के दो पुत्र थे। एक माधोसिंह और दूसरा औरस पुत्र गोवर्धन दास। था माधोसिंह कुछ गर्विला और राजमद में छका हुआ था। उसके और गोवर्धनदास के बीच में अनबन थी[4]। इससे गोर्वधनदास महाराव से जा मिला।

---

१ कर्नल टाड की यह सूचना उस समय प्राप्त हुई जब वह मारवाड़ से मेवाड़ जा रहा था। उदयपुर कुछ दिन ठहर कर वह कोटा पहुँचा जहाँ गद्दी के लिये युद्ध की संभावना थी। टाड : राजस्थान, तृतीय भाग, पृ० १५८५ व फुटनोट में पत्र का उल्लेख है।

२ राजकुमार के रूप में किशोरसिंह अधिक उदार प्रवृत्ति का था। अधिकतर समय इसका एकान्त में बीतने के कारण धार्मिक प्रवृत्ति अधिक थी। अपने कुटुम्ब पर इसे गर्व था जिसे जागृत करने पर यह जालिमसिंह से लड़ पड़ा।

३ २१ मार्च १८१८।

४ गोवर्धनदास तथा पृथ्वीसिंह (महाराव किशोरसिंह का छोटा भाई) में घनिष्टता थी जिसे माधोसिंह पसन्द नहीं करता था। एक बार माधोसिंह ने गोवर्धनदास को गिरफ्तार करके हवालात में भी रखवा दिया था जिससे दोनों भाइयों की शत्रुता बढ़ गई। टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५८४।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

महाराव का दूसरा भाई विष्णुसिंह तो जालिमसिंह से मिल चुका था और सबसे छोटा भाई पृथ्वीसिंह महाराव की तरफ रहा। उस समय महाराव ने[१] एक खलीता पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल टाड को लिख भेजा कि जब अहमदनामे में यह शर्त है कि महाराव और उसके वंशधर उत्तराधिकारी अपने मुल्क के पूरे मालिक होंगे, फिर उसके विरुद्ध कार्यवाही क्यों होती है[२] ? इस पत्र ने अग्नि में आहुति का काम किया और विरोध अधिक बढ़ गया। तब कर्नल टाड, जो जालिमसिंह झाला का मित्र था कोटा आया[३]। उसने महाराव को समझाने का प्रयत्न किया तथा गोवर्धनदास व महाराज पृथ्वीसिंह को कोटा से निकाल देने की सलाह दी। मगर उन्होंने एक न मानी। बात यहाँ तक बढ़ गई कि गोवर्धनदास ने गुस्से में आकर तलवार की मूठ पर हाथ डाला कि कर्नल टाड ने शान्ति और भेष द्वारा काम समाप्त करने का सोचा। टाड के इस व्यवहार को युद्ध का सन्देश समझा गया। महाराव और उनके साथी तो किले में घुस कर सामना करने की तैयारी करने लगे। कर्नल टाड को जालिमसिंह के अधिकार सुरक्षित करने थे। उसने किले का घेरा डलवा दिया। तंग आकर महाराव अपने ५०० साथियों सहित ब्रजनाथ की मूर्ति लेकर नक्कारा बजाते हुए फौज के बीच में से होकर निकल चला गया[४]। जब इसका पता टाड को लगा तो उसे भय हुआ कि महाराव किले के बाहर रह कर फिसाद करेगा। उसने जालिमसिंह से सलाह ली जालिमसिंह ने अपनी स्वामी भक्ति का परिचय देते हुए महाराव को लौटा लेने तथा उसको पुनः किले में रखने की कोशिश की[५]। माधोसिंह का दृष्टिकोण महाराव की ओर अधिक

---

१ महाराव यद्यपि शान्त प्रवृत्ति का था पर उसका भाई पृथ्वीसिंह तथा गोवर्धनदास महाराव को व कोटा की जनता को जालिमसिंह व माधोसिंह के निरंकुश अत्याचारी शासन से युद्ध करना चाहते थे। अतः उन्होंने महाराव को स्वतन्त्र रूप से शासन करने की सलाह दी।

२ वास्तव में संघर्ष मार्च १८१८ की संधि को मान्यता न देने का था जो कि महाराव को मालूम नहीं थी।

३ खलीते के उत्तर में लिखा "महाराव नाम मात्र के शासक हैं······कोटा राज्य का वास्तविक शासक जालिमसिंह है न कि महाराव···।" टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृ. १५९०।

४ टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५९०।

५ "वह अपने स्वामी के चरणों की सेवा में रहना चाहता है। वह नाथद्वारा जाकर भगवद् भजन करना पसन्द करेगा न कि मालिक के साथ विद्रोह करके अपना मुंह काला करेगा"। जालिमसिंह। टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५९१।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

झलकता था[१]। कर्नल टाड घोड़े पर सवार होकर उस तरफ चला जिधर महाराव गया हुआ था। महाराव ने रंगवाड़ी में अपना डेरा स्थापित किया था। बिना सूचना दिये कर्नल टाड रंगवाड़ी जा पहुँचा। उस समय महाराव के साथ सलाहकार के रूप में गोवर्धनदास झाला तथा महाराज पृथ्वीसिंह थे। कर्नल टाड ने यह स्पष्ट किया कि अंग्रेजी सरकार आपकी इज्जत और मर्तब का बहुत ख्याल रखती है परन्तु १८१८ ई० की कोटा-अंग्रेज सन्धि में जालिमसिंह के प्रति जो शर्तें हो चुकी हैं वे किसी दशा में रद्द नहीं की जा सकती हैं। महाराव और जालिमसिंह के इस झगड़े को सुलह में परिवर्तित करने में कर्नल टाड का मुख्य हाथ था। अपने सलाहकारों की राय न होते हुए भी महाराव टाड के साथ पुनः किले में चले गये। जालिमसिंह ने चरण छूकर नजर दी और माधोसिंह झाला ने तलवार बाँधने की रस्म अदा कर नजर न्यौछावर की[२]। गोधर्नदास को पेन्शन देकर सदा के लिये कोटा से निर्वासित कर उसे देहली भेज दिया[३]।

यह शान्ति अल्पकालीन ही रही। सम्वत् १८७७ (ई० स० १८२०) में राज्य की सेना के कुछ अधिकारियों से मिल कर महाराव ने किले पर पूर्ण अधिकार स्थापित कर लिया[४]। उस वक्त जालिमसिंह ने किला घेर कर गोले चलाने आरम्भ किये। महाराव किला छोड़ कर कोटे से बिना सवारी और बिना नौकरों के पैदल ही अपने भाई पृथ्वीसिंह सहित पोष वदि ३ (ता. २२ दिसम्बर १८२०) को बून्दी चले गये। वहां रावराजा विष्णुसिंह ने पहिले तो उनका बड़ा आदर-सत्कार किया परन्तु जालिमसिंह के दबाव व अंग्रेजी सरकार की

---

१ बातचीत के दौरान में दोनों दल इतने गर्म हो गये कि गोवर्धनदास ने तलवार की मूठ पर हाथ रखा कि कर्नल टाड को ही समाप्त कर दिया जाये पर सरदारों ने बीच-बचाव कर शान्ति की। उपरोक्त

२ किशोरसिंह का दूसरी बार राज्याभिषेक हुआ। कर्नल टाड की उपस्थिति में इस प्रकार अंग्रेजी सरकार ने देशी नरेशों को जब तक शासक स्वीकार करना स्थगित कर दिया जब तक उनका प्रतिनिधि राज्याभिषेक में शरीक न हो। यह परम्परा प्रारम्भ हुई। महाराव ने १०१ मोहरें गवर्नर जनरल को नजर की और गवर्नर जनरल ने एक खिलअत भेजा। टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५६३।

३ उपरोक्त पृ० १५६५।

४ गोवर्धनदास दिल्ली में रहने लगा। थोड़े समय बाद वह झाबूआ शादी करने गया और वहां से वह महाराव को पत्र-व्यवहार करने लगा। एक बार वह पुनः अपने पिता और भाई से बदला लेना चाहता था। इस पर जालिमसिंह ने किले पर निगरानी रखनी शुरू कर दी। महाराव सेफअली से सहायता प्राप्त कर किले में युद्ध की तैयारी करने लगा। टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५६६, वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० ४०२१।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सन्धि के कारण महाराव किशोरसिंह को अधिक दिनों तक शरण न दे सका। महाराव बून्दी से देहली पहुँचा। वहां अंग्रेजी सरकार के उच्चाधिकारियों से मिल कर स्थिति को साफ करवाना चाहा परन्तु वहां पर भी उसे कोई सहारा प्राप्त न हुआ। तब वह मथुरा-वृन्दावन चला गया। महाराव की यह दशा देख कर राजपूताने के कई राजा उससे सहानुभूति रखने लगे[१]।

वृदावन में खर्च से तंग आकर महाराव हाडोती की तरफ १८२१ ई० में रवाना हुआ। हाडोती के बहुत से जागीरदार और हाड़ा सरदार लगभग तीन हजार हाड़ा राजपूतों के साथ महाराव की सहायता के लिये उपस्थित हुए और ये सब सीधे कोटे के किले में प्रविष्ट हुए। १६ सितम्बर १८२१ में महाराव ने पोलिटिकल एजेन्ट को सूचना दी कि मामा जालिमसिंह का तो मुझे भरोसा है। वह अपनी मृत्युपर्यन्त राज्य का काम किया करे, परन्तु माधोसिंह से मेरी नहीं बनती है इसलिये उसको जुदा जागीर देदी जावेगी और उसका पुत्र वापूलाल (मदनसिंह) मेरे साथ रहेगा। सेना तथा खजाना आदि मेरे हाथ में रहेंगे[२]। इस पत्र में लिखी हुई शर्तें कर्नल टाड ने स्वीकार नहीं की। एक बार पुनः किशोरसिंह को अंग्रेजों की पूर्ण मातहत में रहने का और माधोसिंह को जालिम-सिंह के कहने के अनुसार चलने का आदेश दिया गया परन्तु महाराव को जो नई शक्ति राजपूताने के शासकों व हाड़ा सरदारों से प्राप्त हो रही थी उसके आधार पर उसने अपनी स्वतंत्र स्थिति बनाये रखने का प्रयास किया। अंग्रेजों को यह कब सहन हो सकता था। कर्नल टाड ने अंग्रेजी सरकार से फौजें मंगवाईं और जालिमसिंह को साथ लेकर वह कोटा गया। नदी में बाढ आ जाने के कारण कालीसिन्ध के किनारे कई दिन तक उन्हें वहाँ ठहरना पड़ा। इस बीच में कर्नल टाड ने महाराव को पुनः इस बात पर राजी करने को तैयार किया कि जालिमसिंह व माधोसिंह से झगड़ा नहीं किया जावे। महाराव का यही उत्तर मिला, "प्रतिष्ठा बिना जीवन और अधिकार के बिना मालिक कहलाने में कोई महत्व नहीं है। इसलिए मैंने अपने पिता, पितामहों की तरह राज्य करना या मर मिटना ही निश्चय किया है[३]।" उस समय जालिमसिंह ने चाहा कि सरकारी सेना ही महाराव से युद्ध करे और वह स्वयं युद्ध में प्रविष्ट न हो जिससे कोटा नरेश के विरुद्ध हरामखोरी करने का कलंक तो न लगे लेकिन कर्नल टाड ने इस बात

---

१ टाड : जिल्द ३, पृ० १५९७-९८।

२ उपरोक्त, पृ. १५९९ : फुटनोट : यह पत्र किशोरसिंह ने मिती आसोज पंचमी १८७८ १६ सितम्बर १८२२ को लिखा।

३ टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १६०१।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पर अधिक दबाव डाला कि या तो महाराव के प्रति राज्य-भक्ति ही प्रदर्शित हो सकती है या अपने अधिकार ही सुरक्षित रखे जा सकते हैं। जालिमसिंह ने अपने अधिकारों को सुरक्षित बनाए रखना ज्यादा उचित समझा और महाराव के विरुद्ध युद्ध के लिये तैयार हो गया।

महाराव के पास ७-८ हजार सेना ग्रामीण-हाड़ा-राजपूतों की थी पर उनके पास तोपखाने की कमी थी। उधर दीवान जालिमसिंह झाला के पास उसकी आठ पल्टनें, चौदह रिसाले, और ३२ तोपें थीं। इसके अलावा जालिमसिंह की सहायता के लिये दाहिनी तरफ अंग्रेजों की ओर से एम. मिलन की अध्यक्षता में २ पल्टनें, ६ रिसाले और एक बड़ा तोपखाना था। नदी के उस पार महाराव की फोज थी! अंग्रेजी फोज आगे बढी चली गई। इस फोज और महाराव की फोज के बीच सिर्फ २०० गज का फासला रह गया। उस समय भी आगे बढ़ कर कर्नल टाड ने महाराव को सुलह कर लेने के लिये समझाया परन्तु महाराव युद्ध करना अधिक पसंद करते थे। टाड ने पौन घंटे की मोहलत दी। यह समय व्यतीत होने पर युद्ध आरम्भ हुआ[1]। अंग्रेजी तोपें आग उगलने लगीं। महाराव के हाड़ों ने भी अपनी वंश परम्परागत बहादुरी व रण-कौशल का परिचय देना आरम्भ किया। महाराव के साथियों ने हमला करके तोपखाने को छीनना चाहा और कई राजपूत तोपों के मुंह तक पहुँच कर मारे गये। यदि उस समय अंग्रेजी रिसाले का धावा उन पर न होता तो वे अवश्य फोजदार जालिमसिंह झाला को नीचा दिखा देते। परन्तु उनके भाग्य में पराजय लिखी थी। सैकड़ों वीर हाड़ा खेत रहे। महाराव जल्दी से नदी उतर कर ५ कोस दूर जा ठहरे। अंग्रेजी फोज ने पीछा किया और रिसाले का पुनः हमला आरम्भ हुआ। इस बार अंग्रेजी सेनापति को विश्वास हो गया कि महाराव की फोज भाग जावेगी परन्तु राजपूत लोग लोहे की लाट की तरह मैदान में डटे रहे व दुश्मनों को पास आने दिया और फिर एक एक कर उन पर टूट पड़े। इस द्वन्द युद्ध में कोयला के जांगीरदार राजसिंह और गेंता के कुंवर बलभद्रसिंह व सलावतसिंह तथा उसके चाचा दया-नाथ, हरीगढ के चन्द्रावत अमरसिंह और उसके छोटे भाई दुर्जनसाल आदि ने जिस वीरता का प्रदर्शन किया उससे अंग्रेजो फोज के पैर उखड़ने लगे। ठाकुर राजसिंह ने लेफ्टीनेंट क्लार्क और कुंवर बलभद्रसिंह ने लेफ्टीनेंट रीड का काम तमाम कर दिया। उनका बड़ा अफसर लेफ्टीनेंट कर्नल जेरिज युद्ध-क्षेत्र में घायल

---

१ उपरोक्त : पृ० १६०२-३, डा० शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, जिल्द तीन, पृ० ५७१-५८२।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

होकर गिर पड़ा[1]। विजय महाराव को सेहरा बाँध रही थी। इस स्थिति का लाभ उठा कर महाराव कोटा गुप्त रूप से लौट जाना चाहता था। वह एक मक्का के खेत की ओट लेकर निकल गया परन्तु इस तरह रण-क्षेत्र से भाग जाने में अपने कुल को कलंक लगने का खयाल कर महाराव का छोटा भाई पृथ्वीसिंह लौट पड़ा। उसने राजगढ के जागीरदार देवसिंह आदि २५ राजपूत वीरों के साथ दूसरी तरफ से दिवान जालिमसिंह पर आक्रमण कर दिया। इस समय जालिमसिंह के पास ३०० सिपाही थे। २५ वीरों के युद्ध-कौशल से जालिमसिंह की सेना में हड़बड़ाहट तो फैल गई परन्तु वे कहां तक लड़ते। उनके साथी मारे गये। देवसिंह घायल हुआ। महाराव पृथ्वीसिंह भी घायल होकर घोड़े से गिर पड़ा। उसकी पीठ में एक रिसालेदार के हाथ का बर्छा लगा। वह एक खेत में बाद में पड़ा मिला। टाड उसको पालकी में लिटा कर अपने डेरे तक लाया और बड़ी हिफाजत के साथ इलाज करना शुरू किया परन्तु वह दूसरे दिन ही मर गया[2] मरते समय भी उस वीर राजपूत ने हिम्मत न हारी। उसकी तलवार तथा अंगूठी तो कोई ले गया था परन्तु मेरा देश, कंठमाला और दूसरा जेवर जो वह पहने हुए था वे सब ऐजेंट को देते हुए कहा कि, "मेरा पुत्र आपके भरोसे है"। कर्नल टाड ने इस युद्ध में प्रदर्शित हाड़ा राजपूतों की वीरता का अवर्णनीय शब्दों में उल्लेख किया है। यह घमासान युद्ध राजधानो कोटा से ३५ मील उत्तर पूर्व वाणगंगा के तट पर गांव मांगरोल में वि०सं० १८७१, आश्विन सुदि ५ सोमवार (ई०स० १८२१ १ अक्तूबर) को हुआ था। इसमें विजय फोजदार जालिमसिंह झाला को ही मिली।

फिर महाराव किशोरसिंह किसी तरह रणक्षेत्र से निकल कर पार्वती नदी को पार कर खेतों में होते हुए गोड़ों के ठिकाने शिवपुर बड़ाटे की तरफ चला गया। वहाँ से नाथद्वारा (मेवाड़) गया[3] जहाँ उसने कोटा राज्य को भगवान श्रीनाथजी के नाम पर अर्पण कर दिया। यहो कारण है कि दूसरी जागीर के सिवा अब तक ५००० रु. वार्षिक नाथद्वारे को कोटा से उस भेंट के एवज में दिया जाता है। विजय के बाद कर्नल टाड व जालिमसिंह ने विरोधी पक्ष वालों के प्रति उदारवादी नीति अपनाई। महाराव के पक्ष वालों को क्षमा प्रदान की

---

१ टाड : पृ० १६०३।

२ कहा जाता है कि घायल पृथ्वीसिंह को जब टाड के कैम्प में लाया गया तो जालिमसिंह ने उसके घावों पर विष की पट्टी चढवा दी थी जिससे यह शीघ्र ही मर गया। पर टाड को इसका ज्ञान नहीं था।

३ वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० ४१००-४१०२।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

गई और उन्हें पुनः उनकी जागीरें दे दी गईं। हाड़ों ने इसे स्वीकार किया और वे अपनी २ जागीरों में चले गये। महाराव किशोरसिंह और जालिमसिंह झाला के बीच में समझौता कराने का कार्य उदयपुर के महाराणा भीमसिंह ने किया था[1]। यह समझौता २२ नवम्बर १८२१ में हुआ। इस समझौते के अनुसार महाराव का खास खर्च महाराणा उदयपुर के बराबर कर दिया गया और महाराव के निजी कामों में दिवान और दिवान के रियासती कामों में महाराव का हस्तक्षेप नहीं करने का समझौता हुआ[2]। महाराव कर्नल टाड के साथ पोष वदि ६ ता० ३१ दिसम्बर को वापस कोटा आया[3]। इसके २ वर्ष बाद वि० सं० १८८० जेष्ठ सुदि ८ (ई० स० १८२४ ता० १५ जून) को ८५ वर्ष की आयु में मुसाहिब जालिमसिंह का स्वर्गवास हुआ और उसका पुत्र माधोसिंह झाला राज्य का दीवान व फौजदार बना। यह अपने पिता के काल में ही कोटा राज्य का सब प्रकार का प्रबंध करता था परन्तु महाराव से जो पिछली नाराजगी हुई उस विषय में जालिमसिंह ने माधोसिंह को बहुत झिड़कियां दीं और कहा कि यह सब उपद्रव तेरी खराब आदतों के कारण हुआ है। इसी शर्म से माधोसिंह ने अपनी आयुभर महाराव को हर प्रकार से प्रसन्न रखा[4]। वि०सं० १८२४ आषाढ सुदि ८ (ई० स० १८२८ ता. २२ अगस्त) को महाराव किशोरसिंह भी परलोक सिधारे। उसके कोई पुत्र नहीं था। असली हकदार उसका छोटा भाई अणता का महाराज विष्णुसिंह था पर महाराव ने अपने तीसरे भाई महाराज पृथ्वीसिंह के पुत्र रामसिंह को युवराज बनाया, अतः रामसिंह ही उत्तराधिकारी हुआ। इसका एक यह भी कारण था कि विष्णुसिंह ने फोजदार जालिमसिंह झाला का पक्ष लिया था[5]।

---

१ भीमसिंह, किशोरसिंह की बहन से शादी कर चुका था, अतः ऐसी अवस्था में मध्यस्थ बनना पड़ा।

२ टाड : जिल्द ३, पृ० १६०६।

३ महाराव इस विश्वास पर कोटा पुनः लौटा कि उसके प्रति विश्वासघात न हो और अंग्रेजी सरकार इस बात की जिम्मेदारी ले।

४ डा० शर्मा कोटा : राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ५८०।

५ जालिमसिंह का चरित्रः—

१८ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण और १९ वीं शताब्दी के प्रथम चरण में राजपूताने के प्रमुख राजनीतिज्ञ के रूप में जालिमसिंह झाला हमारे समक्ष उपस्थित होता है। उसने अपनी योग्यता, नीतिज्ञता, वीरता और क्षमता के बल पर ही यह उच्च पद प्राप्त किया। वह उच्च कोटि का राजनीतिज्ञ था। कोटा के महारावों के प्रति भक्त होते हुए भी वह अपनी स्थिति मजबूत बनाये रखना चाहता था। एक ही बार होल्कर और अंग्रेजों से (जो

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

महाराव रामसिंह (दूसरा) (वि० सं० १८८४-१९२२)

इसका जन्म वि० सं० १८६५ (ई० स० १८०८) में हुआ था। यह महाराव किशोरसिंह के लघु भ्राता महाराजा पृथ्वीसिंह का पुत्र था। किशोरसिंह के कोई पुत्र नहीं होने के कारण अपने बाद रामसिंह को उत्तराधिकारी घोषित किया। इसका राज्याभिषेक सं० १८८४ (ई० स० १८२७) में हुआ था। इसका शासन प्रारम्भ में शांति व अन्य राज्यों से मित्रता का काल था। सं० १८८८ (ई० स० १८३१) में अपने मुसाहिब सहित अजमेर लार्ड विलियम बैंटिंग से मिले[1]। उस समय इसको चंवर इनायत हुआ। माधोसिंह अपनी पिछली करतूतों के प्रायश्चित्त के रूप में इसे हर प्रकार से प्रसन्न रखने का प्रयास करता था, परन्तु सं० १८९० (ई० स० १८३३) में मुसाहिब झाला माधोसिंह का देहान्त हो गया। अंग्रेजों के साथ

आपस में युद्ध कर रहे थे) मित्रता बनाये रखना, अंग्रेजों की बढ़ती हुई शक्ति को कोटा के पक्ष की ओर बनाना उसी व्यक्ति का काम हो सकता है। वह एक योग्य सेनापति तथा साहसी सिपाही था। युद्ध क्षेत्र में प्रथम पंक्ति में लड़ना तथा हारे हुए युद्ध को विजय में बदलना, यह उसकी विशेषता थी। अपनी राजनीति की सफलता के लिये मित्रता को भी वह ठुकरा सकता था। अम्बाजी इंगले उसकी इस नीति का शिकार था। अपने पुत्र गोर्धनदास को जिसे कि वह अत्यन्त प्यार करता था। अपनी स्थिति मजबूत बनाये रखने के लिये उसने उसका देश त्याग करवाया। देश की परिस्थितियों का उसे सही ज्ञान था। कोटा को कभी अपने पेशवा, सिंधिया, अंग्रेज और पिंडारियों की उलझनों में इतना नहीं फँसने दिया कि वह उसे न बचा सके। उसमें क्षत्रियोचित वीरता थी और मरहठों की सी नीति। विजय पराजय, दोनों का वह लाभ उठाना जानता था।

वह एक उच्च कोटि का प्रशासक था। उसके सैनिक-सुधार, भूमि-प्रबंध, राजकीय खेती प्रणाली, कर-व्यवस्था, आधुनिक अर्थ-व्यवस्था से मिलती-जुलती है, परन्तु उस युग में यह सुधार जनप्रिय न हो सके। क्योंकि यह धारणाएं समय से आगे की थीं। जन-कल्याण जालिमसिंह का उद्देश्य नहीं था। वह सिर्फ इन साधनों द्वारा अपनी शक्ति का संचय करना और अपना प्रभाव विस्तार करना चाहता था। वही पहला राजस्थानी था जिसने राजस्थान के द्वार अंग्रेजों के लिये खोल दिये। अंग्रेजों ने भी उसकी स्थिति मजबूत बनाने का भरसक प्रयत्न किया।

१ इसके काल में प्रथम बार अंग्रेज सरकार के गवर्नर जनरल ने राजस्थान व देशी रियासतों के शासकों से मुलाकात की। अजमेर में वह उन नरेशों से मिल कर अंग्रेजी सत्ता के प्रति वफादार रहने और अंग्रेजों द्वारा इन्हें आन्तरिक शान्ति बनाए रखने में मदद का आश्वासन दिया। सन् १८३४ में महाराणा उदयपुर कोटा आये। इस प्रकार राज्यों के अध्यक्षों की मिलन-प्रथा प्रारम्भ हुई जिससे शान्ति और मित्रता बनी रहे।

Ac. Gunratnasuri MS　　　　Jin Gun Aradhak Trust

की हुई गुप्त संधि (मार्च १८२१) के अनुसार मुसाहिब पद पर माधोसिंह का पुत्र मदनसिंह नियुक्त किया गया। प्रारम्भ में तो दोनों युवक शासनकर्ताओं में बनी रही परन्तु धीरे २ दोनों की शत्रुता इतनी बढ गई कि कोटा का विभाजन करना पड़ा।

मदनसिंह जब किले में प्रवेश करता तो महाराव की तरह तोपें दगवाता था। यह इज्जत शक्ति का प्रदर्शन समझी जाती थी। ऐसी ही कई हरकतों से[1] महाराव और उसमें गहरी अनबन हो गई। कोटा की प्रजा झाला मदनसिंह मुसाहिब आला को नहीं चाहती थी। आम विद्रोह होने का भय हो गया। ऐसी अवस्था में अंग्रेजी सरकार ने मध्यस्थता द्वारा प्रधान मंत्री व शासक के बीच समझौता करा दिया जिससे मदनसिंह झाला को कोटा की पैतृक मुसाहिबी से त्याग पत्र देना पड़ा। उसके स्थान पर उसे कोटा राज्य की एक तिहाई आमदनी का भाग दिया गया। इस प्रदेश में १७ परगने थे और वार्षिक आमदनी १२ लाख रु. थी[2]। अंग्रेजी सरकार ने मदनसिंह झाला से एक प्रथम सन्धि करली जिसके अनुसार इस भाग (जिसका नाम झालावाड़ रखा गया) का स्वतंत्र शासक मदनसिंह झाला को स्वीकार कर लिया गया[3]। कोटा की खिराज में से ८० हजार रु. सालाना घटा कर झालावाड़ की तरफ जोड़े गये। एक नयी सरकारी

---

१ मदनसिंह झाला की कई अन्य हरकतों को महाराव पसन्द नहीं करते थे। मदनसिंह स्वभाव से ही उदण्ड, असहनशील, शीघ्रगामी और स्वतंत्र प्रकृति का था। रामसिंह की आज्ञाओं का वह पालन नहीं करने लगा। गढ़ में उसका जन्म-दिवस धूमधाम से मनाया जाता था। राजाज्ञाओं पर नरेशों की तरह उसका नाम भी लिखा जाने लगा। अंग्रेजी राज्य की पूर्ण शक्ति झाला के पीछे होने पर महाराव सिर्फ नाम मात्र के शासक थे। अतः महाराव उससे अधिक नाराज हो गये। मदनसिंह ने अंग्रेजों से कोटा कान्टीनजेन्ट का निर्माण-कोण कोष से कर दिया। यह भी अनबन का एक कारण था।

२ उन परगनों में चौमहला व शाहबाद के परगने झाला जालिमसिंह ने कोटा राज्य में मिलाए थे। इनकी आमदनी पांच लाख ही थी। परन्तु मदनसिंह ने १७ परगने लिए व १२ लाख के स्थान पर १७ लाख की आय के परगने लिये। चेचट, सकेत, आवर, डग, गंगराड, झालरापाटन, रींधवा, बफानी, बाहलनपुर, कोटड़ा, भाजन, सरडा, रटलाई, मनोहरपाना, फूलबड़ादे, चाचोरोनी, गुंजारी, छीपाबड़ोद, शाहबाद। डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास २, पृ० ५९६।

३ इस राज्य की निर्माण तिथि वैसाख शुक्ला ३, सम्वत् १८९४ (सन् १८३७) की है। इसके नरेशों को राजराणा की उपाधि से विभूषित किया जाता है जो कि झाला जालिमसिंह को महाराणा उदयपुर श्री अरिसिंह ने उसके प्रति की गई सेवाओं के बदले दी थी। झालावाड़ को छावनी या बृजनगर भी कहा जाता है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

फौज कोटा के लिये तैयार की गई। उसका खर्च ३ लाख रु. वार्षिक कोटा से लिया जाना तय हुआ। महाराव रामसिंह ने जब इसका कड़ा विरोध किया तो सं० १९०० (ई० स० १८४३) में यह रकम घटा कर २ लाख रु. करदी गई। यह सेना कोटा कान्टिन्जेंट कहलाती थी और इसका मुख्य स्थान छावनी, कोटा से एक मील दूरी पर रामचन्द्रपुरा नामक गाँव में रखा गया।

सम्वत् १९१४ (सन् १८५७ की मई १०) को उत्तरी भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीय सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया। उस समय नीमच में भारतीय सैनिकों के विद्रोह का भय था। तब मेवाड़, कोटा और बूंदी राज्यों की सेनायें वहां पर अंग्रेजी सरकार की सहायता के लिये पहुँची। हाड़ोती का पोलिटिकल एजेन्ट मेजर ब्रिटन भी कोटा से सेना लेकर नीमच पहुँचा। नीमच के विद्रोहियों को दबा कर तीन सप्ताह बाद १२ अक्टूबर १८५७ को कोटा लौटा। अपना कुटुम्ब नीमच के अंग्रेजों के भरोसे छोड़ कर महाराव से मिलने आया। १३ अक्टूबर को ब्रिटन की महाराव से मुलाकात हुई, जिसमें कोटा विद्रोही सामंतों व व्यक्तियों को दण्ड देने (मृत्यु दण्ड या निर्वासित) का आदेश महाराव को दिया गया। जब सामंतों को यह मालूम हुआ तो वे और उनके सिपाही अंग्रेजी सत्ता के विद्रोही होकर रेजिडेन्सी हॉस्पीटल पर हमला कर बैठे। सर्जन सेडलर और डाम्ट सेविल मार डाले गए। फिर रेजिडेन्सी पर हमला कर मेजर ब्रिटन और उसके दो पुत्रों को जो उसके साथ थे, तलवार के घाट उतार दिये गये[1]। राजकीय सेना के नायक जयदयाल और महराबखाँ ने विद्रोहियों से मिल कर महाराव रामसिंह को भी कैद कर लिया। कोटा महाराव ने ऐसी स्थिति में गुप्त रूप से पत्र भेज कर[2] करौली राज्य से सहायता प्राप्त की[3]। करौली की सेना ने पहुँच कर विद्रोही सेना से महाराव को मुक्त कराया। किला, महल व आधे

१ विस्तृत विवरण के लिये देखो—फोरेस्ट; हिस्ट्री ऑफ दी इन्डियन म्यूटिनी, जिल्द ३, पृ० ५५५-५५६।

२ गुप्त रूप से महाराणा खरीता भेज कर भिन्न-भिन्न स्थानों से सहायता मंगवाता था। एक खरीता जयदयाल के हाथ पड़ गया जिससे उसके लेखकों का बुरा हाल किया। कई ठाकुरों ने विशेष कर भैंसरोड़, गेता, पीपल्दा आदि ठाकुरों ने गुप्त रूप से महाराणा के पास सैनिक भेजने शुरू किये जो लगभग १५०० तक पहुँच गये थे। अंग्रेजी सरकार को सहायता के लिये खरीते लिखे गये। यह कार्य खांडेराव दक्षिणी को सौंपा गया।

३ करौली के महाराजा मदनसिंह रामसिंह के समधी थे। रामसिंह के पुत्र शत्रुशाल की शादी करौली राजकुमारी से हुई थी। यह सम्बन्ध इस समय काम में आया। लगभग १५०० सैनिक महाराणा ने भेजे थे। इसके नायक ठाकुर नालूकचालजी और छितरपालजी थे।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

शहर और नदी के घाट पुनः महाराव के अधिकार में आ गए[1]। इसी बीच में नसीराबाद की अंग्रेजी छावनी से अंग्रेजी सेना लेकर राबर्ट ता० २२ मार्च १८५८ को कोटा पहुँचा। करौली और अंग्रेजी सेना ने मिल कर कोटा विद्रोहियों के विरुद्ध २९ मार्च से गोलाबारी शुरू करदी। विद्रोही कोटा छोड़ कर भाग गए। उनकी ५० तोपें छीन ली गई[2]। महाराव के राज्य में पूरा अधिकार और शान्ति स्थापित कर अंग्रेजी सेना वापिस नसीराबाद चली गई।

अंग्रेज सरकार ने यद्यपि महाराव रामसिंह को निर्दोष समझा[3]। परन्तु उन्होंने विद्रोह को मिटाने और सरकारी अफसरों को बचाने की पूरी कोशिश नहीं की थी इसलिये सरकार ने अप्रसन्न होकर महाराव की सलामी के लिये १७ तोपों के स्थान पर घटा कर १३ तोपें करदीं[4]। सम्वत् १९२३ में अन्य नरेशों की तरह इसे भी गोद लेने की सनद अंग्रेजी सरकार द्वारा प्राप्त हुई। इसकी मृत्यु के कुछ वर्ष पहले ही कोटा का राज्य-प्रबंध बिगड़ चला था और मनमानी करने वाले मेमियों की कार्यवाहियों से राज्य पर २७ लाख रुपयों का कर्ज बढ़ गया था।

३८ वर्ष राज्य करके ६४ वर्ष की आयु में सम्वत् १९२३ चैत्र सुदि ११ (ई० स० १८६६, २७ मार्च) को महाराव रामसिंह का स्वर्गवास हुआ। इसकी एक शादी उदयपुर के महाराणा स्वरूपसिंह की बहिन से हुई थी। ऐसे समय में महाराणा ने इससे यह शर्त लिखवाई थी कि उदयपुरी रानी से उत्पन्न

---

१ कहा जाता है, महाराव ने विद्रोहियों से सुलह करनी चाही। कुछ दिनों के लिये अल्पकालीन शान्ति रही। इस शान्ति की सुलह कराने का श्रेय मथुरेशजी के मन्दिर के गुसांई कन्हैयालाल को दिया जाता है।

२ विद्रोहियों के नेता मोहम्मदखां, अम्बरखां, गुलमुहम्मदखां युद्ध में मारे गये। पकड़े हुये कैदियों के सिर कटवा दिये गये और नदीशेख आदि को तोप से उड़ा दिया गया।

३ सन् १८५७ में अंग्रेज सरकार का कोटा नरेश के नाम एक खरीता आया जिसमें गदर की शान्ति के लिये उनको बधाई दी गई। डा० शर्मा; कोटा राज्य का इतिहास : पृ० ६२८।

४ विद्रोह के बाद कोटा राज्य में परिणाम:—

(i) विद्रोही नेता मेहराबखां और लाला जयदयाल पकड़े गये तथा उन्हें ऐजन्टी बंगले के पास फांसी दी गई। (ii) रामसिंह को मेजर बर्टन की विद्रोहियों द्वारा हत्या को न रुकवाने के कारण उसकी सलामी की तोपें १७ से १३ करदीं। (iii) मेजर बर्टन का स्मारक राजकीय कोष से बनवाया गया। (iv) शहर का व्यापार नष्ट हो गया, राज्य को आर्थिक क्षति पहुँची। चोरियों व डकैतियों का राज्य कायम हो गया। (v) शहर पर महाराव का प्रभाव हो गया, पर सुदूर गावों में विद्रोहियों का ही कई वर्ष तक हुक्म बना रहा। उपरोक्त पृ० ६२९-६३०।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पुत्र ही चाहे वह छोटा हो राज्याधिकारी होगा, उदयपुर की राजकुमारी की प्रतिष्ठा सब रानियों से बढ़ कर रहे, उदयपुर की राजकुमारी को ५०,०००) रु. सालाना आमदनी की जागीर अलग मिले तथा उदयपुर की राजकुमारी की ड्योढ़ी या नोहरे में कोई अपराधी शरण लेवे वह सजा से बचाया जावे। ये शर्तें महाराणा ने एजेन्ट गवर्नरजनरल राजपूताना के पास स्वीकृति के लिए भेजी लेकिन उक्त साहब ने प्रथम शर्त के सिवाय सब शर्तों को मंजूर करके कहा कि यह पहली शर्त महाराणा अमरसिंह द्वितीय तथा जगतसिंह द्वितीय के समय में तय हुई थी[1]। उसका फल अच्छा नहीं निकला क्योंकि किसी दूसरी रानी से उत्पन्न हुआ ज्येष्ठ पुत्र हो तो भी वह राज्य से वंचित रहे तो झगड़े की संभावना होती है। इससे राजपूतों में पहले भी फूट पड़ गई थी और मरहठों की शक्ति बढ़ कर राजपूताना को विनाश की ओर ले गयी। अंग्रेजी सरकार ऐसे झगड़ों की जड़ कायम करना नहीं चाहती थी। अतः यह शर्तें अस्वीकृत की गईं।

महाराव शत्रुशाल (वि० सं० १९२३-१९४६)

रामसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसका गोद लिया हुआ पुत्र भीमसिंह गद्दी पर बैठा। वि० सं० १९२३ चैत्र सुदि १ (ई० स० १८६६)। बाद में इसका नाम बदल कर शत्रुशाल रख दिया गया। इसकी सलामी की तोपें अंग्रेजी सरकार ने पुनः १७ कर दीं। पहले तो इसने राज्य का सुप्रबन्ध किया परन्तु बाद में कुसंगत और मदिरापान के कारण शासन कार्य में उदासीनता लाने लगा। परिणामस्वरूप शासन का प्रबन्ध बिगड़ गया। लूट-मार और रिश्वत का बाजार गर्म हो गया। यात्रियों और सौदागरों को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। हर जगह हर बहाने से कुछ न कुछ महसूल ले लिया जाता था। अदालतों में न्याय नहीं होता था[2]। पटेल पटेली से हटा दिये गये। जिसने नजराना दिया उसे पुनः

---

१ महाराजा जगतसिंह द्वितीय की बहिन की शादी रामसिंह से हुई। उस समय तय हुआ कि उदयपुरी महारानी से ही उत्पन्न हुआ पुत्र राज्यगद्दी पर बैठेगा। कोटा के राव दुर्जनशाल, मारवाड़ के अमरसिंह ने इस परम्परा को स्वीकार कर लिया। इसी परम्परा के कारण जयपुर नरेश जयसिंह द्वितीय की मृत्यु के बाद (सन् १७४३) ज्येष्ठ पुत्र ईश्वरीसिंह और उदयपुरी राणी के पुत्र माधोसिंह के बीच गद्दी के लिये संघर्ष हुआ जिससे राजपूताने में मरहठों का प्रवेश हो गया। राजपूत शासकों ने मरहठी शरण में जाकर अपनी राजनीति व जातीयता का पतन कराया।

२ 'राजा करे सो न्याय और पासा पड़े सो दाव' वाला न्याय था।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पटेली दी गई[1]। कोटा राज्य आर्थिक संकट से गुजर रहा था। अंग्रेजी सरकार का खिराज, फौज खर्च, सन् १८५७ के विद्रोह को दबाने का खर्च, उससे अस्त-व्यस्त आयकर, झालावाड़ का निर्माण। अतः आमदनी के क्षेत्र की कमी आदि स्थितियों ने कोटा की आर्थिक दुर्दशा को और भयंकर बना दिया था। राज्य का कर्जा बढ़ गया जो ९० लाख तक पहुँच गया[2]। अयोग्य मनुष्यों के हाथ में शासन का उत्तरदायित्व होने से प्रजा पर अत्याचार होने लगे। राज्य के परगने ठेके पर दिये जाते थे। अंग्रेजी सरकार ने बार-बार शत्रुशाल को शासन-प्रबंध ठीक करने के लिये समझाया परन्तु उसने प्रभावशाली व्यक्तियों से मुक्ति नहीं पाई। अन्त में शत्रुशाल ने अंग्रेजी सरकार को एक सुयोग्य प्रबन्धकर्ता को कोटा भेजने की प्रार्थना की। अंग्रेजी सरकार ने मुसाहिब के पद पर नबाब फैज-अलीखां को नियुक्त किया।

नबाब फैजअलीखां प्रबन्धक के रूप में अक्टूबर १८७४ (सम्वत १९३०) के आसोज में कोटा आया[3]। नबाब ने आय-वृद्धि की ओर सर्वप्रथम ध्यान दिया। खजाने में उस समय ६३२२७ रु. ही जमा थे और कर्जा ९० लाख रुपये का था। ऊपर से दुर्भिक्ष, भारी कर से किसान तंग आ चुके थे। राज के नौकरों को तनख्वाह कई मास से नहीं मिली थी। खर्च का कोई हिसाब नहीं था। नबाब साहिब ने आज्ञा दी कि स्वीकृत चालू खर्च के सिवाय जिलेदार और कुछ खर्च न करें और यदि ऐसा हुआ तो वसूली उसी कर्मचारी से ही की जायेगी। बाद में चालू खर्च की भी स्वीकृति लेनी पड़ने लगी। प्रति मास कर्मचारियों को वेतन देने की व्यवस्था की गई। बकाया लगान की किश्तों को वसूल किया गया और ब्याज सहित राजकोष में जमा करने की आज्ञा दी गई। कर-संग्रह का कार्य जिलेदार को सुपुर्द कर दिया गया। भिन्न २ विभागों से वसूली करने का काम हटा दिया गया। नजराना के एक लाख रुपये जो बकाया

---

१ नजराना ८ आ० प्रति बीघे के हिसाब से लिया जाता था। डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, ६४०।

२ सम्वत १९०३ (सन १८४६) के आसपास राज्य की यह स्थिति थी। शत्रुशाल के समय राज्य की आय २१ लाख रुपये थी जिसमें १४ लाख लगभग तोपखाना, मामलात और कर्ज की किश्तों तथा काज में खर्च होता था। उपरोक्त, पृ० ६५४-५५।

३ मदनसिंह झाला जब कोटा का मुसाहिब न रहा तो महाराव रामसिंह ने पांडे गोपाल को मुसाहिब का पद दिया पर वह सफलतापूर्वक कार्य न कर सका। शत्रुशाल ने गणेशलाल बीजा को मुसाहिब पद दिया। आर्थिक स्थिति को सुधारने का कार्य बीजा से न हो सका अतः नबाब फैजअली बुलाया गया। यह पहले जयपुर का एक मन्त्री रह चुका था। अंग्रेजी सरकार ने इसे ९ तोपों की सलामी दी तथा इस पर चंवर ढुलता था।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

थे, भूमि-कर के कई वर्षों के जो रु. बाकी थे, राज्य कभी-कभी तकाबी ऋण देता था वे भी वापिस न आये थे, टम्कीबराड व जगीरबराड कर तो पूर्णतया बाकी थे। जिलेदारों को इन बकाया रुपयों को शीघ्र तथा सख्ती से प्राप्त कर हिसाब पेश करने की आज्ञा दी गई। एक बकाया महकमा अलग स्थापित किया गया। सरकारी बचत के लिये टप्पण की कचहरी[1] तोड़दी और सीमे की आमदनी सीधी राज्य-कोष में जमा करनी शुरू की। गुप्त हरकारे जो राज्य के लिये सूचना इकट्ठी करते थे, खूब रिश्वत लेते और आतंक जमा बैठे थे, यह आज्ञा निकाल दी गई कि लोग इन्हें घूस न दें। न हरकारे घूस लें। अन्यथा कठोर दण्ड दिया जायेगा[2]।

नबाब ने कुछ अन्य महत्वपूर्ण सुधार कर कोटा राज्य की स्थिति में प्रगति करनी चाही। सम्वत् १९३० में डाकखाने का प्रबन्ध किया गया। तोल पर डाक महसूल लिया जाता था जो एक आग तोला था। सरकारी व कामिगत डाक की भिन्न २ व्यवस्था की गई। प्रत्येक जिले को गजेटियर बनाया गया[3]। मुकाता प्रथा को व्यवस्थित कर दिया गया। वार्षिक कर तीन किश्तों में दिया जाना था। जिला-प्रबन्ध में भी सुधार किया गया। कोटा राज्य ८ निजामतों में बांटा गया। प्रत्येक निजामत पर एक नाजिम होता था जिसकी आमदनी ८० रु थी। प्रत्येक निजामत में दो तहसीलें होती थीं। तहसीलदार को ३० रु. मासिक वेतन दिया जाता था। इसके अलावा खर्च पर नियंत्रण करने के लिये प्रत्येक विभाग का बजट तैयार किया गया। वि० सं० १९३१ में लड़के व लड़कियों के स्कूल जारी किये गये जहाँ अंग्रेजी, हिन्दो व फारसो पढ़ाई जाती थी[4]। शिक्षा पर कुल खर्च ३७६० रु. होता था[5]। पहला सुव्यवस्थित अस्पताल कोटा में सम्वत् १९३० में खोला गया और नगर सफाई के प्रबन्ध के लिये एक अलग कर्मचारी नियत किया गया। राजधानी में सड़कों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। अतः सड़क

---

१ सरकारी कार्य के लिये यात्रा करने वालों के दैनिक खर्च का हिसाब रखने वाली कचहरी थी। यह दैनिक खर्च जिसके यहां कर्मचारी जाता था, देता था। कर्मचारी वहां खाना खाने भी जाता और पैसे भी लेता। यह पैसे इस कचहरी में जमा होते थे जिसे कि गैरी आमदनी कहते थे।

२ गुप्त हरकार प्रथा मुसाहिब जालिमसिंह ने स्थापित की थी।

३ यह गजेटियर सिर्फ जनगणना तक ही आधारित थे-गांव के स्त्री, पुरुष, बाल-बच्चे, कुए, बावड़ी, पक्के मकान, खेती की भूमि, मन्दिर, मस्जिद आदि पर यह योजना सफल नहीं हो सकी।

४ अध्यापिकाओं और अध्यापकों का वेतन १० रु. मासिक होता था।

५ डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, पृ० ६६९।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इमारत विभाग स्थापित किया गया। उर्दू भाषा राज्य की भाषा बनाई गई। जालिमसिंह के भूमि-प्रबन्ध में भी सुधार किये गये। पुनः जमीन की पैमाइश हुई तथा लगान नियत किया गया। इस कार्य के लिये सम्वत् १९३१ में २४०० रु. बजट में रखे गये थे[१]।

नबाब फैजअलीखां दो वर्ष तक ही कार्य कर सका। महाराव से उसकी बनती नहीं थी[२]। अतः सं० १९३३ (सन् १८७६ की १ दिसम्बर) को इस्तोफा देकर नबाब चला गया। अंग्रेजी सरकार ने शासन भार स्थानीय राजनैतिक ऐजेन्ट को सौंप दिया। नबाब ने सम्वत् १९३१ में ३ सदस्यों की एक कौंसिल का निर्माण किया था[३]। यह न्याय सम्बन्धी कार्य की देखरेख भी करती थी। एजेन्ट की एक सलाहकार समिति के रूप में इसका विकास हुआ। यह कौंसिल सम्वत् १९५३ तक कार्य करती रही। एजेन्ट कर्नल बेन्ती के तत्वावधान में कौंसिल ने कोटा राज्य के शासन में सुधार करने की कोशिश की। इस कौंसिल ने कोटा को ऋण-मुक्त कराया। नबाब फैजअली के समय ९० लाख रुपये ऋण में थे। परन्तु बोहरों से ऋण की विगत मांगी गई तो ४७ लाख रु. ही निकले[४]। इस कौंसिल ने अपने अन्तिम समय में बर्खास्त होने से पहले राज-कोष में १७ लाख रु. बचाया था। यह सब बचत जनहित कार्य के कामों में खर्च करने के बाद बची थी। नबाब ने जालिमसिंह के भूमि-प्रबन्ध में सुधार करने का प्रयास किया पर अपने सुधारों को पूर्ण रूप से कार्यान्वित करने के पहले ही वह इस्तीफा देकर चला गया। इस पर कौन्सिल ने वह कार्य पूरा किया। कौन्सिल में कर्नल पोलिट ने यह कार्य मुन्शी दुर्गाप्रसाद को सौंपा जिसने सम्वत् १९३३ में कार्य प्रारम्भ किया और सम्वत् १९४३ को कार्य समाप्त किया। प्रत्येक बीघे

---

१ उपरोक्त पृ० ६७०।

२ महाराव नबाब की नियुक्ति से पसन्द नहीं था क्योंकि अंग्रेजी सरकार ने इस मुसाहिब आला को जो सम्मान व पद दे रखे थे वे महाराव को अच्छे नहीं लगते थे। कहा जाता है कि प्रथम दिन के मिलन से ही महाराव नबाब से अलग रहने लगा और गढ़ में उसके प्रवेश करने पर उसकी सलामी में तोपें नहीं दगवाई थीं। अंग्रेजों के दबाव में आकर महाराव ने इस प्रबन्धक को स्वीकार किया था परन्तु जब नबाब ने सम्वत १९३३ में झालावाड़ के राजराणा पृथ्वीसिंह की मृत्यु पर कोटा में झालावाड़ मिलाने का प्रयास किया तो रावराजा उससे पूर्ण अप्रसन्न हो गया।

३ प्रथम तीन सदस्य पलायथ के आप श्री अमरसिंह, राजगढ़ के आप श्री कृष्णसिंह और पं० श्री रामदयालजी। डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, पृ० ६७२।

४ कुछ इतिहासकारों का मत है कि ऋण तो ९० लाख रु. ही था पर बोहरों को चुकाने के लिये ९ या १० आना रुपये में से ही पैसे दिये गये।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

का नाप सब स्थान पर एक सा कर दिया। सैकड़ों प्रकार की डोरियां समाप्त करके केवल ११ प्रकार की रहने दीं जिनका नाप १३० फिट ५ इंच से १४६ फिट ८ इंच तक रखा[१]। इससे राज्य के १० वर्ष में ४ लाख रु. खर्च हुये। और १ लाख रु. की वार्षिक वृद्धि हुई। इसके अलावा कृषकों को कम ब्याज पर रुपये राज्य द्वारा देने तथा बीज देने की प्रथा भी जारी की गई। सिंचाई के लिये नहरों का निर्माण किया गया। पार्वती नहर, अकलेरा का सागर, रामगढ़ की नहर आदि निर्मित हुई जिसमें सवम्त् १९५२ से साढ़े ११ हजार बीघे भूमि की सिंचाई होने लगी[२]।

कौंसिल द्वारा न्याय क्षेत्र में भी सुधार किये गये। सम्वत् १९३९ में औरतों को कोड़े लगाने बन्द किये गये। पुरुषों के कोड़े लगाने से पहले उनका डाक्टरी मुआयना किया जाता। कैदियों को राज्य की ओर से खुराक मिलने लगी। अन्य सुधारों में जगात विभाग में सुधार किया गया। राज्य के अन्दर एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल ले जाने पर जो महसूल लिया जाता था वह सम्वत् १९३५ में बन्द कर दिया गया। सम्वत् १९४० में जगात विभाग और माल विभाग पृथक कर दिये गये। सम्वत् १९३३ में कौन्सिल ने जंगल के ठेके देने के नियम बनाए और सम्वत् १९५३ में इसकी आय ५० हजार के ऊपर हो गई। कोटा में अफीम की खेती को कम कर दिया गया। पहले से सम्वत् १९५० में २५ % कम की गई। कोटा राज्य में नमक बनाने का कार्य जब भारत-सरकार ने ले लिया तब मुआवजा प्रति वर्ष १६ हजार रु. दिया जाने लगा।

सम्वत् १९३७ में सेना का पुनः प्रबन्ध किया गया। सेना का खर्च चार लाख रु. से ऊपर किया जाने लगा। नगर पुलिस व जिला पुलिस में सुधार करने के लिये सम्पूर्ण राज्य के तीन विभाग किये गये और प्रत्येक डिवीजन में एक उपाध्यक्ष पुलिस नियुक्त किया। थानेदार जो मालगुजारी वसूल करते थे, वह कार्य उनसे अलग किया गया। कई अन्य प्रकार के नियम बनाये गये। जमीन छोड़ने, बेचने व गिरवी रखने के नियम बने। माल विभाग में नये तरीके का प्रबन्ध किया गया। अध्यक्ष के नीचे दो उपाध्यक्ष रखे गये। एक कोटा में और दूसरा शेरगढ़ में जंगल माल से अलग किया गया परन्तु पुनः शामिल कर दिया गया। पशु-बाड़े बने। खेतों का लगान नकद दिया जाने लगा। सम्वत् १९४७ में कौन्सिल ने राज्य-कर्मचारियों की पैन्सन

१ इसे हाथी वाला बन्दोबस्त भी कहते क्योंकि यह बन्दोबस्त मुन्शी देवीप्रसाद ने हाथी पर बैठ कर किया था। डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ६६७।

२ उपरोक्त पृ० ६७८-६७९।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

के नियम बनाये। अंग्रेजी सरकार का सिक्का जारी होने के बाद कोटा की टकसाल बन्द करदी गई। शिक्षा की उन्नति के लिये सम्वत् १९५० में शिक्षा का बजट २० हजार तक बढ़ गया और प्रत्येक व्यापारिक केन्द्र पर एक-एक स्कूल खोला गया। अजमेर के मेयो कालेज में एक छात्रालय कोटा राज्य की ओर से निर्मित हुआ और कालेज को आर्थिक सहायता दी गई। प्रजा की सेहत के लिये तहसीलों में अस्पताल खोले गये[1]।

इस प्रकार कौन्सिल की संरक्षता में कोटा राज्य ने उन्नति की। महाराव शत्रुशाल ने अपना राज्य-प्रबन्ध अंग्रेजी सत्ता पर छोड़ कर ऐश्वर्य में जीवन व्यतीत किया। इसके कोई सन्तान नहीं थी। वह सदा बीमार रहता था। अतः अपने जीवन-काल में ही उसने अपना कोई पुत्र नहीं होने के कारण, कोटड़ा के जागीरदार महाराज छगनसिंह के दूसरे पुत्र उदयसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाया। इसकी मृत्यु ज्येष्ठ सुदि १३, सम्वत् १९४६ (ई० सन् १८८९ ता० ११ जून) को हुई[2]।

महाराव उम्मेदसिंह (वि० सं० १९४६-१९९७)

महाराव शत्रुशाल के कोई सन्तान न होने से कोटड़े के जागीरदार का पुत्र भीमसिंह गोद लिया गया[3]। राज्याभिषेक के समय इसका नाम बदल कर उम्मेदसिंह रखा गया। इसका जन्म सं० १९३० भादवा सुदि १३ शुक्रवार (सन् १८७३ ता० ५ सितम्बर) को हुआ। राज्याभिषेक १६ वर्ष की आयु में ही जेष्ठ सुदि १३ सं० १९४६ (सन् १८८९ को ११ जून) को ही हो गया था

---

१ उपरोक्त, पृ० ६७९-६९६।

२ कहते हैं इसको मारने के लिये कुछ कामियों ने जहर दे दिया था। इस सम्बन्ध में धाय माय घोसा और वैद्य रामचन्द्र गिरफ्तार कर लिये गये। वैद्यराज की मृत्यु तो जेल में ही हो गई। परन्तु इस सम्बन्ध में कोई पर्याप्त प्रमाण नहीं मिले हैं।

३ कुछ इतिहासकार इनका आदि नाम उदयसिंह भी कहते हैं : किशोरसिंह
विशनसिंह : (अन्ता के जागीरदार, दक्षिण में पिता के साथ न जाने कारण गद्दी से वंचित)
चैनसिंह (पांचवां पौत्र, विशनखेड़ी का जागीरदार)
छगनसिंह : (कोटड़े का जागीरदार)
उदयसिंह : या भीमसिंह : या उम्मेदसिंह

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

परन्तु नाबालिग होने के कारण राज्य-कार्य कौन्सिल के हाथ में रहा। राजकाज के अधिकार इसे वि० सं० १६४६ को पोष सुदि २ बुधवार (ई० सन् १८६२ ता० २१ दिसम्बर) को दिये गये[1]। और सं० १६५३ में कौन्सिल की समाप्ति कर कोटा राज्य के शासन का प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व इसने अपने ऊपर ले लिया। इसकी शिक्षा मेयो कालेज अजमेर में हुई थी।

शासन कार्य प्रारम्भ करते समय इसने जन-कल्याण की प्रथम घोषणा की। पूर्ण शासन-प्राप्ति के दिवस 'क्रोस्तवेट इन्स्टीटच्यूट' की स्थापना की जो कि एक सार्वजनिक पुस्तकालय, खेल-कूद के मैदान के रूप में स्थापित हुआ[2]। कालांतर में शासन-कार्य से प्रसन्न होकर समय २ पर अंग्रेजो सरकार इसे अपनी पदवियों से सुशोभित कर इसका अंग्रेजी सरकार की सेवाओं का, आदर करती रही। सं० १६५७ (ई० सन् १६००) में इसे के. सी. एस. आई. की पदवी दी गई[3]। जून १६०७ को जी. सी. आई. ई.[4] और १ जनवरी १६१८ को जी. बी. ई.[5] की उच्च पदवियां दी गईं। सन् १६१३ में सम्राट एडवर्ड सप्तम ने इसे देवली रेजीमेंट का आनरेरी मेजर नियुक्त किया और सन् १६१४ में आनरेरी लेफ्टीनेंट कर्नल बनाया। शिक्षा के क्षेत्र में समय २ पर दान-दक्षिणा देने की प्रथा कोटा में महाराव उम्मेदसिंह ने शुरू की। काशी विश्व विद्यालय की स्थापना के समय इसने मदनमोहन मालवीयजो को डेढ लाख रु. दिया। और दिल्लो की लेडी हार्डिंग मेडीकल कालेज को १ लाख रु. दिये। सन् १६२७ में काशी विश्व विद्यालय ने महाराव उम्मेदसिंह को एल. एल. डी. की उपाधि दी।

महाराव उम्मेदसिंह का शासन-काल सुधार और प्रगति का शासन-काल था। वह अन्य रियासतों से मित्रता, प्रेमभाव तथा सहयोग की नीति का अनुसरण करता था। जनता के सुख और उन्नति के मार्ग की बाधाओं को दूर करने की नीति इसने अपनाई थी। इसके शासन-कार्यों में मुख्य सलाहकार चौबे सर रघुनाथदास, सी. एस. आई. और मुंशी शिवप्रताप थे। कोन्सिल के कार्य-काल में

---

१ इस समय इसे सेना, कोर्ट रियाह, पुण्य विभाग और महलों के प्रबंध का अधिकार दिया गया।

२ यह संस्था कोटा निवासियों की भाषा में यादघर है। ३० नवम्बर १८६६ में राजनैतिक प्रतिनिधि सर रावर्ट क्रोस्तवेट महाराव को पूर्ण शासन-भार सौंपने को आया। उसकी स्मृति में यह संस्था स्थापित की।

३ नाइट कमाण्डर : स्टार आफ इण्डिया।

४ जनरल कमाण्डर आफ इण्डियन इम्पायर।

५ जनरल ब्रिटिश इम्पायर।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

रघुनाथदास माल विभाग का अध्यक्ष था। धीरे-धीरे अपनी योग्यता के कारण कौंसिल की सहायता प्राप्त की और सं० १९५३ में इसे कोटा राज्य का दीवान बनाया। इस पद पर यह सम्वत् १९८० तक रहा जबकि इसका देहांत हो गया। २७ वर्ष तक यह राज्य का दीवान रहा। मुन्शी शिवप्रताप महाराव का प्राइवेट सेक्रेटरी था। बाद में इसे शिक्षा विभाग का अध्यक्ष बनाया गया। राज्य-शासन में दीवान इसकी सलाह लिया करता था। दीवान रघुनाथ का देहावसान हो जाने के बाद दीवान पद पर पलायथे के ठाकुर ओंकारसिंह को नियुक्त किया गया। आप ओंकारसिंह ने भी कोटा राज्य में गढ़ कमेंटी के सदस्य के रूप में प्रारम्भ कर धीरे-धीरे माल विभाग के उपाध्यक्ष, गिराही महकमा (पुलिस विभाग) के अफसर व आइ. जी. के रूप में कार्य करने के बाद सेनाध्यक्ष और फिर दीवान का पद प्राप्त किया। यह पद ६ जनवरी १९४२ तक संभाला। महकमा खास का अन्य सदस्य राय बहादुर पं० विशम्भर भी था। यह सर रघुनाथ का पुत्र था। परन्तु सं० १९९२ में इसने अस्वस्थता के कारण त्यागपत्र दे दिया। उसके स्थान पर सं० १९३६ में सरदार कान्हचन्द की नियुक्ति हुई।

महाराव उम्मेदसिंह ने पड़ौसी राज्यों से मित्रता की नीति अपनानी प्रारम्भ की। बून्दी के हाड़ा शासकों से अनबन सन् १७०८ से चली आ रही थी[1]। इस वैमनष्य को दूर करने का प्रयास महाराव ने किया। सं० १९८० (सन् १९२३) में बून्दी के नरेश बीमार पड़े। स्वास्थ्य-लाभ पूछने के लिये महाराव उम्मेदसिंह बून्दी गया। वर्षों की वैमनष्यता का अंत हो गया और पुनः हाड़ाओं में मेलजोल व भाईचारा स्थापित हो गया। इसी प्रकार कोटा-जयपुर में भी वैमनष्य था[2]। इस अनबन को दूर करने के लिये कोटा नरेश ने वैवाहिक संबंध स्थापित किये। जयपुर के प्रसिद्ध ठिकाने ईशरदा के ठाकुर की बहिन से इसने विवाह कर लिया। जयपुर के राजा मानसिंह ईशरदा ठाकुर के कनिष्ट पुत्र थे[3]। कोटा

---

१ जाजव का युद्ध : मार्च १७०८, औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके बड़े शाहजादा युवराज मुअज्जम और दक्षिण का सूबेदार शाहजादा आजम दिल्ली पर अधिकार के लिये लड़े जिसमें मुअज्जम का पक्ष बून्दी वालों ने तथा आजम का पक्ष कोटा वाले हाड़ाओं ने लिया। जिसमें मुअज्जम की जीत हुई। बून्दी के राव बुद्धसिंह अर्थात मुअज्जम से कोटा प्राप्त करने का फरमान ले लिया।

२ सन् १७६१ के मरवाड़ा के युद्ध में कोटा से जयपुर हार गया। तब से दोनों राज्यों में अनबन बढ़ती रही।

३ महाराव के ३ विवाह हुए। पहला विवाह उदयपुर महाराणा फतहसिंह की पुत्री नन्दकुंवर के साथ सन् १८९२ में हुआ। परन्तु वह प्रसव-वेदना से १८९५ में मर गई। दूसरा विवाह कच्छ के महाराव की पुत्री से हुआ जिसकी सन् १९२३ में मृत्यु हो गई. तीसरी शादी ईशरदा ठिकाणा के ठाकुर की बहिन से किया। इसके एक पुत्र भीमसिंह है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

राज्य से अलग झालावाड़ राज्य की स्थापना हुई। झाला मदनसिंह को सं० १८९४ (ई० सन् १८३७) में झालावाड़ का राज्य दिया गया। स० १९५३ (ई० सन् १८९६) में झालावाड़ के तत्कालीन राजराणा जालिमसिंह का शासन-प्रबंध बुरा होने के कारण उसे गद्दी से उतार दिया और उसके कोई पुत्र न होने के कारण ये जो १७ परगने थे उनमें से १५ परगने सन् १८९९ में कोटा राज्य को दे दिये गये। ये परगने कोटा में मिल जाने से झालों व हाड़ों में अनबन होगई। परन्तु १९२४ में महाराव उम्मेदसिंह ने महाराज राणा झालावाड़ से मित्रता करली और झालावाड़ का नरेश उम्मेदसिंह से मिलने कोटा आया[1]।

अंग्रेजी सरकार के प्रति महाराव कोटा ने सहयोग व राजभक्ति का प्रदर्शन किया। लार्ड कर्जन ६ नवम्बर १९०२ को कोटा आया और महाराव का ४ दिन तक मेहमान रहा। इसी तरह लार्ड लिटन १९२५ में कोटा आया और मार्च १९२६ को लार्ड रीडिंग ने कोटा-यात्रा की। सब वायसरायों ने कोटा राज्य की शासन प्रगति की प्रशंसा की। कोटा में हाड़ोती एजेन्सी का प्रमुख केन्द्र करीब १०० वर्ष, सं० १८७४ से १९७९ तक रहा। महारानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती कोटा में सं० १८९६ में धूमधाम से मनाई गई। सन् १९०१ में महारानी विक्टोरिया मरी तो राज्य में शोक की छुट्टियें की गईं व ८१ तोपें चलाई गईं। एडवर्ड सप्तम की गद्दीनशीनी के उपलक्ष्य में महाराव को स्वर्ण-पदक दिया गया। सं० १९११ में जार्ज पंचम ने दिल्ली में आम दरबार किया। महाराव वहाँ उपस्थित था। उसे के. सी. एस. आई. की पदवी से विभूषित किया गया। महाराव ने सम्राट को कोटे आने का निमन्त्रण भेजा। सम्राट तो न आया परन्तु साम्राज्ञी मेरी २४ दिसम्बर १९११ को कोटा आई। महाराव ने अंग्रेजों को युद्धों में हमेशा सहायता दी। स० १८९९ में अफ्रीका में अंग्रेज का बोअरों से युद्ध छिड़ गया[2]। कोटा राज्य ने अंग्रेजों को आर्थिक व रसद की सहायता दी। प्रथम महायुद्ध १९१४ से १९१९ तक यूरोप में हुआ। भारत में अंग्रेजी सरकार ने देशी राज्यों से सहायता चाही। कोटा नरेश ने अप्रेल १९१७ में अंग्रेजी सरकार को युद्ध में ५ लाख और राजमहिलाओं ने १ लाख रु. दिये। कोटा की जनता से धन इकट्ठा करने के लिये एक समिति बनाई गई जिनसे ३ लाख रु. इकट्ठा किया। अन्य प्रकार के फण्ड खोले गये। भारतीय रिलीफ फण्ड,

---

१ डा० शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास द्वितीय, पृ० ७१५।

२ यह प्रसिद्ध द्वितीय बोअर का युद्ध था। (१८९९ से १९०२) जबकि ट्रांसवाल का फ्री आरेंज के बोअर राज्य अंग्रेजों ने विजय कर दक्षिणी अफ्रीका में मिला लिये। इसी युद्ध में महात्मा गांधी स्वयंसेवक बन कर घायलों की सेवा-सुश्रूषा करते थे।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

वायुयान फण्ड आदि, रेडक्रास आदि में भी धन दिया गया। कोटा से करीब १५ लाख का धन गया[1]। युद्ध-समाप्ति के बाद राष्ट्र संघ १६१६ ई० में निर्माण हुआ। जन-कल्याण के लिये इस संघ ने नशे की वस्तुओं का उत्पादन रोकना चाहा। कोटा में भी अफीम का उत्पादन कम किया गया। १६१६ के भारतीय संविधान के कानून (चेन्सफोर्ड मांटेग्यू सुधार) के अनुसार नरेन्द्र मण्डल की स्थापना हुई। महाराव इस मण्डल का सदस्य बना। १६३५ के संघीय विधान में कोटा राज्य के सम्मिलित होने की स्वीकृति महाराव ने देदी। दूसरे महायुद्ध के प्रारम्भ में महाराव ने प्रथम महायुद्ध की तरह अंग्रेजों को भरपूर सहायता दी।

महाराव उम्मेदसिंह के शासन-काल में कई सुधार हुए। भूमि-प्रबंध आधुनिक ढंग से सुव्यवस्थित किया गया। राजकीय लगान निश्चित किया गया। भूमि की उपज और पीवत के अनुसार साढे छ (६॥) रु. बीघा से लेकर ६ आने तक नियत की गई। सेर के बाट नये जारी किये गये। पड़त जमीन उपजाऊ कराई गई। यह बन्दोबस्त का कार्य १६०० में प्रारम्भ हुआ और १६१६ में समाप्त हुआ। मि० बटलर ने यह कार्य किया। राजकीय आय में ३ लाख रु. की वृद्धि हुई[2]। इस प्रकार हर १०वें साल बन्दोबस्त की प्रथा शुरू की। तीसरे बन्दोबस्त में जमींदारी जमीन का भी बन्दोबस्त किया गया। कृषि में सुधार किये गये। कृषकों को तकाबी दी जाने लगी। नये प्रकार के बीज दिये गये और वैज्ञानिक ढंग से खेती करने को प्रोत्साहन दिया गया। पटेलों को भारत के भिन्न २ कोनों में होने वाली कृषि-प्रदर्शनियां देखने भेजा गया। वहाँ से राज्य के लिये नये कृषि यंत्र खरीदे गये। कोटा में समय २ पर अकाल पड़ते थे। सम्वत १६५६ में, १६६१ में, १६७५ में भयंकर अकाल पड़े। राज्य ने दुर्भिक्ष सहायता के लिये कमेटी निर्मित की। अन्न को निकासी पर भारी कर लगा दिया गया।

शिक्षा के क्षेत्र में महाराव उम्मेदसिंह के समय काफी उन्नति हुई। सम्वत् १६५० में राज्य भर में १८ पाठशालाएं थीं। और १०८५ विद्यार्थी शिक्षा पाते थे व ३४ अध्यापक थे और ८ हजार ७ सौ १० (८७१०) रु. शिक्षा पर खर्च

---

१ डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास द्वितीय, पृ० ७४६-७४७।

२ १६०४ में भूमि कर की आय २२ लाख १६ हजार १ सौ ४४ रु. थी। १६०६ में २४ लाख ३७ हजार ४ सौ ६४ हो गई और इसमें खर्च ३ लाख ५६ हजार ३ सौ ४६ हुआ। उपयोगी जमीन १६०४ में १८६२०२७ बीघा थी। १६२० में २४३०८४६ बीघा होगई डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास द्वितीय, पृ० ७५६-६०।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

होता था। अंग्रेजी शिक्षा राजधानी में ही थी। स्त्री-शिक्षा नाम मात्र को थी। अब शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति होने लगी। १९५३ में हाई स्कूल खुला। बाद में यह कालेज बन गया जिसे आज हरबर्ट कालेज कहते हैं। स्त्री-शिक्षा के लिये महारानी कन्या पाठशाला की स्थापना हुई। नार्मल स्कूल स्थापित किये गये। विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिये छात्र-वृत्तियाँ दी जाने लगीं। चिकित्सा विभाग के अन्तर्गत कोटा राज्य में स्थान-२ पर अस्पताल खुलने लगे। सम्वत् १९५६ में पांच सफाखाने थे पर सन् १९४० तक हर तहसील में १-१ अस्पताल खुल गया। कई सामाजिक सुधार हुए।

सम्वत् १९८० में बेगार-प्रथा बन्द करदी गई। सन् १९२७ में यह कानून बना दिया गया कि १२ वर्ष से पहले लड़की और १६ वर्ष से पहले लड़के का विवाह करना जुर्म है[1]। कोटा में पहली रेलवे लाइन सम्वत् १८५६ में बारां तक बनी थी। कोटा राज्य ने इसका खर्च दिया। सम्वत् १९६३ में कोटा तक यह लाइन खुल गई। सं० १९६५ में मथुरा, नागदा रेलवे मार्ग खुल गया। इसी प्रकार कोटा राज्य ने इस काल में डाक, तार का भी प्रबन्ध किया। सन् १९०० में कोटा राज्य का डाक विभाग अंग्रेजी सरकार ने ले लिया। कोटा में पहली तार लाइन २१ मई १८९२ में देवली से कोटा तक खोली गई। सहकारी समितियां, बैंक १९२३ ई. में स्थापित किये गये। रेल के आने पर रूई के पेच, तेल को फैक्ट्री, पत्थरों की खानें आदि व्यवसाय जारी हुए। बारां और रामगंज मण्डी इन व्यवसायों के मुख्य नगर थे। कोटा में पहले हालो और मदनशाही रुपये चलते थे। सन् १९०० में कलदार रुपये शुरू किये। उम्मेदसिंह के समय बनने वाली इमारतों में हरबर्ट कालेज, कर्जन वाचली स्मारक, क्राथपेस्ट इन्स्टीटच्यूट, महारानी कन्या पाठशाला (आजकल कॉलेज) राजकीय भवन आदि प्रसिद्ध हैं। कोटा में प्रथम बार राजनैतिक चेतना का प्रारम्भ इसके समय में हुआ। सन् १९१४ में जयपुर के प्रसिद्ध देशभक्त पं० अर्जुनलाल सेठी बी.ए. तथा शाहपुरा (मेवाड़ निवासी) केसरीसिंह बारहठ, कोटा के हीरालाल जालोटी आदि आरा विहार महन्त हत्याकेस तथा जोधपुर महन्त हत्याकेस नाम के राजनैतिक मुकदमे अंग्रेजी सरकार के इशारे से कोटा राजधानी में चलाये गये और इन अभियुक्तों को दोषी करार देकर कई वर्षों की सजा दी गई। राजपूताने के राज्यों में यह पहला ही राजनैतिक षड़यन्त्र का मामला था।

---

१ १९२० में केन्द्रीय धारा-सभा ने शारदा कानून बना कर विवाह की उम्र निश्चित करदी। लड़के की कम से कम १८ वर्ष और लड़कियों की १४ वर्ष होने पर ही विवाह करने का कानून बना। यह कानून सफल न हो सका। इसी प्रकार कोटा राज्य का यह कानून भी असफल रहा।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

महाराव उम्मेदसिंह का देहान्त सन् १९४० की २७ दिसम्बर को हुआ। इसके बाद उसके पुत्र भीमसिंह राजगद्दी पर बैठे। महाराव उम्मेदसिंह अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। सम्वत् १९७१ (ई० सन् १९१४) में इसने द्वारिका-यात्रा की। सन् १९१७ में यह हरिद्वार गया और वहाँ पुण्यदान दिया। अपने राज्य में पुराने मन्दिरों व मस्जिदों का जीर्णोद्धार करवाया।

महाराव भीमसिंह—वि० सं० १९९७-२००४

राजस्थान-निर्माण के समय कोटा के राज्य पर महाराव भीमसिंह विराजमान थे। इसका जन्म सं० १९६५ (सन् १९१८) में हुआ था। प्रारम्भ से ही इनकी शिक्षा मेयो कॉलेज अजमेर में हुई। शिक्षा-प्राप्ति व खेलकूद में इन्होंने अपना नाम विद्यार्थी जीवन में उच्च स्तर तक पहुँचा दिया था। मेयो कॉलेज के १९१७ से १९२९ तक विद्यार्थी रहे। बाद में शासन-प्रबंध की शिक्षा प्राप्त करने के लिये महकमा खास और महकमा माल का काम देखने लगे। इनका विवाह महाराजा बीकानेर श्री गंगासिंह की पुत्री से ३० अप्रेल १९३० को हुआ था। अपने पिता की मृत्यु के बाद (२७ दिसम्बर १९४०) कोटा की राजगद्दी पर आप बैठे। इनका शासनकाल राजनैतिक उथल-पुथल का काल था। गद्दी पर बैठते ही द्वितीय महायुद्ध का सामना करना पड़ा। युद्ध-काल में अंग्रेजों के प्रति इन्होंने वही नीति अपनाई जो कि इनके पिता ने अपनाई थी। १९४५ में युद्ध समाप्त होगया तो भारत का राजनैतिक वातावरण क्रांति की ओर अग्रसर होने लगा। कोटा भी इससे अछूता न बच सका। कोटा में अखिल भारतीय लोक परिषद् की शाखा खुलीं। कोटा में स्वशासन स्थापित करने की मांग पर जन आंदोलन हुए। यद्यपि जन आंदोलन कमजोर था परन्तु महाराव समय की गति को देख रहे थे। अगस्त १९४१ में 'भारत छोड़ो आँदोलन' की देखादेखी यहां के प्रताप मण्डल ने भी पूर्ण उत्तरदायी शासन की मांग की। तथा रियासत का अंग्रेजी सरकार से संबंध विच्छेद के लिये महाराव को कहा गया। इस पर कोटा में उपद्रव हुए। नेता गिरफ्तार किये गये। इस पर जनता ने बहुत विरोध किया। महाराव ने किसी प्रकार जनता से समझौता कर लिया। १५ अगस्त १९४७ को भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। महाराव कोटा ने अपने यहां १९४७ के प्रारम्भ में ही जन-प्रिय सरकार की स्थापना की। सरदार पटेल, केन्द्रीय ग्रहमंत्री की देशी राजनीति पर छोटे २ राज्यों का एकीकरण प्रारम्भ हुआ। राजस्थान के छोटे राज्यों ने भी बड़ा राजस्थान बनाने में सहायता दी। महाराव कोटा इस काम में अग्रणी थे। २५ मार्च १९४८ को स रियासतों को छोटे राजस्थान का निर्माण हुआ[1]।

१ इसमें बांसवाड़ा, बून्दी, डूंगरपुर, झालावाड़, किशनगढ़, कोटा, प्रतापगढ़, शाहपुरा टोंक सम्मिलित हुए थे।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

बाद में इसमें उदयपुर के १८ अप्रेल १९४८ को शामिल हो जाने पर उदयपुर के महाराणा भोपालसिंह राजप्रमुख बनाये गये और कोटा महाराव भीमसिंह उप-राजप्रमुख बने। जब वृहत राजस्थान ३० मार्च १९४९ को बना[1] तो जयपुर के शासक मानसिंह राजप्रमुख बने और महाराव भीमसिंह उप-राजप्रमुख बने। यह पद उन्होंने ३१ अक्टूबर १९५६ तक संभाला। बाद में १ नवम्बर १९५६ से राजप्रमुख प्रथा समाप्त करदी गई।

महाराव भीमसिंह शिक्षा-प्रेमी रहे हैं। राजस्थान विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग की चेयर की स्थापना के लिये धन देकर राजस्थान के इतिहास व खोज के लिये विद्यार्थियों को उत्साहित किया है।

कोटा राज्य का मुगलों से संबंध

१३वीं शताब्दी के अन्तिम चरण, १२७४ ई० में बून्दी के शासक राव समरसिंह के पुत्र जैतसिंह ने कोट्या भील से अकेलगढ़ के युद्ध में कोटा छीन कर हाड़ाओं का राज्य वहाँ स्थापित किया। यद्यपि कोटा पृथक राज्य केन्द्र हो गया था परन्तु कोटे के शासक बून्दी नरेश की अधीनता में रहा करते थे। ई० १५४६ में कोटे पर मालवा के कैसरखाँ और डोकरखाँ पठान सैनिकों का अधिकार हो गया। राव सुर्जन हाड़ा ने इनसे कोटा सन् १५६१ में छीन लिया और अपने पुत्र भोज के सुपुर्द कर दिया[2]। जब राव सुर्जन ने अकबर के साथ रणथम्बोर समर्पण करने की संधि १५६९ ई० में की तो सम्भव है कि कोटा

१ इसमें बीकानेर, जयपुर, जयसलमेर व जोधपुर की रियासतें भी शामिल हो गईं।

२ बून्दी राज्य का इतिहास, बून्दी राज्य का मुगलों से सम्बन्ध।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

राज्य का फरमान अकबर से प्राप्त कर कोटा का कानूनी अधिकार स्थापित किया हो। सं० १६३६ (१५७६ ई०) के गेपरनाथ के शिलालेख के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कोटा में राजकुमार भोज का राज्य स्वतन्त्र रूप से था। जब भोज बून्दी की गद्दी पर बैठा तो उसका पुत्र हृदयनारायण कोटे का राजा बना और उसने शाही फरमान प्राप्त किया[1]।

(क) मुगल राजनीति की देन—'कोटा'—कोटा की स्वतन्त्र राज्य के रूप में स्थापना मुगल सम्राटों की देन कहा गया है। शाहजादा खुर्रम के विद्रोह के कारण बादशाह जहाँगीर की स्थिति अत्यन्त शोचनीय होने लगी थी। उस समय बून्दी के राव रतन ने जहाँगीर की सहायता की[2]। इस सेवा से प्रसन्न होकर जहाँगीर ने कोटा राज्य का फरमान राव रतन को दे दिया। राव रतन ने अपने पुत्र माधोसिंह को उस राज्य का अधिकारी बना दिया। राव रतन की मृत्यु के बाद माधोसिंह एक स्वतन्त्र शासक के रूप में कोटा पर शासन करने लगा।

जहाँगीर के राज्यकाल में नूरजहाँ का मुगल राजनीति पर प्रभावशाली अधिकार था। १६२२ ई० तक नूरजहाँ मुगल परम्पराओं के अनुसार राज्य करती परन्तु उसके बाद उसकी गर्वीली तथा महत्वाकांक्षी प्रवृत्तियों के कारण झगड़े उत्पन्न होने लगे। जहाँगीर का स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिरने लगा। नूरजहाँ को भय हुआ कि कहीं जहाँगीर की मृत्यु के बाद वह राज्य सत्ता से पृथक न करदी जाय। वह यह पद मृत्युपर्यन्त तक चाहती थी। जहाँगीर के बाद शाह बनने की योग्यता शाहजादे खुर्रम में ही थी और खुर्रम नूरजहाँ के प्रभाव में रहने वाला व्यक्ति नहीं था। अतः नूरजहाँ खुर्रम को राज्य प्राप्ति से दूर रखने के लिए योजनाएँ बनाने लगी। जहाँगीर का सबसे छोटा पुत्र शहरयार था। वह अयोग्य और निकम्मा था। उसे राज्य का उत्तराधिकारी बना कर नूरजहाँ स्वयं शासन करना चाहती थी। इसके अलावा नूरजहाँ और खुर्रम धार्मिक दृष्टि से एकमत नहीं हो सकते थे। नूरजहाँ शिया मत की थी तो खुर्रम सुन्नी[3]। अतः शहरयार को राज्यारूढ़ करने की योजना को सफल बनाने के लिए उसने शेर-अफगन से उत्पन्न अपनी कन्या लाड़ली बेगम की शादी शहरयार से अप्रेल १६२१

---

१ टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १४८६ फुटनोट नं० २।

२ सागर फूटचो जल बह्यो, अबकी करो जतन।
जातो गढ़ जहाँगीर को, राख्यो राव रतन॥ टाड : पृ० १४८६।

३ डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव : मुगलकालीन भारत, पृ० ३२३-३२४।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ई० में करदी। शहरयार ८००० जात व ४००० सवार का मनसबदार बनाया गया। इसी वर्ष नूरजहाँ के माता-पिता का देहांत हो गया। ये दोनों व्यक्ति नूरजहाँ की निरंकुशता को रोके हुए थे। नूरजहाँ का भाई आसफखाँ खुर्रम का स्वसुर था इसलिए उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता था। खुर्रम और नूरजहाँ की अनबन के कारण राज्य शक्ति शिथिल होने लगी और ठीक इसी समय फारस के शाह ने १६२२ ई० में कन्धार पर अधिकार कर लिया।

कन्धार की पुनः-प्राप्ति का उत्तरदायित्व खुर्रम पर सौंपा गया परन्तु वह इस योजना को नूरजहाँ का षड़यन्त्र समझ कर अपनी सुरक्षा के लिए सेना पर पूर्ण नियन्त्रण, पंजाब पर अधिकार व रणथम्भोर के किले को प्राप्त करना चाहा। खुर्रम की यह मांग नूरजहाँ के लिए चुनौती थी अतः उसने शहरयार को कन्धार-विजय का भार सौंपा। धौलपुर की हाकिमी के लिए भी नूरजहाँ और खुर्रम में मनमुटाव था। खुर्रम की ओर से दरियाखाँ व शहरयार की ओर से शरीफ-उल-मालिक धौलपुर की हुकूमत पर अधिकार करने चले। दोनों में मुठभेड़ हो गई। नूरजहाँ ने सारा दोष खुर्रम का बतला कर जहाँगीर को खुर्रम से पृथक कर दिया। इसी समय नूरजहाँ ने काबुल से महावतखाँ को बुला भेजा। उसके पद में वृद्धि की गई। शाहजादा परवेज को बंगाल से बुला लिया गया। इसी समय खुर्रम ने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। माण्डु को अपना मुख्य केन्द्र बनाया। मेवाड़ के राणा से पगड़ी-बदल भाईचारा स्थापित किया। उसके राजकुमार भीमसिंह को अपना सेनापति बनाया[1]।

ऐसी स्थिति में बून्दी का राव रतन तथा कोटे का हृदयनारायण नूरजहाँ व जहाँगीर की सहायता को पहुँचे। राव रतन के साथ उसके दो पुत्र माधोसिंह व हरिसिंह भी थे[2]। खुर्रम के विरुद्ध महावतखाँ व शाहजादा परवेज भेजा गया। परवेज को ४०,००० जात व ३०,००० सवार का मनसब दिया गया। मांडु के घेरे में राव रतन भी शामिल था। खुर्रम हार कर भाग गया। वह नर्मदा पार कर असीरगढ़ की ओर चला। खुर्रम ने राव रतन को मध्यस्थ बना कर संधि की बातचीत करनी चाही परन्तु शर्तें तय नहीं[3] होने के कारण खुर्रम को भाग कर

---

१ विद्रोह की ध्वजा फहरा कर खुर्रम ने पहले आगरा लेना चाहा पर १६२३ ई० में बिल्लोचपुरे में उसकी हार हुई। उपरोक्त, पृ० ३२६।

२ ईश्वरीप्रसाद : ए शार्ट हिस्ट्री आफ मुस्लिम रूल इन इन्डिया, पृ० ५१४-५१५। गौरीशंकर ओझा : राजपूताने का इतिहास, भाग ३, पृ ८२५।

३ बेणीप्रसाद : जहाँगीर, पृ० ३७०।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

असीरगढ़ के किले में शरण लेनी पड़ी। अपने कुटुम्ब को वहीं छोड़ कर वह बुरहानपुर चला गया। उसने अहमदनगर से मलिम अम्बर की सहायता प्राप्त करनी चाही परन्तु उसे सहायता न मिली। मुगल-राजपूत सेना ने बुरहानपुर घेर लिया। खुर्रम भाग कर गोलकुण्डा पहुँचा। बुरहानपुर विजय का मुख्य श्रेय राव रतन को दिया गया। अतः उसे बुरहानपुर का हाकिम नियुक्त किया गया। उसके दोनों पुत्रों ने भी युद्ध में भाग लिया था। गोलकुण्डा से खुर्रम उड़ीसा होकर बंगाल पहुँचा। वहाँ स्वतन्त्र सत्ता स्थापित की। उसके सेनापति भीमसिंह सिसोदिया ने बिहार पर अधिकार कर लिया। विद्रोही सेना भीमसिंह के नेतृत्व में इलाहाबाद की ओर बढ़ने लगी। इस पर जहाँगीर ने दक्षिण से महावतखां और परवेज को खुर्रम का रास्ता रोकने के लिए बुला भेजा। परवेज ने बुरहानपुर के पास के इलाकों का शासक राव रतन को नियुक्त किया[1]। हृदयनारायण परवेज के साथ पूर्व की ओर खुर्रम के विरुद्ध गया। भूंसी के स्थान पर खुर्रम हार कर भाग गया। हृदयनारायण भी युद्ध के समय भाग चुका था अत. जहाँगीर ने उससे कोटा छीन कर अस्थायी रूप से राव रतन को सौंप दिया।

ज्योंही महावत खां और परवेज दक्षिण से हटे, अहमदनगर के मलिक अम्बर ने शाही सेना पर हमला करना आरम्भ किया। पर राव रतन ने बुरहानपुर पर शाही अधिकार बनाए रखा। भूंसी के युद्ध में हार कर खुर्रम पुनः उड़ीसा, तेलंगाना और गोलकुण्डा होता हुआ अहमदनगर पहुँचा। इस बार मलिक अम्बर से मित्रता स्थापित हो गई। दोनों ने बुरहानपुर का घेरा डाल दिया। घोर संग्राम हुआ। राव रतन ने अत्यन्त कठिनाई में होते हुए भी विजय प्राप्त की। महावत खां व परवेज पुनः दक्षिण की ओर चले। इस पर खुर्रम ने घेरा उठा लिया। इस युद्ध में राव रतन को बहुत सा धन प्राप्त हुआ। शत्रु के ३०० सैनिक कैद कर लिए गए। माधोसिंह व हरिसिंह युद्ध करते हुए घायल[2] तो अवश्य हुए परन्तु माधोसिंह की सेवाओं से प्रसन्न होकर जहांगीर ने १६२४ ई० में कोटा का राज्य माधोसिंह के नाम पर स्वीकार करने की अनुमति देदी।

बुरहानपुर से हार कर खुर्रम दक्षिण की ओर भागने लगा परन्तु इसमें

---

१ खफीखां : जिल्द १, पृ० ३४८।
टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १४८७।
२ इलियट डाउसन : जिल्द ६, पृ० ३९५ तथा ४१८।
वंशभास्कर : जिल्द ३, पृ० २४८७, २५००—०४

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

वह सफल न हो सका। वह कैद कर लिया गया[1]। राव रतन व महावतखां दोनों ही बुरहानपुर के शासक नियुक्त हुए। महावतखां को जब शाही दरबार में बुलाया गया तो राव रतन को बुरहानपुर का फौजदार बनाया गया[2]। खुर्रम की देख-रेख का भार हरिसिंह पर छोड़ा गया परन्तु उसका व्यवहार खुर्रम के साथ नौकरों जैसा था। इस पर माधोसिंह को यह कार्य सौंपा गया। माधोसिंह ने उसके साथ मित्रता व प्रेम का व्यवहार रख कर खुर्रम को अपनी ओर कर लिया[3]। मार्च १२, १६२६ को नूरजहाँ ने खुर्रम को यह आदेश देकर क्षमा देनी चाही कि रोहतासगढ़ व असीरगढ़ के दुर्ग जहांगीर को सौंप दे। उसने यह स्वीकार किया परन्तु दिल्ली में हाजिर न होने की आज्ञा चाही। आज्ञा न मिलने पर खुर्रम बुरहानपुर की कैद से भाग खड़ा हुआ। राव रतन व माधोसिंह का इस घटना में हाथ रहा हो क्योंकि भागने के पूर्व खुर्रम ने राव रतन को पत्र लिखा कि "कारागार में माधोसिंह ने मुझे बहुत आदरपूर्वक रखा है और मालिक समझा है। मैं इसको विशेष राज्य देकर सम्मानित करूंगा[4]।" इस घटना का उल्लेख कहीं नहीं मिलता है। वंशभास्कर के रचयिता सूर्यमल मिश्रण की कल्पना हो सकती है पर खुर्रम ने शाहजादा बनते ही हरिसिंह को बुला भेजा। इस भय से, कहीं पुराने व्यवहार के कारण उसे दण्ड प्राप्त न हो इसलिए राव रतन ने उसे उपस्थित नहीं किया। इस पर शाहजहाँ ने बून्दी के ८ परगनों को जप्त कर लिया।

जहांगीर काश्मीर से लौटता हुआ लाहोर के पास ७ नवम्बर १६२७ ई० को मर गया। खुर्रम ने अपने स्वसुर आसफजहाँ की सहायता से दिल्ली की राज्य-गद्दी प्राप्त करली। वह शाहजहाँ के नाम से १६२८ ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ। राव रतन ने शाहजहाँ का माधोसिंह की सेवाओं की ओर ध्यान आकर्षित किया। शाहजहाँ ने कोटे राज्य का फरमान माधोसिंह के नाम पर कर दिया[5]। राव रतन ने बून्दी के आठ परगने भी माधोसिंह को दे दिए। राव रतन के देहान्त के बाद (१६३१ ई०) माधोसिंह ने अपना राज्याभिषेक किया और महाराजाधिराज की पदवी धारण की। इस अवसर पर शाहजहाँ ने माधोसिंह को खिलअत प्रदान की और उसको २५०० जात व २५०० सवारों का मनसबदार बना दिया। इस तरह कोटा का स्वतन्त्र राज्य मुगल राजनीति की देन कहा जा सकता है।

---

१ वंशभास्कर : जिल्द ३, पृ० २४९९।
२ इलियट डाउसन : जिल्द ६, पृ० ४१२-४१५।
३ वंशभास्कर : जिल्द ३, पृ० २५१०-२५१२।
४ उपरोक्त : पृ० २५२३-२६।
५ वंशभास्कर : जिल्द ३, पृ० २५४०-४१-४३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

माधोसिंह की मुगल साम्राज्य-सेवाः—राव माधोसिंह अपनी राज्य-भक्ति के कारण शाहजहाँ का कृपापात्र बन गया। अब तक शाही दरबार में जोधपुर, जयपुर, बीकानेर व जैसलमेर आदि राजपूताने की रियासतों के शासकों का ही प्रभाव था परन्तु प्रथम बार बून्दी और कोटा के हाड़ा राजपूतों ने साम्राज्य-सेवा में प्रवेश कर शाहजहाँ व उसके बाद की मुगल राजनीति को प्रभावित करना शुरू किया। शाहजहाँ के गद्दी पर बैठते ही उसे कई विद्रोहों का सामना करना पड़ा। पहला विद्रोह खानजहां लोदी का था जिसने १६२८ ई० में दक्षिण में बालघाट की सूबेदारी से हटाने पर विद्रोह कर दिया। धौलपुर के पास युद्ध में माधोसिंह हाड़ा के नेतृत्व में मुगल सेना से वह हार गया। खानजहां इस पर दक्षिण की ओर भाग गया और निजाम शाही सुल्तानों से वह मिल गया। माधोसिंह ने खानजहाँ का पीछा किया। उज्जैन के पास पुनः दोनों की सेनाओं में भिड़न्त हुई। वह बुन्देलखंड जा पहुँचा। वहां जुझारसिंह बुन्देला भी शाहजहाँ के विरुद्ध विद्रोही हो रहा था। खानजहाँ कालिन्जर के उत्तर में तालसिंघाड़े के पास मुगल सेना से घिर गया। इस युद्ध में माधोसिंह हाड़ा ने खानजहाँ को अपनी बर्छी से छेद दिया। उसके दोनों पुत्रों के टुकड़े कर डाले गए। तीनों के सिर बादशाह के समक्ष नजर किए गए[1]। शाहजहाँ ने इस विजय के उपलक्ष्य में जीरापुर, खैराबाद, चेचट और खिलचीपुर के चार परगने माधोसिंह को दिए और उसे तीनहजारी मनसबदार बना दिया[2]।

शाहजहाँ के समय वीरसिंह बुन्देला के पुत्र जुझारसिंह ने भी अपनी स्वतंत्र इकाई के लिए मुगलों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। विद्रोह का मुख्य कारण उससे बुन्देलखण्ड के हिसाब की जांच की आज्ञा कहा जाता है। इसे अपना अपमान समझ कर १६३५ ई० में उसने ओरछा में स्वतन्त्र ध्वजा फहरा दी। इस विद्रोह को दबाने के लिए शाहजहाँ ने माधोसिंह हाड़ा से सहायता की आशा की। माधोसिंह १५०० हाड़ा सैनिकों को लेकर बुन्देला-विद्रोह दबाने चला। जुझारसिंह पर उसने शानदार विजय प्राप्त की, इससे मुगल दरबार में माधोसिंह की प्रतिष्ठा

---

१ बादशाहनामा : जिल्द १, भाग २, पृ० ३४८-५०; वंशभास्कर : तृतीय भाग, पृ० २५६५। डा. ए. एल. श्रीवास्तव लिखते हैं कि खानजहाँ लोदी बांदा जिले के सिंहसदा नामक स्थान पर पकड़ा गया और मारा गया। (मुगलकालीन भारत : पृ० ३५१); इलियट व डाउसन : जिल्द ७, पृ० २०-२२।

२ ठाकुर लक्ष्मणदास ने कोटा राज्य की ख्यात में इस वीरता के उपलक्ष्य में माधोसिंह को १७ परगने देना लिखा है। फारसी तवारीखों में इसका उल्लेख नहीं है। पर माधोसिंह की मृत्यु के समय कोटा राज्य में ये परगने सम्मिलित थे। डा० एम. एल. शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० ११२।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

बढ़ने लगी। १६४१ ई० में पंजाब में कांगड़ा में विद्रोह हुआ। वहाँ के सूबेदार जगतसिंह ने मुगलाई सार्वभौमिकता से अपने को स्वतन्त्र कर लिया। शाहजादा मुराद के नेतृत्व में कांगड़ा पर आक्रमण करने के लिए एक बहुत बड़ी सेना भेजी गई। माधोसिंह भी मुराद के साथ चला। आक्रमण की सफलता के बाद माधोसिंह के मनसब में ५०० की वृद्धि की गई।

कोटा के हाड़ा शासकों ने मुगल शक्ति को मध्य एशिया तक पहुँचाने में पूर्ण मदद की। शाहजहाँ मुगलों की मातृभूमि समरकन्द पर अधिकार करने की योजना निर्मित की। इसी समय समरकन्द की राजनैतिक स्थिति मुगल आक्रमण के पक्ष में थी। समरकन्द के शासक इमामकुली के भाई नजरमोहम्मद ने काबुल पर अधिकार करने की कई बार चेष्टा की। उसकी इन हरकतों को रोकने के लिए सन् १६४५ ई० में शाहजहाँ स्वयं काबुल गया और समरकन्द विजय का भार मुराद को सौंपा। उसे ५०,००० सैनिक-शक्ति दी गई। उस समय माधोसिंह लाहोर में था। समरकन्द विजय में शामिल होने का उसे फरमान भेजा गया[1]। काबुल पहुँचने पर माधोसिंह को हरावल में रखा गया। शाही सेना के ३ भाग कर दिए गए। एक भाग में रावराजा शत्रुशाल, दूसरे भाग में विट्ठलदास राठौड़ व तीसरे भाग का नेतृत्व माधोसिंह को दिया गया। इस सेना ने कन्दल के किले पर २२ जून को आक्रमण कर अधिकार कर लिया। २ जुलाई १६४६ को बाल्ख में यह सेना प्रवेश करने लगी। नजरमोहम्मद भाग गया। उसका कुटुम्ब गिरफ्तार कर लिया गया। सारा शहर लूट लिया गया। अतुल धन प्राप्त कर तिरमिज पर अधिकार हो जाने पर मुराद बिना शाही आज्ञा के भारत लौट आया। बाल्ख की रक्षा का भार माधोसिंह हाड़ा को सौंपा गया। मुराद की अनुपस्थिति में नजरमोहम्मद और तुरान के शासक अब्दुलअजीज ने बाल्ख लेना चाहा परन्तु माधोसिंह ने बाल्ख और उसके आसपास के क्षेत्रों से मुगलों का अधिकार नहीं हटने दिया। इसी बीच शाहजहाँ ने औरंगजेब को अतिरिक्त सेना देकर बाल्ख भेजा। मार्ग में शत्रुओं को हराता हुआ औरंगजेब २५ मई सन् १६४७ ई० को बाल्ख पहुँचा। शाहजहाँ ने माधोसिंह के लिए चाँदी के आभूषणों से अलंकृत एक घोड़ा भेजा। औरंगजेब ने भी बाल्ख की किलेदारी माधोसिंह पर छोड़ तथा साथ में शाही खजाना, रसद आदि का भार भी छोड़ कर औरंगजेब नजरमोहम्मद को पूर्ण शिकस्त देने चला। कभी नजरमोहम्मद विजयी हुआ तो कभी औरंगजेब। ७ जून १६४७ ई० को बाल्ख के पास भयंकर युद्ध हुआ। इसमें बाल्ख, बदकशां का शासक अब्दुलअजीज व कई उजबेक सरदार शामिल

१ अब्दुलहमीद : जिल्द २, पृ० ४२३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

थे। दोनों ओर से शान्ति-प्रयास किया। नजरमोहम्मद इसके लिए तैयार नहीं था। शाहजहाँ के लिए मध्य एशिया-विजय महंगी पड़ रही थी। अतः उसने औरंगजेब को लिखा कि यदि नजरमोहम्मद क्षमा-याचना करले तो संधि कर लेना। बाध्य होकर औरंगजेब ने नजरमोहम्मद से सन्धि कर १० नवम्बर १६४७ ई० को काबुल लौट जाना पड़ा। इस लौटती हुई सेना पर उजबेगों ने कई बार आक्रमण किया। मध्य एशिया की नीति शाहजहाँ के लिए महंगी पड़ी। कई करोड़ रुपयों की हानि के बाद भी मुगलों ने एक इन्च की भूमि प्राप्त नहीं की। उनकी प्रतिष्ठा को धक्का लगा। बाल्ख से लौटने पर राव माधोसिंह की मृत्यु सन् १६४८ ई० में कोटे में हो गई। माधोसिंह मरते समय ३००० का मनसबदार था[1]। बाल्ख और बदकशां आक्रमण के समय उसके दो पुत्र मोहनसिंह व किशोरसिंह साथ थे जो क्रमशः ८०० और ४०० के मनसबदार थे[2]।

मुकुन्दसिंह और मुगल—सन् १६४६ ई० में राव मुकुन्द कोटे की गद्दी पर बैठा। शाहजहाँ ने उसे खिलअत दी व उसे ३००० का मनसबदार बनाया। गद्दी पर बैठते ही उसे मुगल-सेवा में बुला लिया गया। १६२३ ई० में शाह अब्बास, फारस सुल्तान ने कन्धार को अपने अधिकार में कर लिया था। १६३५ ई० में कन्धार के सूबेदार अलीमर्दनखां ने शाह अब्बास से क्रोधित होकर कन्धार मुगलों को सौंप दिया परन्तु १६४८ ई० में फारस के शासक ने पुनः कन्धार पर अधिकार कर लिया। शाहजहाँ ने तीन बार कन्धार लेने का प्रयत्न किया। सन् १६४६ व १६५२ में औरंगजेब के नेतृत्व में और १६५३ ई० में दारा के नेतृत्व में। तीनों बार असफलता प्राप्त हुई। मुकुन्दसिंह ने कन्धार-प्राप्ति के लिए दारा की हरावल में युद्ध में भाग लिया[3]।

मुकुन्दसिंह के समय सन् १६५७ ई० में शाहजहाँ के चारों पुत्रों—दारा, शुजा, औरंगजेब व मुराद में राज्य-प्राप्ति के लिए युद्ध हुआ[4]। दारा ने औरंगजेब व मुराद के विरुद्ध जोधपुर नरेश राजा जसवन्तसिंह को भेजा। मुकुन्दसिंह को भी शाही फरमान प्राप्त हुआ कि जसवन्तसिंह की सहायता के लिए फौजें

---

१ अब्दुलहमीद : जिल्द २, पृ० ७२२; डा० एम. एल. शर्मा, कांगड़ा-विजय के बाद माधोसिंह को ४५०० का मनसबदार लिखते हैं (कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० १३०)

२ मुंशी मूलचन्द : पृ० ६६।

३ डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, जिल्द १, पृ० १४२; परन्तु इनायतखां ने कन्धार के घेरे के वर्णन में मुकुन्दसिंह का कहीं उल्लेख नहीं किया है (शाहजहांनामा, पृ० ८८)।

४ डा० ए. एल. श्रीवास्तव : मुगलकालीन भारत, पृ० ३७२-३८०।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भेजे। मुकुन्दसिंह ५००० सैनिकों और अपने भाई मोहनसिंह, जुझारसिंह, कनीराम और किशोरसिंह को साथ लेकर जसवन्तसिंह से जा मिला। धर्मत के स्थान पर मुगल-राजपूत सेना ने औरंगजेब-मुराद की सेना का सामना किया। मुकुन्दसिंह व उसके भाई युद्ध करते हुए मारे गए। सबसे छोटा भाई किशोरसिंह घायल होकर युद्धक्षेत्र में गिर पड़ा[१]। जसवन्तसिंह जोधपुर भाग गया। औरंगजेब ने इस युद्ध के बाद इस स्थान का नाम फतेहाबाद रखा।

औरंगजेब व कोटा के हाड़ा शासक—शाहजहाँ के पुत्रों में राज्य-प्राप्ति के युद्ध में औरंगजेब सफल हुआ। २१ जुलाई १६५८ को दिल्ली के सिंहासन पर वह बैठा। गद्दी पर बैठते ही उसने राजपूत शासकों के प्रति मित्रता की नीति अपनायी। यद्यपि कोटा का राजा मुकुन्द उसके विरुद्ध धर्मत के युद्ध में लड़ा था फिर भी गद्दी पर बैठते ही उसने राव मुकुन्द के उत्तराधिकारी जगतसिंह को दिल्ली बुला भेजा। जगतसिंह औरंगजेब के फरमान को पाकर दिल्ली के लिए रवाना हुआ। उस समय औरंगजेब दारा का पीछा करता हुआ पंजाब की ओर गया हुआ था। जगतसिंह भी पंजाब की ओर चला। सतलज के समीप जगतसिंह ने औरंगजेब से मुलाकात अगस्त १६५८ ई० को की। इस अवसर पर औरंगजेब ने खिलअत देकर जगतसिंह को २००० का मनसबदार बनाया[२]। पंजाब से लौट कर औरंगजेब शुजा की ओर चला। शुजा शाहजहाँ का द्वितीय पुत्र था। बंगाल का वह सूबेदार बनाया गया था। शाहजहाँ की बीमारी के समय वह वहां का स्वतन्त्र शासक बन बैठा और दिल्ली-प्राप्ति के लिए दारा के विरुद्ध चढ़ आया परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। समूगढ़ के मैदान में दारा औरंगजेब से हार गया। वह पंजाब की ओर भागा। औरंगजेब ने उसका पीछा किया। इसका लाभ उठा कर शुजा ने दिल्ली लेने का पुनः प्रयास किया। वह दिल्ली की ओर बढ़ा। औरंगजेब दारा का पीछा छोड़ शुजा को रोकने के लिये आगरे की ओर गया। कोटा के शासक जगतसिंह हाड़ा व उसके चाचा किशोरसिंह हाड़ा को शाही फरमान प्राप्त हुआ कि वे शुजा को आगरे की तरफ बढ़ने से रोके। खजुहा के रणक्षेत्र में शुजा से भयंकर युद्ध हुआ। जोधपुर नरेश इस युद्ध में औरंगजेब का साथ दे रहा था परन्तु गुप्त रूप से वह शुजा के पक्ष में योजना बना रहा था अतः युद्ध के पहले ही उषाकाल के समय शाही फौज को लूटता हुआ वह आगरे की तरफ चला गया[३]। जगतसिंह ने औरंगजेब का साथ

---

१ आलमगीरनामा : पृ० ५६-५७; टाड : राजस्थान, भाग ३, पृ० १५-२२।

२ वंशभास्कर : तृतीय भाग, पृ० २७३८; टाड : राजस्थान : जिल्द ३, पृ० १५२३।

३ सरकार : हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब : जिल्द २, पृ० १३३-१३४।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

नहीं छोड़ा। विजयश्री औरंगजेब को हाड़ा राजपूतों की वीरता के कारण प्राप्त हुई।

राजपूतों का सहयोग पाकर औरंगजेब ने अपनी शक्ति को सुदृढ़ करली। परन्तु शीघ्र ही बाद में कट्टर सुन्नी होने के कारण वह राजपूतों को दूर रख कर मुसलमानी शासन व्यवस्था के आधार पर राज्य करने लगा। हिन्दुओं के विरुद्ध ध्वंसात्मक नीति अपनाई गई। जब उसने १६७९ ई० में मारवाड़ पर आक्रमण किया[1] तो राजपूताने के राजपूत शासकों को यह मुगलाई चुनौती थी परन्तु फिर भी कोटा के शासक जगतसिंह ने मुगलाई सेवा में तन, मन, धन लगा दिया। दक्षिण में शिवाजी के विरुद्ध मुगल शक्ति को हाड़ा राजपूतों से सशक्त करने का भार उस पर सौंपा गया। जगतसिंह औरंगाबाद में रह कर दक्षिणी युद्धों में भाग लेने लगा। मारवाड़ में औरंगजेब ने मन्दिर-ध्वंस करने की नीति अपनाई। कोटे का शासक अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति का था। अतः कहीं औरंगजेब की इस नीति का शिकार उसके गृह-देवता श्रीनाथजी का मन्दिर नहीं हो जाय, उसके लिए उसने अपने मन्त्रियों को सूचना भेजी कि श्रीनाथजी की प्रतिमा बोरावां के स्थान पर सुरक्षित की जावे। जगतसिंह दक्षिण में हैदराबाद के घेरे के युद्ध में लड़ता हुआ मारा गया[2]। सम्भवतः उसकी मृत्यु सन् १६८३ ई० में हुई हो[3]।

जगतसिंह के कोई पुत्र न होने के कारण उसका चाचा किशोरसिंह गद्दी पर बैठा। वह मुगल सेवा में रहता आया था। खजुहा के रणक्षेत्र में शुजा के विरुद्ध उसने युद्ध किया। दक्षिण में मराठों के विरुद्ध मुगलाई स्वामी-भक्ति का परिचय उसने दिया। बीजापुर, गोलकुण्डा को विजय करने के लिए उसने मुगलों के लिए हाड़ा-रक्त बहाया। राज्याभिषेक के कुछ समय पहले ही उसे एक हजार का मनसब प्राप्त हुआ था। राज्याभिषेक के बाद दक्षिण की ओर वह प्रस्थान करने लगा। वह अपने सब पुत्रों को अपने साथ ले जाना चाहता था परन्तु उसके ज्येष्ठ पुत्र विशनसिंह ने मुगल सेवा में रहने से इन्कार कर दिया। इस पर किशोरसिंह ने उसे राज्य-च्युत कर दिया और अन्ते का जागीरदार बना दिया।

१ जोधपुर नरेश जसवन्तसिंह की मृत्यु १६७८ ई० में जमरूद (काबुल के पास) में हो जाने के कारण मारवाड़ की गद्दी पर उसका पुत्र अजीतसिंह शासक घोषित किया गया परन्तु औरंगजेब ने इसे स्वीकार न कर मारवाड़ को अपने अधीन कर लिया।

२ टाड : राजस्थान : जिल्द ३, पृ० १५२३।

३ टाड के अनुसार इसकी मृत्यु सम्वत् १७२६ वि० स० को हुई परन्तु सम्वत् १७४० में दक्षिण के एक फर्राश की जमानत देने का उल्लेख राजकीय कागजों से प्राप्त हुआ है अतः सम्वत् १७४० के आसपास वह जीवित था।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

बीजापुर के घेरे में किशोरसिंह ने औरंगजेब का पूर्ण विश्वास जीत लिया था। इब्राहिमगढ़ और हैदराबाद के घेरे में जगतसिंह ने मुगलाई-शक्ति को दृढ़ बनाया था। मराठा शासक शंभाजी से रायगढ़ व वसन्तगढ़ छीनने में कोटा के महाराव का प्रमुख हाथ रहा। जिस समय दक्षिण में औरंगजेब युद्ध कर रहा था, उत्तर में जाटों ने विद्रोह कर दिया। शाहजादा बेदारबख्त व किशोरसिंह जाटों के विद्रोह को दबाने के लिए भेजे गए। सन् १६८८ ई० में वह पुनः दक्षिण की ओर चला गया और अर्काट में राजाराम भोंसले से युद्ध करता हुआ घायल हो गया। टाड का कथन है कि किशोरसिंह दक्षिण में अर्काट के किले पर दीवार चढ़ते हुए गिर कर मर गया था। शिवाजी का द्वितीय पुत्र राजाराम जिन्जी में रहा करता था। मुगल सेनापति जुल्फिकारखाँ ने जिन्जी का घेरा डाल कर राजाराम को मुगलाई अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य करने लगा। यह घेरा कई वर्षों तक चलता रहा। जिन्जी के क्षेत्रों में अर्काट पर मुगलाई अधिकार करने में किशोरसिंह ने प्रमुख सहायता दी। जिन्जी में मुगलों की सफलता अत्यन्त कठिनाई से हो रही थी। मुगल सेनापति जुल्फिकारखाँ अर्काट में शरण लेकर जिन्जी युद्ध का संचालन करता रहा। मरने के समय किशोरसिंह चारहजारी मनसबदार था।

किशोरसिंह के मरते ही सन् १६९५ ई० में कोटा गद्दी के लिए उसके पुत्रों में गृह-युद्ध छिड़ गया। ज्येष्ठ पुत्र विशनसिंह ने अपना अधिकार प्रस्तुत किया। औरंगजेब ने रामसिंह को कोटा का शासक स्वीकार कर उसे ३००० का मनसबदार बनाया। मुगलाई सहायता से रामसिंह कोटा के इस गृह-युद्ध में सफल हुआ। सन् १६९६ ई० में रामसिंह का राज्याभिषेक हुआ। वह पुनः दक्षिण की ओर चला गया। कर्नाटक में अरनी को अपना गृह-केन्द्र बना कर[1] मुगल सेना को सहायता देने लगा। दक्षिण में रहते रामसिंह ने मराठा शासक राजाराम से मित्रता स्थापित करली। जब राजाराम जिन्जी के किले में घिर गया और उसके सेनापतियों सन्ताजी घोरपड़े व धन्नाजी जादव में संघर्ष होने शुरू हुए तो राजाराम ने जुल्फिकार से संधि की वार्ता शुरू की। अगस्त सन् १६९७ ई० में राजाराम ने रामसिंह के मार्फत शान्ति-प्रस्ताव मुगल सेनापति के पास भेजे। औरंगजेब शान्ति के पक्ष में न था। वह जिन्जी पर मुगलाई अधिकार चाहता था। राजाराम में नेतृत्व व साहस की कमी होने के कारण ऐसी स्थिति में जिन्जी से भाग निकला और अपने कुटुम्ब को वहीं छोड़ दिया। जिन्जी पर १६९८ ई०

---

१ सरकार : हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, भाग २, पृ० १०४।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

में मुगलों का अधिकार हो गया। रामसिंह ने राजाराम के कुटुम्ब की रक्षा कर उन्हें उत्तर में राजाराम के पास भिजवा दिया। इसके बाद औरंगजेब की मृत्यु तक रामसिंह दक्षिण में ही रहा। वहाँ शाहजादा आजम से घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित कर लिया।

औरंगजेब की मृत्यु अहमदनगर में मार्च १७०७ ई० को हुई। उसकी मृत्यु के बाद दिल्ली सिंहासन के लिए शाहजादा आजम और मुअज्जम में युद्ध की सम्भावना बढ़ने लगी। दक्षिण में शाहजादा आजम ने अपने को सम्राट घोषित कर दिया[1]। रामसिंह ने उसे सम्राट स्वीकार कर उसे सहायता दी। मुअज्जम ने भी उत्तर-पश्चिम क्षेत्र से रवाना होकर १ जून १७०७ ई० को दिल्ली पर अधिकार कर लिया। औरंगजेब की मृत्यु के समय रामसिंह जुल्फिकार के साथ कर्नाटक में था। वहाँ से वह चल कर २ अप्रेल को औरंगाबाद में आजम से मिला। १४ मई को शाही सेना के साथ सिरोंज पहुँचा। सीरोंज से जुल्फिकार व रामसिंह के नेतृत्व में ४५००० सेना चम्बल के थागों पर कब्जा करने के लिए भेजी गई। उधर मुअज्जम के पुत्र अजीम चम्बल के थागों पर अधिकार करने आ रहा था। रामसिंह व जुल्फिकार का नूराबाद[2] के पास चम्बल नदी पर अजीम से संघर्ष हुआ जिसमें अजीम का सेनानायक मोहतशखां तोपें छोड़ कर भाग गया। मुअज्जम ने औरंगजेब के वसियतनामे के अनुसार साम्राज्य का विभाजन कर राज्य करने की सन्धि करनी चाही पर आजम ने इसे स्वीकार नहीं किया[3]। बूंदी से राव बुद्धसिंह ने मुअज्जम का साथ दिया। इस प्रकार हाड़ा राजपूतों की दोनों शाखाओं ने प्रथम बार एक दूसरे के विरुद्ध लड़ना तय किया। वास्तव में दोनों राव 'पाटन' पर प्रभुत्व के लिए मुगलाई सहायता चाहते थे। आजम ने औरंगाबाद में रामसिंह को वचन दिया था कि "मुअज्जम की सहायता से बुद्धसिंह ने तुमसे पाटन छीन लिया है, मैं तुमको बूंदी देता हूँ। तुम मेरे पक्ष में लड़ो[4]।" जून १८, १७०७ ई० को जाजव के रणक्षेत्र में औरंगजेब के पुत्रों में संघर्ष हुआ। आजम हार गया व मारा गया[5]। रामसिंह भी इस युद्ध में

---

१ १४ मार्च १७०७ ई०।

२ ग्वालियर से १६ मील उत्तर की ओर।

३ इरविन : लेटर मुगल्स, जिल्द १, पृ० २२।

४ वंशभास्कर : चतुर्थ भाग, पृ० २९४७।

५ जुल्फिकार भाग कर ग्वालियर चला गया और जयपुर नरेश जयसिंह अपने सिर पर दुशाला लपेट कर चपके से मुअज्जम् से जा मिला। (वंशभास्कर : चतुर्थ भाग, पृ० २९८०-२९८३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

वीरतापूर्वक लड़ते हुए मारा गया। युद्ध की समाप्ति पर मुअज्जम के आदेश से रामसिंह का शव रणक्षेत्र से उठा कर नूराबाद लाया गया और वहाँ उसका दाह-संस्कार हुआ। रामसिंह मुगलों का तीनहजारी मनसबदार था तथा मुगल दरबार में वह अपने तोपखाने के कारण भड़बाया कहलाने लगा था।

मुगलों का पतन और कोटा के हाड़ा शासक—औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल राजनीति का दिवाला स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगा। प्रान्तीय शक्तियां स्वतन्त्र होने लगीं। केन्द्रीय शक्ति में शिथिलता आई और राज्य में ऐसा कोई कूटनीतिज्ञ नहीं था जो सही नेतृत्व दे सके। जाजव के युद्ध के बाद मुअज्जम विजयी हो बहादुरशाह के नाम पर दिल्ली-सिंहासन पर बैठा। बूंदी के राव बुद्धसिंह ने बहादुरशाह से कोटे पर अधिकार करने का फरमान प्राप्त कर लिया[1]। कोटा का रामसिंह व उसके उत्तराधिकारी मुअज्जम-विरोधी होने के कारण कोटा को मुगलाई कोप से बचा न सके। बुद्धसिंह ने अपने मन्त्रियों को आज्ञा दी कि आक्रमण कर नव शासक राव भीमसिंह से कोटा छीन लें। बुद्धसिंह स्वयं जयपुर और वेंगू विवाह करने चला गया। बूंदी के मन्त्रियों ने दो बार कोटे पर चढ़ाई की परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। बहादुरशाह अधिक समय तक शासन न कर सका। फरवरी १७१२ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। उसके बाद जहांदारशाह गद्दी पर बैठा। वह कुछ मास के लिए ही शासन कर सका क्योंकि सैयद भाई अब्दुला व हुसैनअली की सहायता से फरूखसियार ने फरवरी १७१३ में दिल्ली पर अधिकार कर लिया।

फरूखसियार के गद्दी पर बैठने पर राजनैतिक स्थिति ने पलटा खाया। बुद्धसिंह ने फरूखसियार को कोई सहायता नहीं दी। कोटा के राव भीमसिंह ने सैयद-बन्धुओं का पक्ष लिया था। इस सहायता के बदले में पुरस्कारस्वरूप भीमसिंह को बूंदी पर अधिकार करने का मुगल फरमान दिया[2]। भीमसिंह ने बूंदी पर आक्रमण कर उस पर सन् १७१३ ई० के अन्तिम माह में अधिकार कर लिया। भीमसिंह का बूंदी पर अधिक समय तक अधिकार न रह सका। जयसिंह की मध्यस्थता द्वारा बुद्धसिंह पुनः मुगल शासक का प्रिय पात्र बन गया। बूंदी पर पुनः बुद्धसिंह का अधिकार हो गया। बारां व मऊ के परगने भी बुद्धसिंह को दे दिए गए। भीमसिंह व बुद्धसिंह की शत्रुता का अन्त फिर भी न हुआ। सन् १७१६ ई० को सैयद-बन्धुओं ने मराठी व राठौड़ी सहायता से फरूखसियार

---

१ वंशभास्कर : चतुर्थ भाग, पृ० २९९८-९९।

२ वंशभास्कर : चतुर्थ भाग, पृ० ३०४०-४२।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

को गद्दी से उतार दिया। भीमसिंह ने बुद्धसिंह के विरुद्ध सैयद-भाइयों की सहायता प्राप्त की। भीमसिंह की सलाह पर, कि कहीं बुद्धसिंह और जयसिंह फरूखसियार का पक्ष न लेलें। अतः उनका काम तमाम कर देना चाहिए। सैय्यद बन्धुओं ने २२ फरवरी १७१९ ई० को फरूखसियार पर दबाव डाला कि जयसिंह व बुद्धसिंह को दिल्ली से चले जाने का आदेश देदे। इसी दिन भीमसिंह ने बुद्धसिंह की हत्या करने के लिए उस पर आक्रमण कर दिया। बुद्धसिंह का दीवान व कई आदमी मारे गए। भीमसिंह को विजय प्राप्त हुई और बुद्धसिंह अपने बचेबचाए सैनिकों को लेकर सराय अलीवर्दीखां में जाकर जयसिंह का आश्रय प्राप्त किया[1]। सैय्यदों का पक्ष ग्रहण करने से भीमसिंह का शाही दरबार में बहुत सम्मान बढ़ा। उसको पंचहजारी मनसब दिया गया। बूंदी राज्य, पठार, मांडलगढ़ से बूंदी तक के इलाके और खींचीपाड़े तथा उमटवाड़े का उसको पट्टा दे दिया गया[2]। इसी अवसर पर गागरोण का किला भी उसे सुपुर्द किया गया। फरूखसियार को गद्दी से उतारने में (२८ फरवरी १७१९ ई०) भीमसिंह ने सैय्यद अजीतसिंह की सहायता की। उसके एक दिवस पहले २७ फरवरी को ही शाही किले पर अधिकार भीमसिंह व कुतुबमुल्मुल्क ने कर लिया था। फरूखसियार के बाद मुगलों की राजधानी दो दल—इरानी व तुरानी—में बंट गई। सैयद-बन्धुओं ने एक के बाद एक नया शासक मुगल गद्दी पर बैठाया। दक्षिण का सूबेदार निजाममुल्मुल्क सैयदों का प्रभाव नष्ट करने के लिए तैयारी करने लगा। इसी बीच में इलाहाबाद का सूबेदार छबेलाराम ने सैयदों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। राव राजा बुद्धसिंह ने छबेलाराम को दस हजार सैनिकों की सहायता दी। इस पर सैयदों ने भीमसिंह और दिलावरखां को १५००० सैनिक देकर बूंदी पर आक्रमण करने भेजा। १२ फरवरी १७२० के आसपास यह युद्ध हुआ, जिसमें ६००० राजपूत काम आए[3]। इसी समय निजामुल्मुल्क दक्षिण से मालवा पहुँचा। सैयदों का हुक्म आया कि दिलावरखां, भीमसिंह और गजसिंह का साथ लेकर वह अपनी सेना का पड़ाव मालवा प्रान्त की सीमा पर डाले। इस अवसर पर भीमसिंह को वचन दिया गया कि निजाम का दमन होने के पश्चात् उसको उच्च कोटि का महाराजा बनाया जावेगा,

---

१ खफीखां : जिल्द २, पृ० ८०६ :

वंशभास्कर के अनुसार यह युद्ध सन् १७१७ में हुआ। यह असत्य है, क्योंकि फारसी तवारीखों में सन् १७१९ ई० में फरूखसियार का राज्यगद्दी पर से उतरना लिखा है।

२ टाड : राजस्थान, भाग ३, पृ० १५२८।

३ खफीखां : जिल्द २, पृ० ८४४-८५१।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सातहजारी मनसब दी जावेगी। साथ ही शाही मरतब भी मिलेगा[1]। भीमसिंह २००० राजपूतों सहित व गजसिंह ३००० राजपूतों सहित युद्धक्षेत्र में जा डटा। पन्धार के स्थान पर १६ जून १७२० ई० को युद्ध हुआ। युद्ध के पहले निजाम ने भीमसिंह को एक पत्र लिख कर अपनी ओर करना चाहा[2] परन्तु भीमसिंह अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहा। कोराई बोरासा के क्षेत्र में युद्ध करते हुए तोप के गोले लगने के कारण उसकी मृत्यु हो गई। भीमसिंह मरने के समय पंचहजारी मनसबदार था और उसे फरूखसियार ने महाराव की पदवी से विभूषित किया था।

भीमसिंह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अर्जुनसिंह गद्दी पर बैठा। मुहम्मदशाह ने उसे खिलअत और मसनदनशीनी भेजी। १७२० ई० में सैयद-भाइयों का पतन हो गया। अर्जुनसिंह सैयदों का खैरख्वाह होने से मुहम्मदशाह ने उसे कोई तरक्की नहीं दी। अर्जुनसिंह के बाद दुर्जनशाल कोटे का शासक हुआ। इस समय मुगल शक्ति अत्यन्त क्षीण हो चली थी। प्रांतीय शक्तियों को स्वतन्त्र होने का पूर्ण अवसर प्राप्त हो रहा था। जयपुर का जयसिंह वृहत् जयपुर-निर्माण का स्वप्न देखने लगा। उसने बूंदी व कोटा पर अधिकार करने का प्रयास किया। मुगल शक्ति इन राजपूत शासकों की अनुशासनहीनता को दबाने में अशक्त थी। दक्षिण में मराठे शक्तिशाली हो रहे थे। वे मुगल शक्ति के अवशेषों पर हिन्दूपद बादशाही की स्थापना में संलग्न थे। राव दुर्जनशाल कोटा का अंतिम शासक था जिसने मुगलों से संबंध बनाए रखा। मुहम्मदशाह ने राव दुर्जनशाल को टीके का हाथी, खिलअत तथा मनसदनशीनी भेजी। दुर्जनशाल जब दिल्ली गया तो वहाँ का गौवध उसे बुरा लगा। उसने शाही कोतवाल और कसाइयों को मार डाला, पर बादशाह ने उसको कोई दण्ड नहीं दिया।

इसी समय मराठे उत्तर भारत में मालवा व बुन्देलखण्ड से प्रवेश कर रहे थे। मालवा का सूबेदार जयसिंह मराठों को रोकने में असफल हो रहा था। १७३५ ई० में वजीर कमरूद्दीन व खानदौरान को बुन्देलखण्ड व राजपूताने की ओर भेज कर मराठों के प्रसार को रोकना चाहा। रास्ते में महाराव दुर्जनशाल खानदौरान की सेना से जा मिला। परन्तु जब यह सेना मुकन्दरा घाटी पार करके रामपुरे की ओर जाने लगी तो दुर्जनशाल कोटा रुक गया और अपनी सेना को शाही सेना के साथ कर दिया। रामपुरे में खानदौरान, जयसिंह, अभयसिंह को सिंधिया व होल्कर ने आठ दिन तक घेरे रख कर लूटपाट की।

१ खफीखां, जिल्द २, पृ० ८५१।

२ निजाम व भीमसिंह पगड़ीबदल भाई थे। टाड : राजस्थान' जिल्द ३, पृ० १५२६।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

दुर्जनशाल सेना लेकर खानदौरान की सहायता को पहुँचाने के लिए प्रयाण करने लगा परन्तु होल्कर व सिन्धिया ने उसको शाही लश्कर तक नहीं पहुँचने दिया। हार कर दुर्जनशाल कोटा लौट गया[1]। खानदौरान ने कोटा में मरहठों से सन्धि करली। जयसिंह के प्रयत्न से यह सन्धि की गई थी कि मरहठों को २२ लाख रुपयों की चौथ दी जायेगी। इस घटना के बाद कोटा पर मुगल प्रभाव समाप्त हो गया और उसका स्थान मरहठों ने ले लिया।

मुगल शासन का कोटा पर प्रभाव—सन् १६२४ ई० में जहाँगीर की आज्ञा से माधोसिंह कोटा का राजा हुआ और मुगलों की देन कोटा, मुगल राज्य-शक्ति की सेवा में प्रवेश होकर सन् १७३५ ई० तक बना रहा। एक सदी में कोटा मुगलाई ढंग में रंग गया। कोटा के शासक तीनहजारी मनसबदार से बढ़ कर पंचहजारी मनसबदार बन गए। 'राव' से वे 'महाराव' की पदवी धारण करने लगे। तीनहजारी मनसबदार को प्रथम श्रेणी के रूप में २४,६०० रुपये मासिक मिलते थे। कोटा नरेशों ने मुगलाई सेवा में रह कर अटूट स्वामिभक्ति का परिचय दिया। सारा राजपूताना मुगल राज्य का एक सूबा माना जाता था जिसका सूबेदार अजमेर में रहता था। यह प्रान्त कई परगनों में विभक्त था। सूबेदार की नियुक्ति शाही फरमान द्वारा होती थी। प्रत्येक कोटा शासक को गद्दी पर बैठते समय शाही फरमान लेना पड़ता था। यह मुगल नियन्त्रण का सूचक था पर मुगलों का नियन्त्रण इस सीमा तक ही सीमित था कि वहाँ के शासक शाही सेवा में उपस्थित रहें तथा शाही आज्ञाओं से नियुक्त अफसरों से सहयोग करते रहें। आन्तरिक रूप में वे स्वतन्त्र थे। कोटा राज्य में तीसरा अंकुश मुगलाई सिक्कों की सभ्यता के रूप में था। गागरोण के किले में इसके निर्माण की एक टकसाल भी थी।

कोटा के प्रत्येक परगने में हकत व पड़त जमीन का हिसाब, उसकी वृद्धि तथा कृषि की उन्नति करने का कार्य कानूगो के हाथ में रहता था। यह कानूगो शाही अफसर होता था जिसकी नियुक्ति शाही फरमान से होती थी। जागीरदारों के अन्याय व कठोरता का हाल लिख कर वह सम्राट को भेजता था। भूमि का लगान, आमद व खर्च का हिसाब लिख कर प्रति वर्ष वह दफ्तरखाना-आली में भेजता था। परगने के हाकिम, आलिम उसकी सलाह से कार्य करते थे। यह पद वंश-परम्परानुगत था। भूमि कर का दो प्रतिशत कानूगो की रसूम होती थी। कोटा में नकद वेतन की प्रणाली नहीं थी। केन्द्रीय सता का व्यक्ति होते

---

१ इरविन : लेटरमुगल्स जिल्द, २, पृ० ३०४।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

हुए भी वह कोटा-राव की आज्ञा से कार्य करता था। राजपूताने की रियासतें प्रति वर्ष मुगल साम्राज्य को खिराज देती थीं। यह खिराज अजमेर का सूबेदार इकट्ठा करता था। पूर्वी राजपूताने की रियासतों को उज्जैन के सूबे में मतालबा (खिराज) जमा करा देने की सुविधा दी गई थी। कोटा के शासक कभी अजमेर, कभी उज्जैन के शाही कोष में यह धनराशि जमा कराते थे। मतालबा किश्तों में जमा कराया जाता था। सम्भवतः कोटे के शासकों को वार्षिक साढ़े तीन लाख रुपये खिराज के देने पड़ते थे।

मुगलों का कोटे के धार्मिक क्षेत्र पर भी प्रभाव पड़ा। कोटे से जजिया कर लिया जाता था। यह कर सम्राट के कर्मचारी वसूल करते थे। मन्दिर तोड़ कर मस्जिदें बनाई जाती थीं। यदि शाही फौज कोटे में से गुजरती तो उसके आस-पास शंख व घंटे नहीं बज सकते थे। कोटा में रहने वाले मुसलमानों के न्याय के लिए शाही फरमान द्वारा काजी नियुक्त किए जाते थे। मुहर्रम, ईद आदि मुस्लिम त्यौंहार उसके नेतृत्व में मनाये जाते थे। त्यौंहारों के समय राज्य की ओर से हाथी, घोड़े, सिपाही शोभा के लिए दिए जाते थे। यद्यपि महाराव भीमसिंह के राज्य-काल से काजियों का प्रभाव कम होने लगा था परन्तु कई दरगाहों और मस्जिदों को राज्य की ओर से नकद या जमीन मिलती थी।

कोटा राज्य का शासन मुगलाई ढांचे का था। केन्द्रीय शासन राज्य, परगने व गांवों में विभक्त था। राज्य-भाषा हाड़ोती थी परन्तु उसमें ज्यादातर फारसी शब्दों का प्रयोग किया जाता था। भूमि, सेना, और न्याय का प्रबन्ध मुगलाई ढंग का था। टोडरमल के समय की लगान लेने की प्रणाली कोटा राज्य में प्रचलित थी। सेना में हाथी, पैदल, घोड़े और तोपखाने की व्यवस्था मुगलों की देन थी। ऊंटों का रिसाला कोटा वालों ने जयपुरियों व बीकानेरियों की तरह संगठित किया था। राजपूतों ने युद्धक्षेत्र में स्त्रियों को लेजाने की प्रथा मुगलों से सीखी थी। मुगलों की तरह युद्ध का बाना पहनना तथा उनकी तरह के शस्त्र, कवच, तलवार, ढाल, भाला, बर्छी, तोप आदि का प्रयोग कोटा वालों ने अपनाया। फीलखाना, शुतुरखाना, तोपखाना, हरावल जैसे सैनिक विभाग जो कोटा की सेना में पाए गए हैं वे मुगलों के ही स्वरूप थे। युद्ध का ढंग भी कोटा वालों ने परिवर्तित कर दिया और राजपूत युद्ध प्रणाली के स्थान पर मुगल युद्ध प्रणाली काम में लाई जाने लगी। किलों का घेरा डालना, सुरंग लगा कर किले की दीवार को उड़ा देना, तोपखाने की आड़ में वार करना, दायें बाएँ बाजू पर सेना जमाना (तुलगमा रणनीति) यह सब मुगल देन है। न्याय के क्षेत्र में मुगलों की तरह दण्ड पर आधारित न्याय था। न्याय विभाग

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पृथक नहीं था। अपील का व्यवस्थित रूप नहीं किया गया था। दण्ड का कोई वर्गीकरण नहीं किया गया था। राजाज्ञा से ही दण्ड दिया जाता था। पुलिस कोतवाल ही न्यायाधीश बन जाता था। अतः कोतवाली-चबूतरा न्यायालय और भय का केन्द्र हो गया था। अपील जब कभी होती तो लिखित नहीं होती थी। तुरन्त न्याय की व्यवस्था थी। मुगल बादशाहों की तरह कोटा नरेश की कोप-दृष्टि ही सब कुछ थी।

साधारण जीवन व दरबारी जीवन में मुगलों के प्रभाव की स्पष्ट छाप दिखाई दे सकती थी। रावों के दरीखाने की बैठक मुगल दरबार की बैठक के समान थी। मुगलों में मनसब के अनुसार खड़े रहने की व्यवस्था की जाती थी। कोटा के राज्य दरबार में यह ध्यान रक्खा जाता था कि कौनसा जागीरदार किस हैसियत का है और वह अपने स्थान पर बैठता है या नहीं। जागीरदारों को सेवाओं के बदले ताजीम दी जाती थी। कोटा में राजकीय पुरुषों का पहनावा मुगलों जैसा था। चूड़ीदार पायजामा, घाघरकोट, मुगलाई-पगड़ी, बगलबंदी आदि सरदार पहनते थे। उत्सव व मेले मुगलों की तरह होने लगे। गणगौर मीना बाजार की तरह, हाथियों की होली, नावडे की होली आदि सब मुगलों की तरह होते थे। महफिल व दावतों में मुगल शिष्टाचार का प्रचार हो गया था। हुक्का और इत्र, हलुवा और खिचड़ी मुगल प्रभाव से बनने लगी। राज्य में फारसी का प्रयोग होने लगा, विशेष कर अन्य रियासतों से पत्र-व्यवहार करते समय। कला के क्षेत्र में गृह-निर्माण कला में महराबें तथा मीनाररूपी स्तम्भ-प्रणाली, छज्जे और जालिएँ मुगलों के सम्पर्क में आने के बाद ही कोटे में बनने लगीं। कोटा में मुगल सांस्कृति का प्रभाव इतना गहरा पड़ा कि मराठों व अंग्रेजों के प्रभाव काल में रहते हुए भी आज वे स्पष्ट रूप से जन-जीवन में देखे जा सकते हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

राजनैतिक इतिहास

कोटा राज्य का मरहठों से सम्बन्ध

दक्षिण भारत में मुगल साम्राज्य के विरुद्ध राष्ट्रीयता की लहर उठ खड़ी हुई। शिवाजी के नेतृत्व में मराठी सामाजिक व धार्मिक प्रवृतियाँ संयुक्त व संगठित होकर एक राजनैतिक शक्ति बन गयी। शिवाजो ने सन् १६४७ में प्रथम बार बीजापुर के सुल्तान के विरुद्ध एक राजनैतिक बगावत कर नए स्वतन्त्र राज्य की स्थापना प्रारम्भ की। १२ वर्ष तक, १६५९ तक बीजापुर-मराठा संघर्ष होता रहा। अन्त में नव-चेतित मराठा शक्ति विजयी रही। १६६० से १७०७ तक मुगल मराठा संघर्ष चलता रहा। शिवाजी की राजनैतिक शक्ति को कुचलने का प्रयास औरंगजेब ने तीन बार किया। १६६२-६३ में शायस्तखां को शिवाजी के विरुद्ध भेजा। १६६५ में जयसिंह ने शिवाजी पर विजय प्राप्त कर उसे आगरा जाने को विवश किया जहां औरंगजेब ने उसे हमेशा के लिये समाप्त कर देना चाहा, और १६६८ से १६७४ तक मुगल-मराठा भयंकर संघर्ष चलता रहा। सफलता शिवाजी को प्राप्त हुई और १६७४ ई० में उन्होंने मराठा राज्य की स्थापना कर-ही डाली। जिसका उद्देश्य हिन्दू-पद-पादशाही था। परन्तु सन् १६८० में उसकी मृत्यु हो गयी। मराठा राज्य तो स्थापित हो चुका था पर मुगलाई आंतक वना रहा जिसने १६८९ में शम्भाजी की हत्या कर मराठा राज्य का अन्त कर दिया। यद्यपि राज्य का रूप तो नष्ट हो गया परन्तु राष्ट्रीय शक्ति नष्ट न हो सकी। पहले राजाराम के नेतृत्व में, उसकी मृत्यु के बाद उसकी स्त्री ताराबाई के नेतृत्व में मराठी राष्ट्रीयता मुगलों से बराबर टक्कर लेती रही। २० वर्ष के इस लम्बे युद्ध में औरंगजेब की सारी शक्ति नष्ट हो गई। वह स्वयं मराठों को दबाने दक्षिण की ओर गया परन्तु इस 'दक्षिणी फोड़े' ने उसे बर्बाद कर दिया। १७०७ ई० में वह अहमदनगर में मर गया।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके लड़कों में गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया। अतः मराठों को कई अर्से के बाद अपने शत्रु से मुक्ति मिली। उस गृह-युद्ध में शाहजादा मुअज्जम जाजव के युद्ध में (मार्च १७०७) सफल हो बहादुरशाह के नाम से मुगल सम्राट बना। दक्षिण में ताराबाई के नेतृत्व में मराठा शक्ति राष्ट्रीय युद्ध तो कर रही थी पर राजा के रूप में जब संगठित होने का अवसर आया तो एक राजनैतिक स्थिति पैदा हो गई। बहादुरशाह दक्षिण में मुगलाई प्रभाव रखना चाहता था परन्तु मराठों से युद्ध करने के लिये उसके पास न शक्ति थी, न योग्यता। अतः जुल्फिकारखां की सलाह पर उसने शम्भाजी के लड़के शाहू को, जो १६८९ में कैद कर लिया गया था और अब तक मुगल जीवन में रम रहा था, मुक्त कर दिया गया। जिससे शाहू-ताराबाई संघर्ष में मराठी जन-जीवन पड़ा रहे और मुगल उसका लाभ उठा सकें। शाहू में रक्त तो मराठी था, वह भी शिवाजी का परन्तु मराठी गुण एक भी नहीं था। वह तो मुगलाई तौर-तरीके, आरामपसन्द जीवन का व्यक्ति था। शिवाजी की गद्दी जब उसने १७०८ में मांगी तो ताराबाई ने देने से इन्कार कर दिया। ताराबाई एक राजनैतिक औरत थी पर नेतृत्व करने के गुण से अनभिज्ञ थी। अतः कई मराठा सरदार उससे अप्रसन्न थे। उन्होंने कमजोर शाहू का नेतृत्व स्वीकार किया जिससे अपनी मन-मानी कर सकें। मराठी गृह-युद्ध (१७०८ ई०) में सफल हुआ।

शाहू सफल तो होगया परन्तु मराठों की राजनैतिक स्थिति से वह अनभिज्ञ था। उसकी कई समस्याएँ थी। उसका व्यक्तित्व उन समस्याओं को सुलझाने में पूर्ण अयोग्य था। मराठा सरदार कभी ताराबाई, कभी शाहू का साथ देकर अपनी शक्ति का प्रसार कर रहे थे। ऐसी परिस्थितियों में शाहू के सेवक और भक्त के रूप में बालाजीविश्वनाथ पेशवा के पद पर नियुक्त किया गया। पेशवा की संरक्षकता में मराठी पुनः संगठित और केन्द्रित होने लगे। यह काल मुगल-पतन काल था। मुगलों के पतन काल में दक्षिण की (व्यवहारिक रूप से) सार्वभौमिक शक्ति मराठों ने १७१९ में मराठा-मुगल सन्धि द्वारा प्राप्त करली। वास्तव में यह सन्धि १७१९ के भारतीय राजनैतिक इतिहास में एक नये युग को जन्म देती है जबकि मुगलों के बाद अखिल भारतीय शक्ति के रूप में मराठे प्रवेश करते हैं। बालाजी विश्वनाथ ने स्वयं दिल्ली आकर यह सन्धि मुगल शासकों से की। लौटते समय वह राजपूताने की ओर से जाने लगा। धौलपुर, जयपुर होता वह दक्षिण को लौट गया। उसके साथ उसका पुत्र बाजीराव था। जो हिन्दू-पद-पादशाही का निर्माता कहा जा सकता है। मुगल काल की पत-नावस्था में दक्षिण भारत में तो मराठा शक्ति सार्वभौमिक हो गयी परन्तु उत्तरी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भारत में राजपूतों की शक्ति सार्वभौमिक हो सकती थी पर यह नहीं हुआ। जब बाजीराव पेशवा बना तो उसने राजपूत-मराठा सहयोग नीति अपनानी चाही पर शीघ्र ही राजपूती रियासतों के आपसी झगड़ों ने उसे बतला दिया कि राजपूत मराठों का साथ नहीं दे सकते। अत: एकाकी रूप में बाजीराव ने उत्तरी भारत में मराठी शान स्थापित करनी चाही। राजपूत शासक, विशेष कर जयपुर और जोधपुर के शासक मुगल सूबेदार बन कर मराठों के प्रसार को रोकते रहे लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। उल्टे मराठों को विरोधी बना लिया। मुगलों को पतन से वे बचा न सके। १७४१ में बालाजी बाजीराव पेशवा ने मुगलों से उतरी भारत की प्रभुता छीनना प्रारम्भ कर दिया तो वे राजपूताने के शासकों के आपसी झगड़ों के न्यायकर्त्ता के रूप में प्रगट हुए और मराठे-राजपूत जहाँ मैत्री और सहयोगी होकर भारत में राज्य पर बढ़ती हुई अंग्रेजी शक्ति का विरोध कर सकते थे वह नहीं कर सके। मराठे राजपूताने के शासकों का धन शोषण करने में लग गये।

मराठों-राजपूतों का प्रथम सम्पर्क दो विरोधी शक्तियों के रूप में हुआ। राजपूतों ने मराठी राष्ट्रीयता को दबाने के लिये मुगल सम्राटों को तन, मन, धन से सहयोग दिया। कोटा के महाराव भी इससे वंचित नहीं थे। शिवाजी के विरुद्ध राव जगतसिंह ने औरंगजेब को पूर्ण सहायता दी। औरंगजेब ने जब सन् १६८९ में रायगढ़ पर अधिकार कर मराठा राजा शम्भाजी को गिरफ्तार कर उसका सिर कटवा लिया तो उस समय किशोरसिंह भी औरंगजेब के साथ लड़ा था[1]। वसन्तगढ़ के घेरे में तथा उस पर शाही सेना का अधिकार कराने में किशोरसिंह ने अपने हाड़ा राजपूतों का रक्त बहाया था। किशोरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र विष्णुसिंह ने अपने पिता के साथ दक्षिण में जाकर मराठों से लड़ने को इन्कारी करदी तो उसे राज्यच्युत कर दिया और अन्ते की जागीर देदी[2]। उसका दूसरा पुत्र रामसिंह मराठों के विरुद्ध शाही सेना में बना रहा। उसने दक्षिण भारत में राजाराम के विरुद्ध मुगल सेनापति जुल्फिकारखां के नेतृत्व में युद्ध किया। सन् १६९६ से १७०७ तक वह मराठों से लड़ता रहा।

दक्षिण में अरनी (कर्नाटक) के किले में रामसिंह ने अपना निवास-स्थान बनाया जहां से मराठों की दक्षिण की राजधानी जिन्जी का घेरा निर्देशन हो सके। मुगलों की स्थिति से एक लाभ इस बात से पहुँचा कि राजाराम के दोनों सेनापति सन्ताजी घोरपड़े और धन्नाजी जादव आपस में लड़ पड़े। राजाराम ने

१ सरकार : हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, जिल्द ५, पृ० ७।

२ टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५२३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अपनी स्थिति को बचाने के लिये अगस्त सन् १६९७ में रामसिंह द्वारा मुगलों से सन्धि करनी चाही पर औरंगजेब ने इसे स्वीकार नहीं किया[1]। जिन्जी का पुन: घेरा डाला गया जो दो माह तक चलता रहा। रामसिंह इस घेरे में 'शेतानी दरी' नामक दरवाजे के सम्मुख मुगल पंक्ति का अध्यक्ष था। राजाराम को २ जनवरी १६९८ को जिन्जी छोड़ कर भागना पड़ा परन्तु उसका कुटुम्ब पीछे ही रह गया। उस कुटुम्ब की सुरक्षा का भार रामसिंह ने लिया और सकुशल उन्हें उत्तर की ओर राजाराम के पास भिजवाने का प्रबन्ध कर दिया। इसके बाद भी रामसिंह औरंगजेब के देहावसान तक दक्षिण में लड़ता रहा और बीजापुर, रामगढ़, वसन्तगढ़-विजय में सहायता देता रहा।

सन् १७०७ से १७३४ तक कोटा नरेश उत्तर में मुगल राजनीति के दांव-पेच में फंसे रहे। दक्षिण में मराठे पेशवाओं के नेतृत्व में अपनी शक्ति का प्रसार करते रहे। कोटा के शासक मुगलों के अत्यन्त भक्त थे। अत: जब पेशवा बाजीराव गुजरात, मालवा, बुन्देलखंड में मराठी प्रसार कर रहा था, उस समय वे मुगल शक्ति को सैनिक व आर्थिक सहायता देते रहे। मराठों की नीति कभी स्थिर नहीं रही। जिन राज्यों ने या क्षेत्रों ने उनकी आधीनता स्वीकार करली थी वहाँ वे अपना साम्राज्य या स्थायी प्रबन्ध नहीं करते थे। अकारण लूटमार करने में व धन वसूल करने में वे नहीं हिचकते थे। वे चौथ और सददेशमुखी तो प्राप्त करते ही थे, इसके अलावा कई प्रकार का कर भी लेते थे जिनमें नजराना व जुर्माना मुख्य थे। जो राज्य उनका सामना करते, उस पर तो टिड्डी-दल की तरह टूट पड़ते थे। उनके गांवों, खेतों और खलिहानों को नष्ट कर देते थे।

मालवा पर अधिकार हो जाने से कोटा पर उनकी आंख बराबर पड़ती रही। क्योंकि कोटा मालवा का पड़ोसी प्रान्त था। मराठों का प्रथम आतंकीय सम्पर्क कोटा राज्य के महाराव शत्रुशाल के समय में हुआ। राजस्थान में मराठों का प्रवेश बूंदी, जयपुर और जोधपुर के उत्तराधिकारी युद्धों से प्रारम्भ होता है। १७३४ ई० में पिलाजी जादव ने कोटा और बूंदी पर आक्रमण करने की योजना बनाई थी पर वह योजना योजना ही रही। होल्कर और सिन्धिया ने कुछ लूट-पाट अवश्य की[2]। सन् १७३५ में पेशवा बाजीराव के मालवा-प्रसार को रोकने के लिये मुगल बादशाद मोहम्मदशाह ने वजीर कमरुद्दीन को बुन्देलखंड की ओर, और बख्शीखाँ खानदौरान को राजपूताना और मालवे की ओर भजा। सदाराव दुर्जनशाल ने अपनी सेना- खानदौरान की सेवार्थ में भेजी। मुकन्दरे

१ सरकार : जिल्द ५, पृ० १०५।

२ सरकार : फाल ऑफ-दी मुगल अम्पायर, पृ० २४९।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

की घाटी में होल्कर, सिन्धिया व पंवार ने खानदौरान को जा घेरा। कोटा से दुर्जनशाल खानदौरान की सहायता के लिये चला पर होल्कर और पंवार ने कोटे के महाराव को शाही लश्कर तक नहीं पहुँचने दिया[1]। खानदौरान ने परेशान होकर भोपाल की तरफ चला गया। चूंकी इस युद्ध में जयपुर नरेश जयसिंह व जोधपुर नरेश अभयसिंह मुगलों को सहायता दे रहे थे अतः होल्कर और सिन्धिया ने नये-नये राज्यों को लूटना प्रारम्भ किया। विशेष कर सांभर से तोन लाख रुपयों की सम्पत्ति प्राप्त की[2]।

मराठों का कोटा में प्रवेश:—सन् १७३६ में पेशवा बाजीराव ने राजस्थान की यात्रा की और महाराणा उदयपुर से मिला। मराठा-मेवाड़ सन्धि हुई। वार्षिक खिराज १ लाख ६० हजार प्रति वर्ष तय हुआ। फिर नाथद्वारा होते हुए बाजीराव सवाई जयसिंह से किशनगढ़ के पास बम्भोला गांव में मुलाकात की। मुगल सम्राट और मराठों के बीच वार्ता की शर्तें तय हुईं पर वे मुगल सम्राट को स्वीकार न थीं। अत. दिल्ली पर आक्रमण करने की योजना बनी। वह भी एक वर्ष के लिये स्थगित कर दी गई। मुहम्मदशाह ने बाजीराव की हरकतों को रोकने के लिये उसे मालवा का उप-सूबेदार ही बनाना चाहा परन्तु बाजीराव इससे प्रसन्न नहीं हुआ अतः उसने १७३६ में दिल्ली पर आक्रमण करने का निश्चय किया। मालवा के मार्ग में कूच करता हुआ बाजीराव कोटा राज्य में घुसा। तारज दर्रे के पास अपनी सेना का पड़ाव डाल कर उसने महाराव दुर्जनशाल से रसद मांगी। दुर्जनशाल के लिये अस्वीकार करना कोटा में मृत्यु को वृहत् रूप से निमन्त्रण देना था। अतः उसने बाजीराव की पूर्ण सेवा की। इसके बदले में बाजीराव ने सन् १७३८ में नाहरगढ़ विजय करके दुर्जनशाल को दे दिया[3]। यह कोटा और मराठों का पहला सम्पर्क था।

यद्यपि दुर्जनशाल ने बाजीराव को रसद पहुँचाई थी और बाजीराव ने नाहरगढ़ का किला महाराव को दिया था परन्तु महाराव व बाजीराव राजनैतिक मित्र नहीं बन सके। दुर्जनशाल अब भी मुगलों की सेवा में रहना चाहता था और बाजीराव को यह स्वीकार न था कि उसके विरुद्ध राजपूत शासक हों। भोपाल के युद्ध में जब बाजीराव ने निजाम को बुरी तरह हरा दिया तो उसकी शक्ति उत्तरी भारत अजेय हो गई और उसके बाद मल्हारराव होल्कर और जसवन्तराव पंवार को लेकर कोटा पर आक्रमण कर दिया व शहर का घेरा

१ इरविन : लेटर मुगल्स, जिल्द २, पृ० ३०४।

२ सिपरउल : मुताखिरिन, जिल्द २, पृ० ८३।

३ टाड : राजस्थान, तृतीय जिल्द, पृ० १५२९।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

डाल दिया। चालीस दिन तक घेरा पड़ा रहा। अन्त में महाराव ने सन्धि करली। इस सन्धि के अनुसार महाराव ने पेशवा को दस लाख रुपये दिये। आठ लाख रुपये तत्काल व २ लाख का दस्तावेज लिख दिया[1]। कोटा मरहठों में राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित हो गया। पेशवा ने बालाजी यशवन्त नामक एक सारस्वत ब्राह्मण को नियुक्त कर दिया[2]। इस कोंकणी ब्राह्मण ने दुर्जनशाल को बरखेड़ी नामक परगना उरमाल में जागीर में दे दिया। इस प्रकार महाराव दुर्जनशाल ने भी मरहठों के विरुद्ध राजपूतों के हुरडा सम्मेलन (सन् १७३४) के संयुक्त निर्णय—कि मरहठों के विरुद्ध राजपूत संयुक्त कारवाई की जावे—का अन्त कर दिया। बालाजी यशवन्त कोटा की मामलात को सिन्धिया, पंवार तथा होल्कर तीनों में विभक्त कर देता था परन्तु यह दशा भी साफ नहीं होने पायी। बूंदी पर जयसिंह ने अपना अधिकार स्थापित करने के लिये बुद्धसिंह को हटा कर दलेलसिंह को राजा बना दिया। बुद्धसिंह और उसके पुत्र उम्मेदसिंह ने मरहठों की सहायता तथा कोटा के राव दुर्जन की सहायता से पुनः बूंदी पर अधिकार कर लिया। इसी बीच १८४३ ई० में जयसिंह की मृत्यु हो गई। उसके बाद उसके पुत्र इश्वरीसिंह और माधोसिंह में गद्दी के लिये युद्ध हुआ। महाराणा उदयपुर, महाराव कोटा व उम्मेदसिंह ने माधोसिंह का साथ दिया। राजमहल की लड़ाई सन् १७४३ में जहाँ मल्हारराव का पुत्र खांडेराव २ लाख रुपये देकर बुलाया गया था, माधोसिंह हार गया, परन्तु पेशवा के बीच में पड़ जाने के कारण माधोसिंह को जयपुर के चार परगने दिए तथा उम्मेदसिंह को बूंदी का राजा ईश्वरीसिंह ने मान लिया। सन्धि हो जाने पर भी ईश्वरीसिंह पुनः दलेलसिंह को बून्दी की गद्दी पर बैठाना चाहता था। अतः उसने होल्कर से सहायता मांगी। बूंदी के सहायक कोटा महाराव पर ईश्वरीसिंह व होल्कर ने आक्रमण कर दिया। ६१ दिन तक यह लड़ाई चली। हार कर सन् १७४८ में दुर्जनशाल ने सन्धि की बातचीत की। जिसके अनुसार दलेलसिंह को कापरण और केशोराय पाटन दिए गये तथा—कोटा ने चार लाख रुपये देने का वचन दिया परन्तु कुछ दिन बाद सिन्धिया के साथ पत्र व्यवहार करके कोटा के फौजदार हिम्मतसिंह झाला ने ये रुपये माफ करवा दिये[3]।

कोटा में मरहठी प्रभुत्व—सन् १७५६ में महाराव दुर्जनशाल की मृत्यु के पश्चात् उसके कोई पुत्र न होने के कारण उसने अन्ता के ठाकुर अजीतसिंह के

१ इरविन लेटर मुगलसः जिल्द २, पृ० ३०४। वंशभास्करः चतुर्थ भाग, पृ० ३२४१।
२ फाल्के : शिंदेशाही इतिहास चीं साधणे, जिल्द १, पृ० ३ नो. सं. ४.।
३ डा. शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ३९२।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पुत्र शत्रुशाल को गोद लेने की इच्छा प्रकट की परन्तु फौजदार हिम्मतसिंह झाला ने पिता के रहते पुत्र को गद्दी देने की व्यवस्था ठीक नहीं समझी अतः अजीतसिंह १७५६ ई० में कोटे का शासक बना। उस समय मरहठे कोटा के 'बादशाह' थे अतः जब सिन्धिया को मालूम हुआ कि अजीतसिंह बिना उससे पूर्व स्वीकृति कोटे की गद्दी पर बैठ गया तो वह बड़ा क्रुद्ध हुआ और एक वृहत् सेना लेकर कोटे पर चढ़ आया। होल्कर और पंवार भी आ पहुँचे। ऐसी परिस्थिति देख कर महाराणी माता (महाराव दुर्जनशाल की रानी) ने राणोजी सिन्धिया को राखी भेज कर भाई बना लिया और नजराने के रूप में राज्य की ओर से चालीस लाख रुपया मरहठों को दिया गया[1]। यह धनराशि चार वार्षिक किश्तों में दी गई। वार्षिक खण्डी इसी में मान ली गई। अन्तिम किश्त के दो लाख रुपये छूट के दिये गये। तथा मरहठों को राजपूताने के अन्य भागों को विजय करने में सहायता देने का वचन अजीतसिंह ने दिया। जयपुर में गर्दिश के वक्त तथा ढूंढार लूटते समय अजीतसिंह ने करीब सात हजारी रुकी नाले तथा मूछरणे मरहठी सेना को भेजी थी[2]।

मरहठों को विशेष कर पेशवा बालाजी बाजीराव को हर समय धन की आवश्यकता रहती थी। शासन, युद्ध आदि के लिये धन-प्राप्ति उत्तरी भारत से ही हो सकती थी। होल्कर और सिन्धिया को राजपूताने से धन-प्राप्ति की आशा रहती थी। ये मरहठे सेनापति जब चाहते राजपूताने में प्रवेश कर लेते जब चाहा, जिससे चाहा धन प्राप्त करते थे। न देने पर युद्ध स्वाभाविक था। राजनैतिक सन्धियों को बनाए रखना कोई महत्ता नहीं रखता था। अजीतसिंह के बाद जब सन् १७५८ में शत्रुशाल गद्दी पर बैठा तो जनकोजो सिन्धिया व मल्हारराव होल्कर ने शत्रुशाल से नजराना के २ लाख रुपये लेकर उसे शासक की स्वीकृति दे दी।

१७५८ ई० तक मरहठों की शक्ति सारे भारत में फैल गई। पंजाब में वे अर्काट तक पहुँच चुके थे। दिल्ली के मुगल सुल्तान उनके ऋणी थे। पंजाब से दक्षिण भारत तक उनका प्रभाव था परन्तु वे इस बड़े साम्राज्य को न तो संगठित कर सके और न वे एक शासनसूत्र में बांध कर मरहठी राज्य की दृढ़ता ला सके। पंजाब पर मरहठों के अधिकार कर लेने को काबुल का बादशाह अहमदशाह दुर्रानी जो पंजाब को अपना प्रान्त समझता था, सहन न कर सका। उसने चार बार भारत पर आक्रमण किया। १७५९ में वह आक्रमण कर पंजाब पर

१ फाल्के : जिल्द १, लेखांक १७९, टिप्पणी १९४।
वंशभास्कर : चतुर्थ भाग, पृ० ३६५५।

२ डा० शर्मा : भाग २, पृ० ४१५।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

आधिकार करता हुआ नजीब रोहिला से जा मिला। जिसने मररठों की शक्ति नष्ट करने के लिये निमन्त्रित किया था। १७६१ की जनवरी को पानीपत के स्थान पर अब्दाली-मरहठा युद्ध हुआ। मरहठे हार गए। मरहठों की हार का लाभ उठा कर जयपुर नरेश माधोसिंह ने राजपूताने से मरहठों को निकालने का प्रयत्न किया। उसने दिल्ली सम्राट शाहआलम द्वितीय, नजीमरोहिला व कोटा, बूंदी, करौली आदि के शासकों का एक गुट तैयार कर मरहठों को निकालना चाहा[1]। परन्तु महाराव शत्रुशाल ने माधोसिंह की इस योजना को स्वीकार नहीं किया क्योंकि उसे इसमें माधोसिंह की वृहत् जयपुर-निर्माण करने की योजना स्पष्ट दिखायी दे रही थी। तथा इधर होल्कर ने गागरोण और चन्द्रावत राजपूतों पर अधिकार कर कोटा पर आँख लगा रखी थी।

सन् १७५४ ई० में माधोसिंह को रणथम्भोर का किला शाह अहमदशाह ने दिया था परन्तु रणथम्भोर को मरहठे लेना चाहते थे। इसलिये सन् १७५६ में उन्होंने घेरा डाल दिया। रणथम्भोर में एक मुगल फौजदार रहता था। वह स्वयं इस पर अधिकार रख स्वतन्त्र होना चाहता था। पर अन्त में यह किला माधोसिंह के पास आ गया। माधोसिंह ने इस किले से सम्बन्धित कोटरियों पर अधिकार करना चाहा। पर वे हाड़ा जाति की जागीरें होने के कारण कोटा के अधीन रहना अधिक पसन्द करती थीं। इस पर माधोसिंह ने १७६१ ई० में जबकि मरहठे पानीपत के मैदान में हार चुके थे, कोटा पर आक्रमण कर दिया तथा कोटरियों से खिराज लेना चाहा। माधोसिंह की सेना ने उणियारा, वलाखेरी पर अधिकार करते हुए पालीघाट के पास कोटा में प्रवेश किया। भटवाड़े के मैदान में कोटा की सेना व जयपुर की सेना का १७६१ में सामना हुआ।

इस युद्ध में जालिमसिंह झाला कोटा का सेनापतित्व कर रहा था। उस समय पानीपत के युद्ध में हार कर भागा हुआ मल्हारराव होल्कर पास ही पड़ाव डाले हुए था। जालिमसिंह ने उससे मुलाकात कर जयपुर के विरुद्ध सहायता चाही और उसके बदले में चार लाख रुपये देने का विश्वास दिलाया। होल्कर माधोसिंह से नाराज था क्योंकि साल भर से उसने होल्कर को मामलात नहीं दी थी। परन्तु पानीपत के मैदान में जो उसकी क्षति हो चुकी थी। उस कारण न तो वह कोटा को, न जयपुर को सहायता दे सकता था। अतः मल्हारराव ने सिर्फ इतना ही विश्वास जालिमसिंह को दिलाया कि यदि जयपुर की सेना हारने लगेगी तो वह उनके डेरों को लूटेगा[2]। भटवाड़े के युद्ध में कोटा विजयी हुआ।

---

१ एस. पी. डी.: जिल्द २६, सं. २७।

२ उपरोक्त जिल्द २१, सं० ६४।
वंशभास्कर : जिल्द २, पृ० ५६२-६३।
टाड : राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५३६।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सम्वत् १८१५ (सन् १७५८) में मल्हारराव होल्कर की एक टुकड़ी ने सुकेत की गढी को आ घेरा। कोटा ने ८००० रुपये देकर उस टुकड़ी को वापिस भेज दिया। सम्वत् १८१७ (सन् १७६०) में होल्कर को कोटा के प्रधान राव अखमराय ने ५१,०००) होल्कर को दिए।

भटवाड़े के युद्ध में कोटा के नरेश ने उम्मेदसिंह बूँदी शासक की सेवायें मांगी थीं। बूँदी की सेना युद्धक्षेत्र में आई तो अवश्य परन्तु युद्धक्षेत्र में दर्शक के रूप में बनी रही। इस पर शत्रुशाल बूंदी वालों से नाराज हो गया और राव उम्मेदसिंह को दण्ड देने के लिये अखमराय को मरहठा सरदार के पास भेजा। मोजाम नामक गांव में वह महारानी सिन्धिया से मिला[1]। सन् १७६३ में कोटा के महाराव और महाराणी व केदारजी सिन्धिया ने बूँदी पर आक्रमण कर दिया। ४० दिन तक बूंदी का घेरा पड़ा रहा। विवश हो उम्मेदसिंह ने संधि करली। महादजी ने महाराव शत्रुशाल को सैनिक खर्च के १७,१२०) रु० दिए[2]। कोटा महाराव ने बूंदी आक्रमण के लिये १,८०,००० रु० लिए थे। इस पर भी जब कभी मरहठी फौज आ जाती तो और धन देना पड़ता था। अखयराम, उसका लड़का केशवराम तथा ठाकुर किशनदास इस कार्य के लिये शोपुर और सपाड़ कई बार भेजे गये। राज्य की रक्षा के हेतु कोट और किले की मरम्मत कराई गई जिससे मरहठे अचानक आक्रमण न करदें[3]।

मरहठे व जालिमसिंह—कोटा में मरहठों का प्रभुत्व जालिमसिंह झाला के समय तक बना रहा। भटवाड़े के युद्ध में वीरता प्रदर्शित करने व हारे हुये युद्ध को विजय के रूप में परिवर्तित कर देने के उपलक्ष में महाराव शत्रुशाल ने जालिमसिंह को फौजदार बना दिया था। परन्तु महाराव गुमानसिंह ने उसकी स्वतन्त्र प्रकृति से मुक्त होने के लिये उसे पदच्युत कर दिया। जालिमसिंह मेवाड़ चला गया। वहां उसे राजराणा की पदवी दी गई। अरिसिंह के विरुद्ध प्रतापसिंह ने कुम्भलगढ़ में स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करली थी और अरिसिंह के विरुद्ध माधवराव सिन्धिया की सहायता लेकर मेवाड़ के विरुद्ध विद्रोह कर बैठा। तब उज्जैन के पास सिन्धिया-राणा युद्ध हुआ। जालिमसिंह इस युद्ध में घायल हो गया व गिरफ्तार कर लिया गया। अम्बाजी इंगले के पिता त्रम्बकराव ने उसे गिरफ्तार किया। लेकिन अम्बाजी ने उसे मुक्त करा दिया। तब से जालिमसिंह

---

१ वंशभास्कर: चतुर्थ भाग, पृ० ३७०६।

२ डा० शर्मा : भाग २, पृ० ४५१।

३ उपरोक्त, पृ० ४५२।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

और अम्बाजी इंगले की मित्रता अन्त तक बनी रही[१]। इसी समय महाराव गुमानसिंह ने मरहठों के वकील लालाजी बल्लाल को भेज कर जालिमसिंह को बुला लिया।

कोटा राज्य की स्थिति बड़ी शोचनीय हो रही थी। मल्हारराव के नेतृत्व में मरहठी सेना कोटे की दक्षिणी सीमा की तरफ बढ़ती हुई आ रही थी। बकानी का घेरा उन्होंने डाल दिया। किलेदार ठाकुर माधोसिंह हाड़ा ने किले की सुरक्षा को बनाए रखा। माधोसिंह के पास उस समय केवल चारसौ सैनिक ही थे। किले की सुरक्षा करते समय वह स्वयं मारा गया परन्तु मरहठों का अधिकार उस गढ़ पर न हो सका। इस युद्ध में १३०० मरहठे काम आए। लौटती हुई मरहठी सेना ने सुकेत पर अधिकार कर लिया और कोटे की ओर बढ़े। महाराव गुमानसिंह इस सेना का सामना करने में असमर्थ था। अतः सुलह की वार्ता करने के लिए ठाकुर भोपतसिंह भांकरोत को भेजा परन्तु वह असफल होकर लौटा। इसी समय लालाजी बल्लाल जालिमसिंह को लेकर कोटे लौट गया था। अब जालिमसिंह प्रतिनिधि बना कर वार्ता के लिये भेजा गया। इस कार्य में जालिमसिंह सफल हो गया। होल्कर को ६ लाख रुपया दिया गया और मरहठी सेना कोटे से हट गई[२]। महाराव गुमानसिंह ने इस सेवा के बदले में जालिमसिंह को पुनः अपने पद, फौजदार पर नियुक्त किया और उसकी जागीर दे दी। मरने के पूर्व महाराव ने उम्मेदसिंह कुंवर को झाला के सुपुर्द किया।

महाराव उम्मेदसिंह के शासन काल में (सन् १७७०-१८२० ई०) कोटे का सर्वेसर्वा जालिमसिंह झाला ही था। एक सफल शासन प्रबन्धकर्ता के लिये यह आवश्यक था कि मरहठे सरदारों के साथ शान्ति का सम्बन्ध रखा जाय। इस समय राजपूताने में पिंडारी और मरहठों के हमले बार-बार होते थे। सन्धि की इज्जत करना उनके कोष में नहीं था। धन ही प्राप्त करना उनका जीवन तथा कर्त्तव्य था। साधनों की वे परवाह नहीं करते थे। शासन की देखरेख उनकी शिक्षा के प्रतिकूल थी। ऐसी शक्ति के विरुद्ध जालिमसिंह ने साम, दाम और भेद की नीति अपनाई। सम्वत् १८३० (सन् १७७३ ई०) में जब कोटा राज्य के दक्षिण भागों में पिंडारियों ने लूटमार की तो उन्हें भगाने के लिये भट्ट दयानाथ के नेतृत्व में एक सेना भेजी जिसने गागरोण के पास पिंडारियों को हराया व भगाया[३]। पर पिंडारी पुनः आ धमके, लूट-खसोट की और भाग

१ टाड : राजस्थान तृतीय, पृ० १५३९।

२ उपरोक्त, पृ० १५८९-१५९०।

३ डा० शर्मा : भाग २, पृ० ४८१।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

गए। पुनः आने और भागने की नीति से तंग आकर जालिमसिंह ने सन् १७७४ ई० में पिंडारियों के नेता अमीरखां से मित्रता कर उसे शेरगढ़ का किला दे दिया जहाँ वह रह सके[1]। इस मित्रता की नीति से वह पिंडारी आक्रमण से बच गया। सम्वत् १८३४ (सन् १७७७ ई०) में जीवाजी अप्पा के नेतृत्व में मरहठी सेना कोटे को सीमा में प्रवेश करना चाहती थी पर जालिमसिंह ने बख्शी शिवलाल अखयराम व पंडित तांत्या को भेज कर उसे कोटे में प्रवेश नहीं करने दिया। सम्भवतः कुछ लाख रुपये नजराने के अवश्य दिये गए। होल्कर के नेतृत्व में १७७९ ई० में कोटा रियात इन्द्रगढ़, खातोली, करवाड़, पीपल्दा को मरहठों ने लूटा। झाला ने सेना भेज कर उन्हें दूर करना चाहा। पर वह असफल रहा। इसी प्रकार झाला ने नरहरराव दक्षिण को १७८४ ई० में पन्द्रह हजार, १७८५ ई० में खांडेराव को खण्डणी की बकाया देकर मित्रता मोल ली। तुकोजी होल्कर को भी इस प्रकार समय-समय पर रुपये देकर संतुष्ट करना पड़ता था। १७८२ ई० में तुकोजी होल्कर के पुत्र मल्हारराव होल्कर के विवाह पर कोटे की तरफ से सात हजार रुपये न्योते के भेजे गये थे[2]। सिन्धिया ने बेगू लेना चाहा जहाँ उम्मेदसिंह का ससुराल था। अतः उसे बचाने के लिये जालिमसिंह ने ६ लाख रुपये देकर बेगू बचाया फिर भी सिन्धिया ने सिंगोली और रतनगढ़ ले ही लिए[3]। शाहबाद के किले पर जालिमसिंह ने सिन्धिया को अनुमति के बिना ही कब्जा कर लिया था। इस पर सिन्धिया ने मामलात का हिस्सा मांगा। ३० हजार रुपये शाहबाद की मामलात सिन्धिया को भेजने का निश्चय किया गया[4]।

मरहठों की इस प्रकार की नीति और व्यवहार से, जिसमें न स्थायित्व था, न ईमानदारी, न राजनैतिक मोहब्बत, न मित्रता, जालिमसिंह तंग आ चुका था। वह इनसे सैनिक शक्ति द्वारा विजय प्राप्त नहीं कर सकता था, केवल धन से इन्हें खरीद कर ही कोटा की शान्ति बनाये रख सकता था। उस धन-प्राप्ति के लिये कोटे में कई नए प्रकार के कर इसने लगाए जिससे जागीरदार व जनता दोनों ही तंग थे। उसी समय पूर्वी भारत विजय करते हुए अंग्रेज दिल्ली तक आ पहुँचे। मरहठों की शक्ति से उनकी टक्कर होना निश्चित था। १८०२ ई० में सिन्धिया से अंग्रेजों ने टक्कर ली। १८०३ में होल्कर से वे लड़ पड़े।

१ टाड : राजस्थान तृतीय, पृ० १५७४।
२ डा० शर्मा : भाग २, पृ० ४८५।
३ वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० ३८१९।
४ डा० शर्मा : भाग २, पृ० ४८६।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

लार्ड लेक उत्तर की ओर से और दक्षिण की ओर से आरथर वेलेजली होल्कर के विरुद्ध चले। लार्ड लेक ने कर्नल मानसन को तीन बटालियन देकर व कप्तान लूकन को पश्चिम की ओर से होल्कर पर आक्रमण करने भेजा। राजपूत शासकों के लिये मरहठों से मुक्त होने का सुअवसर था। जालिमसिंह ने अंग्रेजी फौज और उसके नेता मानसन को कोटा में प्रवेश करने की आज्ञा नहीं दी बल्कि आप अमरसिंह पलायके वाले के नेतृत्व में कोटा की फौज भेज कर मानसन को सहायता दी। मानसन को होल्कर ने मुकन्दरा घाटी में जा घेरा और मारकाट मचादी। होल्कर की फौज की कोटा की सेना के साथ मुठभेड़ हुई जिसमें आप अमरसिंह मारा गया। कोटे के चारसौ व्यक्ति घायल हुए। कप्तान लूकन युद्ध में मारा गया और मानसन भाग कर कोटा आया। परन्तु होल्कर के भय से जालिमसिंह ने उसे शरण नहीं दी[1]। किसी तरह वह दिल्ली पहुँचा।

अब होल्कर ने जालिमसिंह को दण्ड देने के लिये कोटे पर चढ़ाई करदी। जालिमसिंह ने चम्बल नदी के मध्य में नाव पर मुलाकात की। काका जालिमसिंह व मजीज होल्कर बड़ी शिष्टता से बातचीत करते रहे। लेकिन इमानदारी एक के कार्य में भी नहीं थी। होल्कर ने मुगल बख्शी से दस्तावेज प्राप्त कर कोटा से दस लाख रुपये जुर्माना प्राप्त करना चाहा। जालिमसिंह ने उसे स्वीकार नहीं किया। फिर भी होल्कर तीन लाख रुपये लेकर कोटा से रवाना हुआ और शेष सात लाख रुपये माँगना उसने कभी नहीं छोड़ा[2]। जब होल्कर डोग के स्थान पर अंग्रेजों से हार गया तो राजपूताने में उसका प्रभाव कम हो गया और कोटा से प्राप्त होने वाली खण्डणी समय पर नहीं मिलने लगी। जालिमसिंह ने होल्कर से मित्रता भी बनाये रखी और समय पड़ने पर उसके शत्रुओं को सहायता भी देता रहा जिससे कि मराठों की शक्ति क्षीण होती रहे। ३० मई १८१३ में मल्हारराव के लड़के परशुराम ने ढूंढार परगने के रामपुर किले पर अधिकार करना चाहा तो जालिमसिंह ने उसे सहायता दी[3]। उदयपुर में शक्तावतों और चूड़ावतों के युद्ध में सिन्धिया ने हस्तक्षेप करना शुरू किया। इसी समय सिन्धिया को जोधपुर व जयपुर की सम्मिलित सेना ने हरा दिया। उधर कोटा व उदयपुर की सेना मिल कर मराठों के अधिकृत क्षेत्र नीमाहेड़ा, निकुम्प, जीरण आदि पर अधिकार करती हुई जावत पहुँची। मरहठी सेना का नायक सदाशिव हार गया और भाग गया। इसका परिणाम ठीक नहीं निकला।

---

१ टाड : राजस्थान भाग ३, पृ० १५७१।

२ उपरोक्त, पृ० १५७३।

३ डा० शर्मा : भाग २, पृ० ४६७।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

शक्तावत और चूड़ावत पुनः लड़ पड़े। महाराजा ने चूड़ावतों को चित्तौड़ से निकालने के लिये जालिमसिंह और सिन्धिया को बुला भेजा। जालिमसिंह और माधोजी सिन्धिया के प्रतिनिधि अम्बाजी इंगले की संयुक्त सेना ने हमीरगढ़ लेते हुए चित्तौड़गढ़ का घेरा डाला। यहां सिन्धिया सेना लेकर पहुँचा और महाराणा से मिला। यह मुलाकात जालिमसिंह के प्रयत्नों से हुई[१]। महाराणा जालिमसिंह और महादाजी सिन्धिया ने चित्तौड़ के पास सेती गांव में डेरा डाला। भीमसिंह चूड़ावत इस बात पर आत्म-समर्पण करने को तैयार था कि जालिमसिंह कोटा चला जाए। जालिमसिंह ने यह स्वीकार किया[२]। जालिमसिंह को बढ़ती हुई शक्ति को कम करने की यह चाल अम्बाजी इंगले की थी[३]। मेवाड़ में शान्ति स्थापित कराने का भार माधोजी ने अम्बाजी को सौंपा। परन्तु १७९५ ई० में माहादाजी की मृत्यु हो गई। उसके पुत्र दौलतराम सिन्धिया ने अम्बाजी के स्थान पर लकवा दादा को नियुक्त किया। अम्बाजी इंगले के प्रतिनिधि गणेशपंत ने चितौड़ खाली करने से इन्कार कर दिया। अम्बाजी और लकवा दादा में युद्ध छिड़ गया। महाराणा ने अम्बाजी का पक्ष नहीं लिया। इस पर जालिमसिंह ने महाराणा के विरुद्ध आक्रमण कर दिया। अम्बाजी के नाई मालेराव को महाराणा की कैद से छुड़ाया और महाराणा से सन्धि कर जहाजपुर पर अधिकार कर लिया[४]।

पिंडारियों के प्रति जालिमसिंह ने मित्रता की नीति बनाए रखी। मीरखाँ पिंडारी को शेरगढ़ देकर मित्र बना लिया। समय २ पर मीरखां की सेना को जब कभी वेतन नहीं मिलता तो कोटा राज्य के धन कोष से धन देता। सन् १८०७ में सिन्धिया ने मीरखां को गिरफ्तार करके ग्वालियर के किले में बन्द कर दिया। उस समय भी जालिमसिंह ने उसको धन देकर छुड़ाया था। परन्तु जब लार्ड हेस्टिंग्ज ने पिंडारियों के दमन के लिये झाला से सहायता मांगी तो कोटा की फौज ने पूर्ण सहायता दी। इसके बदले में जालिमसिंह को उग, पंचपहाड़, अम्बर और गंगराड के परगने दिये गए। १८१८ ई० के बाद तो अंग्रेजों ने जालिमसिंह से सन्धि कर कोटा में मराठों का प्रभाव हमेशा के लिए समाप्त कर दिया।

---

१ ओझा : राजपूताने का इतिहास, भाग ४, पृ० ९९१।

२ ओझा : राजपूताने का इतिहास, भाग ४, पृ० ९९२।

३ उपरोक्त।

४ उपरोक्त, पृ० १००३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कोटा शासन में मरहठी प्रभाव—पेशवा कोटा राज्य को अपना मांगलिक राज्य मानता था। अतः इस अधीनस्थ राज्य को उसने सिन्धिया, होल्कर और पंवारों को बांट दिया था। ये मरहठे सरदार कोटा राज्य को अपने आधिपत्य में समझते थे और इस बात पर जोर देते थे कि उनकी अनुमति और नजराना दिए बिना कोई महाराव गद्दी पर न बैठे। प्रति वर्ष वे कोटा से खण्डणी लेते थे। छोटे-मोटे मरहठा सरदार अवसर पाकर कभी-कभी कोटा राज्य में आ घुसते, लूट-मार करते और कोटा से धन वसूल करते थे। कोटा राज्य में जाने वाले व्यापारिग्रों की जकात स्वयं लेकर वे उन्हें मुफ्त जाने की आज्ञा देते रहते थे। उनकी सुरक्षा कोटा राज्य को करनी पड़ती थी। सिन्धिया होल्कर का स्वागत मुगल सूबेदारों की तरह किया जाता था। धन व सैनिकों से सहायता कोटा वाले मरहठों की करते रहते थे। मरहठी सरदारों के बच्चों के जन्म व विवाह पर कोटा महाराव नजराना भेजते थे।

मरहठों की ओर से कोटा में वकील रहता था। सन् १७३७ में पहला वकील नियुक्त हुआ। वह लालाजी बल्लाल था। वह कोटा से मामलात वसूल करता, राजनैतिक गतिविधियों पर देख-रेख करता तथा उनकी सूचना मरहठा सरदारों के पास भेजता। ये उसके मुख्य कर्तव्य थे। उसकी मातहती में एक दीवान, कई कमविसदार अन्य कितने ही कर्मचारी व छोटे नौकर रहते थे। वकील सबका वेतन चुकाता था। मामलात वसूल करके हिस्सों के अनुसार ऊंटों पर लाद करे मरहठी सरदारों के पास भेजा जाता था। कोटा की कोटरियात वकील के सुपर्द थी। चूंकि मामलात अधिक मात्रा में लिया जाता था जिसे कोटरियात दे नहीं सकती थी अतः प्रत्येक कोटड़ो में एक मरहठा कमविसदार वहां रहता था। वह आयकर इकट्ठा करने वाला होता था लेकिन वास्तव में शासन का कर्ता-धर्ता वही था। ठाकुर नाम-मात्र के शासक होते थे। प्रारम्भ में चारों मरहठी सरदारों का एक ही वकील होता था परन्तु यह वकील सिन्धिया का पक्ष अधिक लेता था। इस कारण अन्य मरहठी सरदारों ने अपने-अपने अलग वकील नियुक्त किये। जिनमें आम तौर पर धन के बंटवारे के लिये झगड़ा हो जाया करता था। वकील का वेतन अड़तालीस हजार रुपया वार्षिक था[1]। यह वेतन दो मास की किश्तों में मिलता था।

वकील के नीचे दीवान होता था और प्रत्येक परगने में एक कमविसदार नियुक्त किया जाता था। इसका कर्तव्य सिर्फ माल वसूली हासिल करना तथा मामलात प्राप्त करना था। परगने में इनका शासकीय प्रभाव नहीं रहता था।

---

१ डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५२६।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

यह अधिकार कोटा राज्य के सिर्फ कमिश्नरों को था। परन्तु चूंकी वह एक प्रभुत्व शक्ति का प्रतिनिधि था अतः व्यवहार में मुकदमों का फैसला तथा शान्ति स्थापित करने का कार्य वही करता था। उसके पास काफी सेना रहती थी[1]। कभी कम विसदार इतना शक्तिशाली हो जाता था कि वह मामलात भेजने से इन्कार कर देता था। उसको वेतन हिस्साकसी से मिलता था। कालान्तर में मराठों ने इजारे पर कई इलाके देने शुरू किए। इजारा की रकम निश्चित की जाती थी। परगने की मालगुजारी और हकुमत इजारेदार जो अधिकतर वकील होता था उसे देदी जाती। *उसे अलग करने का अधिकार मरहठी सरदारों को* था। यदि वह समय पर रकम न देता या प्रजा को दुःख देता। सिन्धिया व होल्कर फरमान देकर इजारेदार को नियुक्त करते थे। मरहठों ने कोटा के प्रति कोई शासन नीति नहीं अपनाई थी। सिर्फ एक ही नीति से वे चलते थे। मामलात वसूल करना और मौका मिलने पर नजराना वसूल करना। कोटा को यह धन जुटाने के लिये कई नए कर लगाने पड़े थे। सम्वत् १८१५ में समस्त जागीर-दारों पर मरहठों की मांग पूरी करने के लिए चौथान नामक कर वसूल किया गया। इसी वर्ष कानूनगायियों से पेशकशी ली गई। सम्वत १८१६ में घोड़ी-बरार नामक कर लगाया गया। इसकी रकम ६८,०००) वार्षिक इकट्ठी होती थी। जातियों की पंचायतों से कर लिया गया। बीघोड़ी और जामदारी कर शक्ति से वसूल किये गये। बीघोड़ी प्रति घर चार आना, जामदारी प्रति कुटुम्ब एक रुपया लिया जाता था।

कोटा के शासकों द्वारा सिन्धिया के राज्य में रहने वाले या उनके द्वारा स्वीकृत व्यापारी को बिना कर लिए कोटे में घुसने दिया जाता था। कोटे के किसी आदमी ने सिन्धिया के राज्य के किसी व्यक्ति से धन उधार लिया हो तो वकील द्वारा उसकी वसूली होती थी। यदि कोटा राज्य किसी अन्य क्षेत्र को जीतते जो मरहठों का न होता तो उस की खण्डणी अलग देनी पड़ती थी यद्यपि मरहठा धन-मांग अधिक थी। परन्तु मरहठों ने कोटा शासकों को मुगलों की तरह नौकरी के रूप में नहीं बल्कि आदर भावना से बर्ताव रखा। काका शब्द महारावों के लिये प्रयोग किया जाता था। महारािणयों की ओर से मरहठा सरदारों को राखिएँ भेजी जाती थीं। मरहठी रानियें भी राखी भेज कर कोटा घराने से सम्बन्ध स्थापित करती थीं।

कोटा में कई जागीरें मरहठी सरदारों को प्राप्त थीं। केशोराय पाटण तथा

---

१ पाटण के कम विसदार की मातहती में ७५ सरदार, ५० पैदल, ६०० वरकन्दाज और १०० सहने थे। इन सबका बेतन ३४,३४० रु. वार्षिक होता था।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कापरेण सिन्धिया की जागीरें थीं। मरहठों के वकील को बोराखेड़ी व उरमाल दीवान को भराडोला परगना था। होल्कर के दीवान को जुलमी की जागीर दी गई थी। कई मरहठी ब्राह्मण भी जागीरदार थे। मरहठो जागीरों में कुल ७१ गांव थे जिनकी आमदनी एक लाख अट्ठाईस हजार थी[1]। मरहठी जागीरदारों की वृद्धि कोटा के शासक नहीं चाहते थे परन्तु वे विवश थे। दक्षिणी पण्डितों का धार्मिक क्षेत्र में भो प्रभाव था। इन जागीरदारों की प्रतिष्ठा राज-दरबार में होती रहती थी। राज की पड़तालों पर इन्हें इनायत भी होती रहती थो। ये जागीरदार महाराव की नौकरी करते थे। इनसे भेंटें वगैरह नहीं ली जाती थी। परन्तु मरहठी प्रभाव अंग्रेजों के आगमन पर इतना शिथिल हो गया कि उनके स्थाई अवशेष किसी भी रूप में जीवित नहीं रह पाये।

कोटा राज्य का अंग्रेजों से संबंध—भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुकूल थी। यह घटना अचानक हुई, ऐसी संभावना नहीं थी। १८वीं शताब्दी में तीन साम्राज्यों की टक्कर में—मुगल, मरहठा व अंग्रेज। अंग्रेज विजयी होकर भारत की सार्वभोम सत्ता के रूप में परिणित हो गये। ई. सन् १७५७ में जबकि मुगल साम्राज्य की अस्थियां चारों और बिखर रही थीं और उसके अवशेषों पर मरहठी प्रभुता उत्तरी भारत से दक्षिणी भारत तक फैली हुई थी, प्लासी के मैदान में लार्ड क्लाइव ने भारत में अंग्रेजी राज्य की नींव डाली। मरहठा शक्ति का प्रभुत्व तो अवश्य फैला हुआ था पर न उसमें शासन का स्थायित्व था व न उसके राजनीतिज्ञों में भारत पर शासन करने की प्रतिभा थी। वे उत्तरी भारत में जुल्मगीरी ही करते थे। गनीम उनका प्रिय नाम हो गया। वहाँ परिस्थितियां तो यही थीं कि मुगल सम्राटों के स्थान पर वे मरहठा साम्राज्य स्थापित कर सकते थे, वहां उन्होंने हर स्थान, हर जागीरदार, नबाब व राजा को आर्थिक शोषण की नीति से तंग किया। धन न देने का अर्थ अराजकता, खेती का नष्ट होना, शहरों का जलाया जाना और जनता की त्राहि-त्राहि था। धन देकर भी इससे मुक्ति पाना कठिन था। मरहठा सरदारों और सेनापतियों में जहाँ नेतृत्व था तो केवल इसी बात का कि उत्तरो भारत की धन की नदियों का बहाव पूना की तरफ मोड़ा गया। मुगलों के पतन से शासन में जो अस्त-व्यस्तता आई थी उसे हटा कर जनता को संगठित और सुव्यवस्थित शासन देने में असफल रहे। १७६१ में पानीपत के मैदान में उनकी हार ने अंग्रेजों को, जो कि भारत में अभी तक शिशु शक्ति के रूप में ही प्रकट हुए थे, अपना स्थायित्व जमाने का अवसर दिया। यह तो भारत की राजनैतिक स्थिति स्पष्ट कर रही थी कि

१ डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५३२।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अंग्रेजों को अखिल भारतीय राज्य-शक्ति बनाने के लिए मरहठों से टक्कर लेनी ही पड़ेगी।

१७६१ को पराजय के बाद मरहठे पुनः अपनी शक्ति संचित करने लगे। अंग्रेज भी अपनी शक्ति का विस्तार करने लगे। दोनों शक्तियां समानान्तर रूप से भारतीय जीवन पर अधिकार करने के लिये बढ़ रही थीं। १७७६ व १७८१ में उन्होंने टक्कर ली पर यह निर्णय नहीं हो सका कि भारत में अधिक प्रभावशाली शक्ति कौनसी है। दोनों तरफ की एक २१ वर्षीय शांति से अंग्रेजों के अपने विरुद्ध की द्वितीय श्रेणी की शक्तियां—निजाम, हैदरअली व टोपू को दूर करने का अवसर मिल गया। मरहठों ने वही धन प्राप्त करने की नीति जारी रखी। १७६८ में लार्ड वैलेजली ने भारतीय राजनीति के रंगमंच में प्रवेश किया। वह एक साम्राज्यवादी गवर्नर जनरल था। मरहठा शक्ति आन्तरिक रूप से क्षीण हो चली; उसके कुशल नेता मर चुके थे, उसके अधीन के क्षेत्र व संरक्षित रियासतें उनकी निरंकुशता से इतनी विक्षिप्त हो चुकी थी कि उसके बदले में वे हर कीमत पर अपने आपको उन्हें समर्पित कर सकते थे जो उनकी थोड़ी बहुत बची हुई इज्जत की रक्षा कर सके। ऐसी अवस्था में लार्ड वैलेजली ने अपनी 'सहायक-प्रथा' की नीति प्रचलित कर मरहठा विरोधी संगठन करना शुरू किया। मरहठों की आपसी द्वेषता ने उन्हें और अधिक अवसर दिया और १८०० ई० में बसीन के स्थान पर पेशवा बाजीराव द्वितीय ने यह प्रथा स्वीकार कर भारत में अंग्रेजों की सार्वभौम शक्ति को स्वीकार कर लिया। सिन्धिया और होल्कर के लिये यह अपमानजनक बात थी। उन्होंने पेशवा का विरोध किया व लोहा लिया। सिन्धिया ने सुर्जी अर्जन गांव की संधि में पूर्ण हथियार डाल दिये। होल्कर लड़ता रहा। लार्ड वैलेजली ने होल्कर के विरुद्ध राजपूताना की रियासतों को अपनी ओर मिलाने की नीति अपनाई। अंग्रेज अब तक एक ताकतवर जमात के रूप में बन चुके थे। उनका सुसंगठित शासन-प्रबंध वैज्ञानिक ढंग पर लड़ने वाली युद्ध-प्रणाली तथा भारतीय शासकों को आंतरिक रूप से स्वतंत्र बनाये रखने की नीति ने राजपूताने के शासकों को प्रभावित किया। कोटा का राजराणा फौजदार झाला जालिमसिंह, जिसने मरहठों को मामलात देते २ राज्य को दिवालिया बना दिया था, ने इस नीति को पसंद किया। राजपूताने में अंग्रेजों के प्रवेश का सर्वत्र स्वागत किया गया।

१८०४ ई० में होल्कर को हटाने के लिये दिल्ली से लार्ड लेक चला। दक्षिण से आर्थर वेलेजली ने सेना सहित कूच किया। लार्ड लेक ने कर्नल मानसन और कप्तान लूकन को राजपूताने की ओर भेजा जिससे पश्चिम की ओर

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

से होल्कर पर हमला किया जा सके। झाला जालिमसिंह ने जिसने अभी तक निश्चित तौर पर अवलोकन नहीं किया कि अंग्रेज-शक्ति को सहयोग दे। मानसन को सहायता देने के लिये बुलाया था व ठाकुर आप अमरसिंह के नेतृत्व में एक छोटी सी सेना की टुकड़ी भी भेजी। मुकन्दरे की घाटी में होल्कर ने कप्तान लूकन व आप अमरसिंह को घेर लिया। मुकन्दरा दर्रे के युद्ध में लूकन और आप अमरसिंह मारे गये। मानसन भागता हुआ कोटा में शरण लेने आया। जालिमसिंह ने उसका स्वागत नहीं किया और शरण नहीं दी। वह निराश हो दिल्ली पहुँचा।

जालिमसिंह ने पिंडारियों के साथ मित्रता की नीति अपनाई थी। अमीरखां पिंडारी को शेरगढ़ का किला देकर उससे मित्रता की और कोटा को पिंडारियों से मुक्त कराया। जब १८०७ ई० में सिंधिया ने ग्वालियर के किले में अमीरखां पिंडारी को कैद कर लिया तो जालिमसिंह ने धन देकर उसे छुड़ाया और भावी सुचरित्र का विश्वास दिलाया। पिंडारियों के कई व्यक्ति कोटा के जागीरदार थे। जालिमसिंह ने उनकी प्रतिष्ठा और मित्रता बनाये रखी। जालिमसिंह के पिंडारियों को मित्र बनाये रखने के २ कारण थे। प्रथम—कोटा में उनके कारण अशांति पैदा न हो, दूसरा कि उसकी शक्ति कोटा में बनी रहे। अपने विरोधियों का दमन करने के लिये यह आवश्यक था।

पिंडारी मरहठों की तरह अंग्रेजी सत्ता के लिये एक समस्या बन चुके थे। अतः जब १८१३ ई० में लार्ड हैस्टिंग्ज गवर्नर जनरल बन कर भारत आया तो पिंडारी एक अफलातून शक्ति बन चुके थे। मरहठों का प्रश्रय पाकर के ताकत-वर होते जा रहे थे। सन् १८१७ में हैस्टिंग्ज ने पिंडारियों को समाप्त करने के लिये उनके विरुद्ध युद्ध की घोषणा करदी। राजपूताना के शासकों से इस संबंध में सहायता लेने के लिये लार्ड हैस्टिंग्ज ने कर्नल टाड को जो कि उस समय सिंधिया दरबार में उप-रेजीडेंट था, राजराणा जालिमसिंह के पास भेजा। टाड ने जालिमसिंह से २३ नवम्बर १८१७ को रावटा के स्थान पर मुलाकात की[1] टाड-जालिमसिंह की यह प्रथम मुलाकात थी जो कालान्तर में गाढ़ी मित्रता के रूप में परिणित हो गई। जालिमसिंह ने पिंडारी शक्ति के स्थान पर अपने को सुरक्षित रखने वाली अंग्रेजी शक्ति का मूल्य अधिक समझा। अतः पिंडारियों के दमन के लिये १५०० पैदल व घुड़सवार व ४ तोपें, अंग्रेजों को दीं[2]। सर जे. माल्कम के नेतृत्व में यह सेना भेजी गई। पिंडारियों के दमन में कोटा सब तरह

१ उपरोक्त।

२ ट्रीटी ऐंगेजमेंट व सनद, तृतीय भाग, पृ० ३५७ ३५८।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

की जासूसी सूचना का केन्द्र हो गया था। जालिमसिंह की सहायता से पिंडारियों के नेता गिरफ्तार कर लिये गये। उसकी इस सहायता को अंग्रेज भूल न सके।

सन् १८१७ तक अंग्रेजों ने पेशवा, सिंधिया और होल्कर को बुरी तरह हरा कर मरहठा शक्ति का सर्वदा के लिये भारत में अंत कर दिया। अंग्रेज अब अत्यन्त शक्तिशाली हो रहे थे। राजपूताने के शासकों से वे संधि-वार्ता कर निश्चित राजनैतिक संबंध स्थापित कर लेना चाहते थे। इसके लिये झाला जालिमसिंह पहले से ही तैयार था। कोटा की ओर से महाराणा शिवदानसिंह, सेठ जीवनराम व लाला हुलंचन्द प्रतिनिधि बना कर दिल्ली भेजे गये। उन्होंने गवर्नर जनरल के प्रतिनिधि मेटकाफ से वार्ता की और २६ दिसम्बर सन् १८१७ में कोटा राज्य और अंग्रेजों में संधि हो गई जिसकी निम्नलिखित शर्तें थीं—

(१) अंग्रेज सरकार और महाराव उम्मेदसिंह एवं उसके उत्तराधिकारियों में मैत्री का संबंध रहेगा।

(२) संधि करने वाले दोनों पक्षों में से एक पक्ष के शत्रु और मित्र दूसरे पक्ष के शत्रु और मित्र रहेंगे।

(३) कोटा राज्य अंग्रेजी राज्य की संरक्षता में रहेगा।

(४) महाराव व उसके उत्तराधिकारी अंग्रेजों के आधिपत्य को मानेंगे और भविष्य में उन राजाओं और रियासतों से संबंध नहीं रखेंगे जिनके साथ कोटा राज्य का संबंध अब तक रहा है।

(५) अंग्रेज सरकार की पूर्व स्वीकृति के बिना कोटा के महाराव किसी अन्य राजा या राज्य के साथ किसी प्रकार की शर्तें तय नहीं करेंगे।

(६) महाराव व उसके उत्तराधिकारी किसी राज्य पर आक्रमण नहीं करेंगे। यदि ऐसा झगड़ा हुआ तो अंग्रेजी सरकार निर्णय करेगी।

(७) कोटा राज्य अब तक जो कर मरहठों (पेशवा, होल्कर, सिंधिया, पंवार) को देता रहा है वह अंग्रेजी राज्य को देगा।

(८) कोटा किसी अन्य राज्य से कोई कर न ले सकेगा यदि ऐसा अधिकार आया तो इसका उत्तर अंग्रेजी सरकार देगी।

(९) आवश्यकता के अनुसार कोटा अंग्रेजों को सैनिक सहायता देगा।

(१०) महाराव और उसके उत्तराधिकारी पूर्ण रूप से अपने राज्य के शासक रहेंगे। अंग्रेजों का आन्तरिक हस्तक्षेप न होगा[1]।

---

१ ट्रीटी, एंगेजमेंट व सनद: तृतीय भाग, पृ० ३५७-५८।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इस प्रकार कोटा राज्य मुगल, मरहठों की अधीनता से मुक्त होकर अंग्रेजी सत्ता के अधीन हो गया। कोटा ही राजपूताने का प्रथम राज्य था जिसने अंग्रेजों से इस प्रकार की संधि कर अन्य राज्यों के लिये ऐसी स्थिति पैदा करदी। जालिमसिंह की इस सेवा को अंग्रेज कभी नहीं भूल सके और २० फरवरी १८१८ में जालिमसिंह के साथ अंग्रेजों की गुप्त संधि हो गई जिसके अनुसार यह तय हुआ कि महाराव उम्मेदसिंह के वंश के ही कोटा राज्य के शासक रहेंगे और फौजदार व मुसाहिब का पद जालिमसिंह के वंश में रहेगा[1]। इस प्रकार की संधि ने कोटा राज्य में झगड़ों का श्रीगणेश कर दिया। अंग्रेजों ने १८१९ में चोमहला के परगने जालिमसिंह को देने चाहे पर उसने यह परगने कोटा में मिलने दिये। उम्मेदसिंह के जीवन काल में १८१७ की संधि को व्यवहारिक बनाने में कोई अड़चन नहीं आई। उम्मेदसिंह १८२० में मर गया। उसके बाद उसका पुत्र किशोरसिंह गद्दी पर बैठा। जालिमसिंह चूंकि वृद्ध और अंधा हो चुका था अतः राज्य का कार्य उसका पुत्र माधोसिंह करने लगा। वह अनुभव-हीन व उद्दण्ड था। महाराव उसकी निरंकुशता से तंग आ चुका था। अतः अपने छोटे भाई पृथ्वीसिंह और जालिमसिंह के दूसरे पुत्र गोरधनदास से मिल कर माधोसिंह का विरोध करना शुरू किया। कर्नल टाड, जो उस समय राजनैतिक प्रतिनिधि था, को यह लिख भेजा कि वह आंतरिक शासन में स्वतंत्र है। अतः २० फरवरी १८२० की गुप्त संधि को स्वीकार नहीं किया जा सका लेकिन टाड उक्त संधि की मान्यता पर जोर दे रहा था। वह महाराव को नाम मात्र का शासक मानता रहा। इस पर किशोरसिंह ने अंग्रेजों का विरोध किया। अंग्रेजों ने जालिमसिंह को सहायता दी और सन् १८२१ में मांगरोल के युद्ध में अंग्रेजों की सहायता से जालिमसिंह ने किशोरसिंह को हरा दिया। किशोरसिंह हार कर नाथद्वारा पहुँचा। मेवाड़ के महाराणा की मध्यस्थता से पुनः महाराव किशोर और अंग्रेजों के बीच संधि हो गई जिसके अनुसार किशोरसिंह को १६४,४८८ रु. का वार्षिक खर्चा प्राप्त हो गया और महाराव ने जालिमसिंह व उसके वंश को कोटा के मुसाहिबआला का पद देना स्वीकार किया[2]। १८२४ में जालिमसिंह की मृत्यु हो गई। माधोसिंह कोटे का दीवान नियुक्त हुआ।

किशोरसिंह की मृत्यु के बाद १८२४ ई० में उसका गोद लिया हुआ पुत्र रामसिंह गद्दी पर बैठा। उन्होंने सं० १८३१ में अजमेर में लार्ड विलियम बैंटिंग से भेंट की और प्रतिष्ठा प्राप्त कर अंग्रेजी सत्ता को पूर्ण रूप से स्वीकार कर

---

१ उपरोक्त : पृ० ३५९।

२ टाड : राजस्थान, भाग ३, पृ० १६०२-१६०३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

लिया। १८३४ ई० में माधोसिंह झाला की मृत्यु हो गई। उसका लड़का मदनसिंह फौजदार बना। उसके और रामसिंह के बीच प्रारम्भ से ही अनबन होने लगी। ऐसी सम्भावना होने लगी कि मुसाहिब झाला को निकालने के लिये जन-आन्दोलन होने वाला है। मदनसिंह ने अंग्रेजों को मित्रता की याद दिला कर उनकी सहायता प्राप्त करली और उनकी राय से हो 'कोटा कोन्टीनजेंट' सेना का निर्माण अंग्रेजों ने किया जिसका खर्च कोटा से लिया जाने लगा। मदनसिंह के इस दृष्टिकोण से रामसिंह क्रोधित हो उठे और अंग्रेजी सरकार ने इस पर महाराव की राय से मदनसिंह के लिये प्रथक राज्य को संधि करादी। कोटा राज्य के १७ परगने जिनको आमदनी १७ लाख रु. थी, मदनसिंह को प्राप्त हुए। नये राज्य का नाम झालावाड़ राज्य पड़ा। इस संबंध में सन् १८३८ में कोटा राज्य व अंग्रेजों के बीच नई संधि हुई। महाराव के कर में अब ८०,००० रु. घटा दिये गये जो अब झालावाड़ को देने पड़े। 'कोटा-कोंटिनजेन्ट' के निर्माण की स्वीकृति महाराव ने देदी।

कोटा राज्य में अंग्रेजों का प्रभुत्व झाला राजनीति की देन थी। अतः अन्तःकरण से महाराव ने इसका स्वागत नहीं किया। अंग्रेजी राज्य जिस विनाश की भावना को लेकर कोटा में प्रविष्ट हुआ—पश्चिमी तौर-तरीकों को पूर्वी तौर-तरीकों पर अवांछनीय रूप से लाद देना—इससे कोटा का जन-जीवन, राष्ट्रीय प्रवृत्ति व सैनिक वर्ग, अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध जागृत हो गया। अतः यही कारण है कि १८५७ की भारतीय क्रांति के समय कोटा का सैनिक वर्ग व जन-साधारण कोटा को अंग्रेजी प्रभाव से निकालने के लिये प्रयत्नशील रहा। १८५७ में राजपूताने का ए० जी० जी० जार्ज लारेंस था। नसीराबाद में अंग्रेजों की छावनी बनी हुई थी। वहाँ की सेना ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। नीमच की छावनी में गदर के चिन्ह दिखाई देने लगे। कोटा का पोलीटिकल एजेंट मेजर बर्टन नीमच के कमांडिग आफिसर कर्नल मेकडानल्ड की सहायता के लिये नीमच पहुँचा। 'कोटा कोंटिनजेंट' और जनता में अंग्रेजों के विरुद्ध असन्तोष फैला हुआ था। इसका ज्ञान संभवतः महाराव रामसिंह को था। यही कारण है कि कोटा महाराव ने मेजर बर्टन को पुनः कोटा आने के लिये मना किया[1]। मेजर बर्टन ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया और गढ में आकर महाराव को बाध्य करने लगा कि विद्रोही तत्वों को राजकीय पदों से हटा दिया जाये व उन्हें दण्ड दिया जाये। अक्टूबर १२ को मेजर बर्टन अपने २ पुत्रोंसहित कोटा आया। उसका कोटा नरेश से मिलने का ज्ञान सेना व सेनापतियों को मालूम

१ खड़गावत : राजस्थान रोल इन दी स्ट्रगल आफ १८५७, पृ ६२।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

हो गया। अतः उन्होंने १५ अक्टूबर को रेजीडेंसी पर आक्रमण कर दिया। रेजीडेंसी के डाक्टर सालडर और मिस्टर सेविल मारे गये। मेजर बर्टन व उसके दोनों पुत्रों को मौत के घाट उतार दिया गया[1]। कैप्टेन ईडन ने ए० जी० जी० को सूचना देते समय (१८ अक्टूबर १८५७) इस बात का उल्लेख किया कि कोटा महाराव का बर्टन की हत्या में हाथ था[2]। परन्तु कोटा नरेश के विरुद्ध कोई सबूत न मिल सका।

इन विद्रोहियों के नेताओं में लाला जयदयाल कायस्थ, मेहराबखां पठान व इसरारअली थे। बर्टन की हत्या के उपरांत क्रांतिकारियों ने कोटा पर अधिकार कर लिया। सरकारी कोठार, बंगले, बाजार, तोपखाना, कोतवाली चौंतरे पर कोटा कोंटिनमेंट के ही व्यक्ति अधिकार किये हुए थे। कई किलेदारों ने उनका साथ देकर राज्य का कोष उनके हवाले किया। शेरगढ़ में कोटा की सेना ने भी विद्रोह कर दिया। महाराव नजरबंद कर लिये गये। विद्रोही ६ माह तक कोटे के अधिकारी बने रहे[3]।

महाराव ने ए० जी० जी० को खरीता भेजा और इस दुखद घटना पर दुःख प्रकट किया। महाराव ने सहायता के लिये कई मित्रों को खरीता भेजा। एक खरीता लेजाने वाला भैंसरोड़ के जंगल में पकड़ा गया। उस समय विद्रोहियों के पास अंग्रेजों से लगातार संघर्ष करने की पूरी ताकत थी। धीरे धीरे भैंसरोड, गेता, पीपल्दा व कोपला के ठाकुरों ने महाराव की सहायता की। दोनों दलों में भयंकर युद्ध हुआ। ८०० विद्रोही मारे गये। महाराव के ३०० सैनिक मृत्यु के घाट उतरे[4]। उसी समय करोली के शासक ने महाराव की सहायता के लिये सेना भेजदी। महाराजा मदनपाल ने १५०० सैनिक भेज कर चम्बल नदी के पूर्वी किनारे पर अधिकार कर लिया। उसी समय मथुरेशजी के गोस्वामी कन्हैयालाल की मध्यस्थता से महाराव और विद्रोहियों में वार्ता शुरू हुई। वार्ता १५ दिन तक चलती रही। उसी बीच करोली की सेना गढ़ में पहुँच चुकी थी। अंग्रेजों की एक सेना मेजर राबर्ट के नेतृत्व में चम्बल के उत्तरी किनारे पर पहुँची। २२ मार्च १८५८ तक चम्बल के पश्चिमी किनारे पर विद्रोहियों का पूर्ण अधिकार था[5]। करोली की सेना और मेजर राबर्ट के तोपखाने ने विद्रोहियों को

---

१ फोरेस्टर : हिस्ट्री ऑफ दी इंडियन यूनिटी, जिल्द ३, पृ० ५५६-५६।

२ खड़गावत : राजस्थानस् रोल इन दी स्ट्रगल ऑफ १८५७, पृ० ६०।

३ उपरोक्त : पृ० ६१।

४ डा० शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ६७३।

५ खड़गावत, पृ० ७३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

दबा दिया। प्रारम्भ में विद्रोही सिर्फ अंग्रेजों के विरुद्ध ही थे परन्तु जब महाराव ने खरीते लिख कर अंग्रेजों को अपनी सहायता के लिये बुलाया तो विद्रोही महाराव के भी विरोधी हो गये। यह विद्रोह जन-सहयोग पर आधारित था नहीं तो न तो इतना व्यापक हो सकता था, और न इतने समय तक कोटा का शासन विद्रोहियों के हाथों में रह सकता था[1]। अंग्रेजों ने विद्रोहियों को दबाने के लिये जिस आतंक की स्थापना की वह स्पष्ट करता है कि कोटा में अंग्रेजी-विरोधी भावना कितनी प्रबल थी। कम्पनी के यूरोपिय सिपाहियों ने घर लूटे, दुकानें लूटीं व मन्दिरों की मूर्तियों के गहने छीन लिये। गुमानपुरा के एक कलाल ने विद्रोहियों को शराब बेची थी, उस पर १५० रु. जुर्माना किया गया। जयदयाल पकड़ लिया गया और तोप से उड़ा दिया गया[2]। महराबखां को एजेंटी के पास वृक्ष पर लटका कर फांसी दी गई[3]।

इस विद्रोह को दबाने में महाराव ने अंग्रेजों को सहायता अवश्य दी थी परन्तु क्योंकि मेजर बर्टन की हत्या कोटा में हुई थो, अतः महाराव की सलामी की तोपें घटा कर १७ से १३ करदी गईं। मेजर बर्टन का स्मारक बाग में स्थापित किया गया और कोटा के नागरिकों से विद्रोह को दबाने का खर्च वसूल किया गया। 'कोटा-कोंटिन्जेंट' तोड़दी गई। उसके स्थान पर देवलो छावनी स्थापित कर अंग्रेजी सेना रखी गई। रामसिंह की मृत्यु के पहले कोटा शासन की हालत बिगड़ने लगी।

राजकीय ऋण २० लाख रु. हो गया। रामसिंह व उसके मंत्री इसे चुकाने की क्षमता नहीं रखते थे। सन् १८६१ में कोटा में नवीन शासन-व्यवस्था स्थापित की गई जिसमें कोटा राज्य में पोलीटिकल एजेंट का हस्तक्षेप अधिक होने लगा। उसे की जाने वाली शिकायतें लिखित रूप में की जाने लगीं व उसका रिकार्ड पालकीखाने में सुरक्षित रखा जाने लगा। सन् १८६६ में रामसिंह की मृत्यु हो गई। उसका लड़का भीमसिंह शत्रुशाल के नाम से गद्दी पर बैठा। १८६७ में शत्रुशाल को पुनः १७ तोपों की सलामी प्राप्त हो गई पर शासन की व्यवस्था इतनी गिरने लगी कि अन्त में महाराव ने अंग्रेजी सरकार को एक सुयोग्य प्रबंधक भेजने के लिये लिखा। १८७४ में जयपुर के भूतपूर्व मंत्री नबाब फैजअली खां बहादुर कोटा राज्य का प्रबंधक नियुक्त किया गया जो कि ए० जी० जी० की अधीनता में शासनकर्ता बन गया। महाराव शत्रुशाल राज्य के भीतर हस्तक्षेप

१ उपरोक्त : पृ० ६५।

२ उपरोक्त : पृ० ६७-६८।

३ डा० शर्मा ने जयदयाल को भी फाँसी का होना लिखा है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

करने की मनाही करदी गई और खर्च के लिये एक धनराशि निश्चित की[१]। २ वर्ष तक नबाब फैजअली कोटा रहा। १८७६ में कोटा का शासन पोलीटीकल एजेंट के सुपुर्द कर दिया गया जिसकी सहायता के लिये सदस्यों की एक कौंसिल का निर्माण हुआ। धीरे २ जब राज्य की दशा सुधरने लगी तो राज्य का कुछ प्रबंध महाराव को दे दिया गया। विशेष कर दान विभाग, सेना विभाग, और गढ का प्रबंध। १८८१ में अफीम और नशीली वस्तुओं के अलावा व्यापारिक वस्तुओं के प्रचलन पर कर उठा दिया।

१८८२ में अंग्रेजों और महाराव के बीच नमक का समझौता हुआ। नमक बनाने व बेचने का अधिकार अंग्रेजी राज्य को दिया गया। उसके बदले में अंग्रेजों ने महाराव को १६,००० रु. वार्षिक देने का निर्णय किया। शत्रुशाल का ११ जून १८८९ को देहान्त हो गया। उसके स्थान पर गोद लिया हुआ उम्मेदसिंह महाराव बना। सन् १८९६ में कौंसिल तोड़दी गई और महाराव को शासन के पूर्ण अधिकार दे दिये गये। जनवरी १८९९ में अंग्रेजी सरकार ने झालावाड़ के १७ परगनों में से १५ परगने पुनः कोटा में शामिल कर दिये। फरवरी १८९९ में कोटा-बीना रेल-निर्माण के लिये इंडियन मिड़-लैण्ड रेलवे कम्पनी ने समझौता किया। १९०१ में महाराव ने इंडियन पोस्टल प्रणाली कोटा में लागू की और अंग्रेजी मुद्रा ने कोटा की मुद्रा का स्थान ले लिया। १९०४ में महाराव ने नागदा-मथुरा रेल-निर्माण के लिये मुफ्त में कोटा की जमीन देदी। १९१४ के महायुद्ध के समय कोटा के महाराव ने कोटा का सर्वस्व अंग्रेजी राज्य के लिये दे दिया। युद्ध समाप्त होने पर अंग्रेजी सरकार ने १९ तोपों की सलामी से महाराव को विभूषित किया। यह स्थिति १९४७ तक बनी रही जब कि भारत से अंग्रेजी साम्राज्य समाप्त हो गया।

अंग्रेजी काल में १८५७ में जहां कोटा क्रांति में अग्रणी रहा वहां उसके पतन के बाद सामंती व औपनिवेशिक ढांचे ने इतना कमजोर कर दिया गया कि अंग्रेजों के विरुद्ध खड़े होने की लोगों में क्षमता ही नहीं रही। फिर भी भारतीय जन-जागृति का प्रभाव कोटा में भी पड़ा और कोटा में जो राजनैतिक जागृति हुई उसका श्रेय श्री अभिन्नहरि तथा उसके साथियों को दिया जाता है। उन्होंने सन् १९३१ के आन्दोलन में अजमेर जाकर भाग लिया तथा बाद में कोटा को अपना कार्य-क्षेत्र बनाया। सन् १९४२ में कोटा में जन-आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। उसे दबाने के लिये भयंकर प्रयास किया गया। नये महाराव श्री भीमसिंह युग-गति के अनुसार चले। मार्च १९४८ में राजस्थान संघ स्थापित हुआ जिसकी

१ ट्रीटी, ऐंगेजमेंट व सनद, जिल्द ३, पृ० ३३५।

राजधानी कोटा रखी गई तथा कोटा महाराव राजप्रमुख बने। परन्तु बाद में उदयपुर के इस संघ में शामिल हो जाने पर मई १९४८ ई० में राजधानी उदयपुर तथा राजप्रमुख उदयपुर के महाराणा बनाये गये। भीमसिंह उप राजप्रमुख बने। जब वृहत् राजस्थान बना तब फिर उप-राजप्रमुख का पद कोटा के महाराव श्री भीमसिंह को दिया गया। इस पर वह ३१ अक्टूबर १९५६ तक रहे। पहली नवम्बर से राजप्रमुख पद समाप्त कर दिया गया। राजस्थान-निर्माण के बाद कोटा की निरंतर प्रगति हो रही है। चम्बल-योजन के पूर्ण होने पर तो यह एक अति समृद्धशाली प्रदेश हो जायेगा।

कोटा राज्य के सरदार[1]

कोटा राज्य के सरदारों को २ भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक राजवी और दूसरे अमीर उमराव। राजवी कोटा नरेश के नजदीक के कुटुम्बी हैं। ठिकाना कोटरा, बमोलिया, सांगोद, आमली, खेरली, अन्ता तथा मुंडली के जागीरदार किशोरसिंघोत घराने के हैं। इनसे दूसरे दर्जे में मोहनसिंघोत घराना है जिसके मुखिया पलायता के ठाकुर हैं। इन सभी को आपजी कहा जाता है। इन्हीं घरानों से राज्य गद्दी के लिये गोद जाने की प्रथा है।

कोटा राज्य के ताजीमी सरदार एवं जागीरदार ३६ हैं। इनमें अधिक संख्या हाड़ा चौहानों को है। कोटा में ८ जागीरें हाड़ा वंश को ऐसी हैं जिन्हें कोटड़ी या कोटड़ियात कहते हैं। इन्द्रगढ, बलवन, खातोली, गेंता, करवड, पीपलदा, फसूद व अन्तता रहा है। ये जागीरें कोटा राज्य को ३४,३९७ रु. १३ आना खिराज के रूप में देती हैं जिसमें से जयपुर राज्य को १४३९७ रु. १४ आ. ९ पाई दिया जाता है। ये कोटड़ियाँ पहले बूंदी राज्य के मातहत थीं। इनका सूबा रणथम्बोर

१ 'सरदार' सामन्तों का दूसरा नाम है। यहां उन सामन्तों, ठाकुरों, जागीरदारों के प्रदेशों का विवरण दिया जाता है जो कोटा राज्य के शासन, राजनीति तथा सामाजिक जीवन में कौटम्बिक या व्यक्तिगत सम्बन्ध व प्रभाव था।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

लगता था। राजा सुर्जन हाड़ा ने जब रणथम्बोर का किला सन् १५६९ में अकबर को दे दिया तो मुगल शासकों ने इन कोटड़ियों से खिराज लेना प्रारम्भ कर दिया। ई० स० १७६० में रणथम्बोर का किला जयपुर नरेश माधोसिंह के अधिकार में आ गया। जयपुर वालों ने मुगल परम्परा के अनुसार इन कोटड़ियों से खिराज मांगा। इन ठाकुरों ने कोटा महाराव से सहायता मांगी। ई० स० १८२३ में कोटा के दीवान राजराणा जालिमसिंह झाला ने सरकार की सलाह से खिराज जयपुर वालों को स्वीकार किया पर यह खिराज कोटा द्वारा प्राप्त किये हुए खिराज में से दिया जाता था जिससे इन कोटड़ियों पर कोटा का प्रभाव बना रहे। इन्द्रगढ और खातोली के सिवाय अन्य कोटड़ियों से जब नये जागीरदार गद्दी पर बैठते हैं तब नजराना लिया जाता है और महाराव की स्वीकृति के बिना ये गोद भी नहीं ले सकते। करवर, गेंता, फसूद और पीपलदा हरदावतों की कोटड़ियां कहलाती हैं। सं० १६४६ में बादशाह शाहजहां ने बूंदी के रावराजा भोज के बेटे हृदयनारायण के एक बेटे खुशहालसिंह को फसूद का परगना दिया था। खुशहालसिंह ने उसके चार भाग कर—करवर तो अपने पास रखा, गेंता अपने चचेरे भाई अमरसिंह को दिया, फसूद गजसिंह को और पीपलदा दौलतसिंह को दिया। पीपलदा का खास कस्बा चारों के साझे में रहा जो आज तक उसी तरह चला आ रहा है। कोटड़ियों के अलावा २४ जागीरदार ताजीमी हैं।

इन्द्रगढ़—इन्द्रगढ़ कोटा से ४५ मील उत्तर की ओर है। उसे महाराज इन्द्रसाल ने[1] सं० १६६२ माघ बदि ८ को बसाया था। इन्द्रगढ़ में ६२ गांव जागीर के हैं जिनकी आय २,३२,८२२ रुपये है। कोटा राज्य को ये खिराज के रूप में १७५०६ रु. १२ आना देते हैं जिसमें से ६६६६ रुपये जयपुर राज्य को दिया जाता है। तत्कालीन महाराज सुमेरसिंह को १९१७ अक्टूबर में छापोल ठिकाने से महाराज शेरसिंह ने गोद लिया था। इनका नजदीकी कुटुम्बी छापोल और जाटवारी के उमराव हैं।

बलवन—यहां के सरदार महाराज प्रतापसिंह बूंदी के स्वर्गीय महाराजकुमार गोपीनाथ के पुत्र बैरीशाल के वंशज हैं। इस जागीर में २१ गाँव हैं जिनकी आय १६ हजार रु. है। इस ठिकाने से कोटा राज्य को १७२८ रु. खिराज के देने पड़ते हैं जिसमें ११२८ रु. जयपुर राज्य को दिये

१ इन्द्रसाल का पिता गोपीनाथ था जो कि राव रतन का पुत्र था और उसके शासनकाल में ही मर गया। महाराव इन्द्रसाल हाड़ा को शाहजहां के समय ८०० जात व ४०० सवार का मनसब प्राप्त था।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जाते हैं। महाराज प्रतापसिंह १९२९ को राज्य के उत्तराधिकारी हुए थे।

खातोली—इन्द्रगढ़ के महाराज गजसिंह के दूसरे पुत्र अमरसिंह[1] ने दौलतखां से वि० सं० १७२९ (ई० स० १६७३) में खातोली छीनी थी और अपना ठिकाना स्थापित किया था। यह पार्वती नदी के किनारे कोटा नगर के उत्तर पूर्व में ६२ मील दूरी पर स्थित है जो कि पीपलदा तहसील में है। इस ठिकाणे में ३७ गाँव हैं। इसके अलावा ७ गाँव ग्वालियर राज्य में भी हैं जो वि० सं० १८०७ (ई० स० १७५०) में शिवपुर के राजा से प्राप्त हुए थे। इस जागीर की आमदनी ८२५७८ रु. है। कोटा के खिराज में ७६२२ रु. दिये जाते हैं और उसमें से जयपुर का हिस्सा २९८२ रु. है। वर्तमान जागीरदार महाराज भवानीसिंह है जिसका जन्म १९९० में हुआ और पिता बलवन्तसिंह की मृत्यु के बाद सं० १९९८ में ठिकाने के स्वामी हुए।

हरदावत कोटड़िया—करवड़, गेंता, फसूद, और पीपलदा के ठिकाने हरदावत कोटड़ियें कहलाती हैं। क्योंकि इनके जागीरदार बूंदी के हृदय-नारायण हाड़ा के वंशज हैं। इन सब ठिकाणों की भूमि फसूद इलाके का ही भाग है जो बादशाह शाहजहाँ ने रावराजा भोज के दूसरे पुत्र हृदय-नारायण के वंशधर कुशलसिंह को सन् १६४९ में जागीर में दिया था। कुशलसिंह ने करवड़ अपने पास रखा। इसमें ७ गाँव हैं जिनकी आय १२५०० रु. है। कोटा को १००२ रु. चौदह आने खिराज के दिये जाते हैं तथा उसमें से ३३१ रु. १४ आने हर साल जयपुर राज्य को दिये जाते हैं।

गेंता—यहां के सरदार महाराज तेजसिंह के अधिकार में ७ गांव की जागीर है जो पैत्रिक सम्पत्ति है। अमरसिंह को यह भाग कुशलसिंह ने १६४९ ई० में दिया था। ८ गांव कोटा दरबार से दिये हुए हैं। इस तरह कुल १५ गांव इनकी जागीर में हैं जिसकी सालाना आय ३६९८८ रु. है। यहां से १९०८ रु. सालाना कोटा राज्य को खिराज में दिये जाते हैं जिसमें से १९३ रु. जयपुर दरबार को मिलते हैं। पहले यहां के स्वामी कोटा दरबार की सेवा में १३ घोड़ों की चाकरी देते थे पर अब नकद रकम १०९२ रु. दिये जाते हैं। यह महाराज अपने दादा रायबहादुर महाराज माधोसिंह के उत्तराधिकारी हुए। इनके पिता कुंवर अखैराजसिंह

---

१ अमरसिंह ने बून्दी नरेश महाराव राजा बुद्धसिंह के साथ रह कर दक्षिण में मुगल बादशाह औरंगजेब के युद्धों में भाग लिया था।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

का स्वर्गवास ई० स० १६३० मार्च को हो गया था[१]। इनको राजगद्दी १६३५ जून में प्राप्त हुई थी।

फसूद (पुसोद)—ठाकुर जगतसिंह का जन्म ई० स० १६०८ में हुआ था। इनकी जागीर में ६ गांव १७१६८ की आय वाले हैं जिस पर १००२ खिराज के दिये जाते हैं। इसमें से ३३२ रु. जयपुर को मिलते हैं। जगतसिंह ठाकुर जयसिंह की गोद आये थे और १६१५ में ठिकाने के मालिक हो गये थे। पुसोद कोटा से ५१ मील उत्तर की ओर है।

पीपलदा—ठाकुर गुलाबसिंह की जागीर में २२००० रु० सालाना आय के ११ गाँव हैं। खिराज के रुपयों में १००६ रु. कोटा को दिये जाते हैं। जयपुर का हिस्सा ३३१ रु. १२ आने है। ठाकुर भारतसिंह का युवावस्था में ही देहान्त हो गया था इसलिये गुलाबसिंह जो इनके नजदीक कुटुम्बियों में थे, कोटा राज द्वारा ठिकाने के स्वामी बनाये गये।

अंतरदा—अंतरदा की जागीर में अन्तरदा तथा ६ गाँव हैं जिससे १५००० रु. की सालाना आय होती है। खिराज के रु. ३८२८ हैं जिसमें १०२८ रु. जयपुर को प्राप्त होते हैं। वर्तमान जागीरदार बहादुरसिंह हैं। ये बूंदी के गोपीनाथ के पौत्र सगतसिंह के वंशज हैं।

निमोला—निमोला इन्द्रगढ ठिकाने से निकला हुआ है। महाराज रणजीतसिंह इन्द्रसिंहोत खाँप के होने की वजह से इन्द्रगढ को ८२० रु. खिराज का देते हैं। इनकी जागीर में केवल एक गाँव चम्बल नदी के दाहिने तट पर है जिसकी सालाना आय ६००० रु. है। वर्तमान महाराज का जन्म ई. स. १८७४ को हुआ और स्वर्गीय महाराज मोतीसिंह ने ई. स. १६०० में गोद लिया था[२]।

कोयला—यह ठिकाणा कोटा राज्य के प्रथम नरेश राव माधोसिंह हाड़ा के चौथे पुत्र कनीराम ने स्थापित किया था। राज-दरबार में इनकी

---

१ महाराज तेजसिंह के पूर्वज नाथजी थे जो अमरसिंह की तीसरी पीढी में थे। इन्होंने कोटा और जयपुर राज्य के बीच भटवाड़े के युद्ध में (१७६१ ई०) कोटा की ओर से लड़ कर प्रसिद्धि प्राप्त की थी। नाथजी के पुत्र शिवदानसिंह थे जिन्होंने कोटा राज्य के प्रतिनिधि की हैसियत से अंग्रेज सरकार के साथ अहदनामा किया। इस अवसर पर अंग्रेज सरकार ने इन्हें एक घोड़ा, एक हाथी व खिलअत तलवार प्रदान की जिनमें से पोशाक व तलवार अब तक इनके यहां सुरक्षित रखी हुई है।

२ कोटा महाराव की महरबानी इन पर बनी रही। अत: महाराज अपने को इन्द्रगढ के अधीन न रख कर कोटा के चौथे दर्जे के सरदार बन गये। ८७१ रु. १४ आना माधोपुरी सिक्के खिराज के दाखिल करते हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पहली बैठक होती है। ये ठाकुर के बजाय 'आप' की उपाधि से सम्बोधित किये जाते हैं। इनकी जागीर में ३१८२० रु. सालाना आय में ९ गांव हैं। राज्य को ये २१०१ रु. सालाना खिराज के देते हैं और १८९४ रु. पौने १२ आने ९० जमइयत के सवारों के एवज में ये राज्य को खिराज देते हैं। इस ठिकाने के कुँवर पृथ्वीसिंह राजमहल के युद्ध में जयपुर के माधोसिंह की ओर से ईश्वरीसिंह के विरुद्ध लड़ा था। इस युद्ध में उसके कई घाव लगे थे[1]। आप अमरसिंह ने सन् १८०४ में गरोठ (इन्दोर के पास) की लड़ाई में प्रसिद्धि प्राप्त की थी जब कि वे अंग्रेजी सेना के कर्नल मानसन की तरफ से लड़ते हुए घायल हो गये थे। वर्तमान राजा आप रघुराजसिंह हैं जो अपनी पीढी के ११ वें आप हैं। आप कोटा नरेश के १९४८ से मिलिट्री सचिव हैं। ये १९५२ से १९५७ तक राजस्थान विधान सभा के सदस्य भी रहे हैं। इनके पिता ब्रिग्रेडियर जनरल राव बहादुर आप गोविन्दसिंह कोटा राज्य की सेना के सेनापति रहे थे।

पलायता—कोटा राज्य के संस्थापक राव माधोसिंह के दूसरे पुत्र मोहनसिंह के वंशज पलायता के 'आपजी' कहलाते हैं। मोहनसिंह ने वि० सं० १७०४ में ८४ गाँवों सहित पलायता ठिकाना स्थापित किया। मोहनसिंह वि० सं० १७१५ (सन् १६५८) में फतेहाबाद के युद्ध में मारा गया। इस जागीर में अब पलायता तथा ५ गाँव हैं जिनकी आय २१००० रु. सालाना है। यह ठिकाना कोटा राजधानी के पूर्व में २६ मील दूर काली सिंध नदी के दायें तट पर है। राज दरबार में इनका प्रमुख स्थान रहा है[2] और यहां के सरदार मेजर जनरल आप सर औंकारसिंह सी. आई. ई. हैं। इनके पिता राव बहादुर आप अमरसिंह रिजेन्सी कौंसिल के सदस्य ई. स. १८७७ से १८९६ तक रहे। इन्होंने अपने प्रथम पुत्र कुंवर प्रतापसिंह को ५ हजार का तथा दूसरे पुत्र औंकारसिंह को २-हजार रु. की जागीर राज्य से दिलवाई। कुंवर प्रतापसिंह की मृत्यु पर वह जागीर भी आप औंकारसिंह को मिल गई। यह जागीर अन्ता और सांगोद परगने में है। आप औंकारसिंह ने कोटा राज्य की सेवायें कई रूपों में कीं। ये पहले पुलिस महकमे

---

१ यह युद्ध औरंगजेब और मुराद के विरुद्ध राजा जसवन्तसिंह ने दारा व शाहजहां की ओर से किया था। इस युद्ध में औरंगजेब की विजय हुई। मोहनसिंह कोटा राव मुकुन्दसिंह के साथ जसवन्तसिंह का पक्ष लेकर युद्ध में प्रवेश हुए थे।

२ कोयला और पलायता का स्थान राज्य में एक ही होने के कारण ये दोनों एक साथ दरबार में नहीं आते हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

के जनरल सुपरिंटेंडेंट थे। फिर राज्य की सेना के सेनापति हो गये। १९३३ से राज्य के दीवान का काम करते रहे हैं।

कुनाड़ी—कुनाड़ी चम्बल नदी के बायें तट पर कोटा नगर के सामने है। कुनाड़ी का ठिकाना कोटा नरेश राव मुकन्दसिंह हाड़ा ने ई. सं. १६४४ में देलवाड़ा (मेवाड़) के राजराणा जीतसिंह झाला के तीसरे पुत्र अर्जुनसिंह को राज की उपाधि सहित इनायत किया था। यहां के सरदार राजचन्द्र-सेन का प्रभाव कोटा में बहुत अधिक था। ये झाला राजपूतों के जेतावत शाख के हैं। राज्य दरबार में इनकी प्रथम बैठक बाईं तरफ है। इस जागीर में २५००० रु. आय के ८ गांव है। ये कोटा राज्य को खिराज के रूप में २६६० रु. देते हैं। सरदार चन्द्रसेन के पिता राव बहादुर राज-विजयसिंह विधानुरागी एवं इतिहासप्रेमी थे। ई. स. १८८८ में वे राज-रूपसिंह की मृत्यु पर देलवाड़ा (मेवाड़) से गोद आकर कुनाड़ी के स्वामी हुए थे। चन्द्रसेन सन् १९२६ में कुनाड़ी के अधिकारो हुए थे।

बम्बुलिया—इस जागीर के स्वामी महाराज केशवसिंह हाड़ा महा-राव किशोरसिंह के वंशज हैं[1]। इनकी जागीर में ११ हजार रु० की आय के ६ गांव हैं। यह ठिकाणा कोटा राजधानी से पूर्व में ३४ मील है। राज्य को खिराज के रूप में २३५ रु. देता है। सन् १९३४ में महाराज महताब-सिंह के देहान्त पर वर्तमान महाराज इस ठिकाणे की गद्दी के स्वामी हुए।

सरोला—कस्बा कोटा से ७० मील उत्तर पूर्व में है। और इस जागीर के स्वामो दक्षिणी सारस्वत ब्राह्मण पण्डित चन्द्रकान्त राव हैं जिन्हें दरबार में नरेश के बाईं ओर की दूसरी बैठक प्राप्त है। यह जागीर २७ हजार रु. आय के ७ गांव की है। यहां के स्वामी राज्य को खिराज या चाकरी नहीं देते। यह जागीर ९२७३६४ रु. में रहन रखी हुई है। इस घराने के संस्थापक बालाजी पंडित पूना के पेशवा बाजीराव की सेवा में थे। जब मरहठों ने उत्तरी भारत पर चढाई की तब कोटा राज्य से गुजरते हुए बाजीराव पेशवा ने बालाजी यशवन्त को बूंदी और कोटा दरबार से चौथ तय करने के लिये नियत किया था और बाद में बूंदी कोटा तथा उदयपुर (मेवाड़) से ये खिराज वसूल करने पर भी नियुक्त हुए[2]।

१ कोटा के चौथे नरेश महाराज किशोरसिंह के प्रपौत्र सूरजमल ने यह ठिकाना कायम किया था।

२ बाजीराव ने कोटा पर अधिकार कर महाराव दुर्जनशाल से ४० लाख रु. प्राप्त किये। बालाजी यशवन्त नाम के एक कोंकणस्थ सारस्वत ब्राह्मण को इस धन का हिसाब लेने के

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

बालाजी पंडित ने कोटा को अपना निवास-स्थान बनाया और लेनदेन की दुकान खोली। बालाजी के पुत्र ने कोटा के राजराणा दीवान जालिमसिंह झाला से मित्रता बढाई और ई० स० १७६६ में जब होल्कर ने कोटा को दबाना चाहा तब जालिमसिंह की सहायता की। मरहठा सेना को समझा-बुझा कर वापस कर दिया। उस समय कोटा राज्य ने इनसे ६२७३६४ रु. ऋण लिये थे और ई० स० १७७१ में सरोला की जागीर इस ऋण के एवज गिरवी रखी गई। ई० स० १८१७ में अंग्रेज-कोटा-संधि के अनुसार मरहठों को दिया जाने वाला कर (खिराज) अंग्रेजों को दिया जाने लगा। बालाजी का चोथ इकट्ठा करने वाला पद समाप्त हुआ पर सरोला की जागीर पंडित गरणपत राव के पास ही रही।

कचनावदा—ठाकुर मोतीसिंह हाड़ा इस जागीर के तत्कालीन स्वामी हैं। बूंदी के राव सुर्जन के तीसरे पुत्र रायमल ने इस जागीर का स्वामित्व स्थापित किया था। रायमल को बादशाद अकबर ने उम्दा खिद्मत के एवज में पलायथा जागीर में दिया था। लेकिन रायमल के पोते हरीसिंह से वह जागीर छूट गई। हरीसिंह के बेटे दोलतसिंह को महाराव भीमसिंह ने सैरथल जागीर में दिया था। सन् १८३८ में सैरथल का इलाका झालरा-पाटरा (झालावाड़) में चले जाने के कारण उसके एवज में ठाकुर नरपतसिह को कचनावदा मिला। इस जागीर में ७३७७ रु. वार्षिक आय के ३ गांव हैं। इनको राज्य को खिराज नहीं देना पड़ता है।

राजगढ़—राव माधोसिंह के बेटे मोहनसिंह के एक पुत्र गोवर्धन ने इस जागीर का स्वामित्व स्थापित किया था। गोवर्धनसिंह बादशाह औरंगजेब के पक्ष में युद्ध करते हुए दक्षिरण में मारा गया था। उसका पुत्र दौलतसिंह महाराव भीमसिंह के साथ निजाम के विरुद्ध युद्ध में काम आया और दौलतसिंह का पोता नाथजी सन् १७६१ ई० में भटवाड़े की लड़ाई में काम आया था। नाथजी के पोते देवीसिंह ने राजराणा जालिमसिंह को दूर करने में महाराव किशोरसिंह को बहुत मदद की थी। वह सन् १८२१ में मांगरोल के युद्ध में घायल होकर राजगढ़ आया। इस जागीर में ४००० वार्षिक आय के ३ गांव हैं और तत्कालीन जागीरदार माधोसिंह हाड़ा हैं।

लिये छोड़ा गया। कोटा राज्य ने मरहठों की अधीनता सन् १७३७ में स्वीकार करली थी। बालाजी यशवन्त की सेवा के उपलक्ष में महाराव दुर्जनशाल ने बरखेड़ी नामक परगना जागीर में दिया। पेशवा ने उसको अपना वकील बना कर कोटा राज्य में नियुक्त कर दिया। **डा०** मथुरालाल शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ३७५।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

घाटी—बूंदी के राव वीरसिंह के पोते मेवासिंह ने इस जागीर की स्थापना की थी। उनके वंशजों में जोरावरसिंह महाराव भीमसिंह के साथ सन् १७३६ ई० में निजाम के मुकाबले में मारा गया। जोरावरसिंह के बेटे खुशहालसिंह को जागीर मिली परन्तु उसके पुत्र अजीतसिंह ने कोटा के दीवान को मार डाला इसलिये वह जागीर जप्त हो गई। अजीतसिंह के पोते गुमानसिंह ने भटवाड़े के युद्ध में जिस वीरता का प्रदर्शन किया उसके उपलक्ष में घाटी जागीर प्राप्त की। यह जागीर मेवावत हाड़ाओं की कही जाती है जिसके अधिकार में २५०० रु. वार्षिक आय के ४ गांव हैं।

खेड़ला के जागीरदार श्रीनल डाबरी, खडेली, सारथल मंडवी की जागीरें १००० रु. वार्षिक आय की एक गांव की हैं। कोटड़ा की जागीर पहले झालरापाटण के मातहत थी। सन् १८९९ ई० में जब झालावाड़ के १७ परगने कोटा को लौटाये गये तो कोटड़ा कोटा के अधिकार में आ गया। इस जागीर की वार्षिक आय २५३६ रु. है और इसके अधीन में ४ गांव हैं। तत्कालीन महाराज दुर्जनसाल हाड़ा हैं।

Ac. Gunratnasuri MS   Jin Gun Aradhak Trust

कोटा के शासक

१ राव माधोसिंह सम्वत १६८८ से १७०६ सन् १६३२–१६४६

इनके ५ पुत्र थे—मुकन्दसिंह, मोहनसिंह, जूझारसिंह, कुंजराम और किशोरसिंह

२ ,, मुकन्दसिंह १७०६–१७१४ १६४६–१६५७

३ ,, जगतसिंह १७१४–१७४१ १६५७–१६८४

राव मुकन्दसिंह के पोते थे

४ ,, किशोरसिंह १७४१–१७५२ १६८४–१६९६

राव मुकन्दसिंह के छोटे भाई थे। आपके ३ पुत्र थे। विष्णुसिंह, रामसिंह, और हरनाथसिंह। विष्णुसिंह को गद्दी से महरूम कर अांता की जागीर दी गई।

५ ,, रामसिंह १७५२–१७६४ १६९६–१७०७

नं० ४ के दूसरे पुत्र। इनके पुत्र भीमसिंह

६ महाराव भीमसिंह १७६४–१७७७ १७०७–१७२०

इनके तीन पुत्र—अर्जुनसिंह, श्यामसिंह और दुर्जनशाल

७ ,, अर्जुनसिंह १७७७–१७८० १७२०–१७२३

निःसन्तान मरे

८ ,, दुर्जनशाल १७८०–१८१३ १७२३–१७५६

निःसन्तान मरे। नं० ७ के छोटे भाई थे

९ ,, अजीतसिंह १८१३–१८१६ १७५६–१७५९

अन्ता से गोद आये हुए। इनके ३ पुत्र—शत्रुशाल, गुमानसिंह और राजसिंह

१० ,, शत्रुशाल १८१६–१८२१ १७५९–१७६५

निःसन्तान मरे

११ ,, गुमानसिंह १८२१–१८२७ १७६५–१७७१

नं० १२ के छोटे भाई। एक पुत्र—उम्मेदसिंह

१२ ,, उम्मेदसिंह १८२७–१८७६ १७७१–१८१९

आपके तीन पुत्र—किशोरसिंह, विष्णुसिंह व पृथ्वीसिंह

१३ ,, किशोरसिंह (द्वितीय) १८७६–१८८४ १८१९–१८२७

निःसन्तान मरे

१४ ,, रामसिंह (द्वितीय) १८८४–१९२२ १८२७–१८६५

नं० १२ के छोटे पुत्र पृथ्वीसिंह के पुत्र। इनका पुत्र भीमसिंह था जिसने अपना नाम शत्रुशाल रखा।

१५ ,, शत्रुशाल (द्वितीय) १९२२–१९४५ १८६५–१८८८

निःसन्तान मरे

१६ ,, सर उम्मेदसिंह द्वितीय १९४५–१९९७ १८८८–१९४०

कोटड़ा से गोद आये। एक पुत्र—भीमसिंह

१७ ,, सर भीमसिंह १९९७–२००५ १९४०–१९४८

२५ मार्च १९४८ को राजस्थान-निर्माण के कारण कोटा राजस्थान में मिल गया अतः महाराव शासक न रहे। ३१६ वर्ष में १७ शासक कोटा गद्दी पर बैठे। औसतन प्रत्येक शासक ने १८·५ वर्ष तक राज्य किया।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
४	१	हकलेरा	इकलेरा
५	७	बड़ौदा	बड़ौद
	१४	११६०	११६°
	१५	४४०	४४°
७	१०	कोटा होता हुआ	होती हुई
८	१६	बसे वे सब	बसे वे
६	१	है वहां, कई	है कई
१०	२	आधुनिक क्षेत्र	आधुनिक ढंग
११	१६	अंग्रेजों के आने से पहले तक बन गई	शासन अंग्रेजों के आने से पहले तक बन गया
१५	१४	अपराधों पर अर्थदण्ड	पर अर्थदण्ड
३०	४	सं० १५१८	सन् १५१६
	६	सम्वत् १५२१	सन् १५२१
	१२	अम्बर का धाभाई	अकबर का
		गागरोल	गागरोण
	१७	(सम्वत् १७६४–१७७७)	सन् १७०७–१७२०
३१	२७	से गुजरते थे	से गुजरे थे।
३४	८	(१३४३ ई०)	(१३४१ ई०)
३५	१३	सम्वत् १३२१ (१२७४ ई.)	सम्वत् १४२१ (१३७४ ई.)
४४	१६	बहख	बल्ख
४४	२०	"	"
४५	१२	"	"
५१	१	का प्रदर्शन करते हुए वीरगति प्राप्त किया। उससे	का प्रदर्शन कर वीरगति को प्राप्त हुए, उससे
५४	१५	मुअज्जम मारा गया।	आजम मारा गया।
		आजम विजयी	मुअज्जम विजयी
५६	२६	मड़	मऊ
५७	२	भीमसिंह व फरूखसियार का	भीमसिंह व फरूखसियार में
५८	२०	सत्यता निजाम की चालाकी के सामने नहीं चल सकी	सत्यता के सामने निजाम की चालाकी नहीं चल सकी।
५६	फुटनोट	५	१
६२	फुटनोट ३	पृ. संख्या········	पृ. संख्या ८०-८२

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

६४	२५	राणोंजी सिंधिया	जनकोजी सिंधिया
६५	३	,, ,,	,, ,,
	१०	——१६५० की	इसका देहांत वि. सं. १८१५ की
	२२	जवरोजी	जनकोजी
	२५	युद्ध मरवाड़े	युद्ध भटवाड़े
६७	फुटनोट २	७ जनवरी १७६१	१४ जनवरी १७६१
६७	फुटनोट ५	मरवाड़ा	भटवाड़ा
	,, ,, (२)	पंचरंग पताका को डाल दिया	पंचरंगी पताका को हटा दिया
६९	१८	राघादेव	राघवदेव
७०	फुटनोट १(३)	महारानी सिंधिया	महादाजी सिंधिया
७१	फुटनोट २(४)	पृ. सं.········	पृ. सं. ६७
७२	फुटनोट ३(२)	देनसिंह	देवीसिंह
७५	६	इससे·······सेना	इससे अंग्रेजी सेना
	फुटनोट १	१	३
	फुटनोट ३	३	१
७६	फुटनोट १	यही पुस्तक पृ.······	पृ. ६९-७०
	११	अप्पाजी	अम्बाजी
	फुटनोट ३	अब्बाजी	अम्बाजी
७७	फुटनोट २	यही पुस्तक फुटनोट।	यही पुस्तक पृ. ७५
७९	फुटनोट २(५)	लाभप्रद हो सकेगा	लाभप्रद हुआ
८०	१३	जागरोण	गागरोण
	१८	गगरोव	गागरोण
	१९	भूमिकर प्रबन्ध सुधार	भूमिकर प्रबन्ध
८४	फुटनोट १(३)	से युद्ध	से मुक्त
९४	फुटनोट १(३)	मारवाड़ के अमरसिंह	अभयसिंह
१०१	१४	सं. १९३६	सन् १९३६
१०१	फुटनोट २	मरवाड़ा	भटवाड़ा
१०५	७	(सन् १९१८)	(सन् १९०८)
१०६	१०	१३ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण १२७४ ई०	१४ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण १३७४ ई०
१२७	१७	सददेशमुखी	सरदेशमुखी
	अन्तिम	सहाराव	महाराव
१२८	फुटनोट	सिपरउल	सिअरउल
१३०	८	राणोजी	जनकोजी
१३२	९-१०	महारानी सिंधिया	महादाजी
१३५	१०	कूकन	लूकन
१३६	१६	अम्बाजी के नाई	अम्बाजी के भाई
१४३	४	१८१८	१८२०

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

OPINION

It is a matter of great congratulation that History of Rajasthan, and its component Princely States have found their own Historians. The work of M.M. Gaurishanker Ozha has been carried on by his worthy successor—the late Jagdish Singh Gahlot whose History of Kotah has just been published and provides a worthy monument to his great historical researches. It is not only a book of history but a comprehensive Gazetteer of Kotah—presenting a description of this state from all points of view. To a comprehensive political history has been added materials for its social, religious and cultural life. In presenting the political history—the distinguished author has pressed into service all sources of information with authoritative bibliographical references—which throw a new light on the History of Kotah. It is to be hoped that competent successors will be found to carry on the great work of the late Jagdish Singh Gahlot.

O.C. GANGOLY

Chief Editor,
'Rupam',
Calcutta.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

स्व० श्री जगदीशसिंहजी गहलोत द्वारा रचित
निम्न पुस्तकें उपलब्ध हैं—

१.	राजपूताने का इतिहास, प्रथम भाग (मेवाड़, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़, शाहपुरा, करौली और जैसलमेर राज्यों का इतिहास—पृ० संख्या लगभग ८००)	...	१५)
२.	राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (बून्दी, कोटा व सिरोही राज्यों का इतिहास)	...	१०)
३.	मेवाड़ राज्य का केन्द्रीय शक्तियों से सम्बन्ध	...	२)
४.	बून्दी राज्य का इतिहास	...	४)
५.	कोटा राज्य का इतिहास	...	५)
६.	सिरोही राज्य का इतिहास	...	३)
७.	राजस्थानी लोक गीत	...	४)
८.	ऊमर काव्य	...	२॥)
९.	राजस्थानी कृषि कहावतें	...	२)
१०.	राजस्थानी वातालार्थ	...	२)
११.	राजिया के सोरठे	...	॥)

प्रकाशक—
हिन्दी साहित्य मन्दिर, मेड़ती दरवाजा जोधपुर-२७

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust